उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

DCEEC–104
कृषि एवं ग्रामीण अर्थशास्त्र
Agriculture and Rural Economics

पाठ्यक्रम

खण्ड 1– भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की संरचना

इकाई–1 भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था एक परिचय 3
इकाई–2 भारतीय किसानों की ऋणग्रस्तता एवं गरीबी 15
इकाई–3 गांधी एवं नेहरू का विकास के प्रति दृष्टिकोण 29

खण्ड 2 – सहकारिता आन्दोलन एवं ग्रामीण विकास

इकाई–1 भारत में सहकारिता आन्दोलन का विकास एवं परिचय 37
इकाई–2 सहककारिता आन्दोलन की संरचना (ढांचा) 51
इकाई–3 भारत में सहकारिता आन्दोलन की असफलता के कारण 61
इकाई–4 खण्डस्तरीय योजनाएँ : भूदान व ग्रामदान योजना (सामुदायिक विकास के सन्दर्भ में) 68

खण्ड 3 – कृषि विकास के तकनीकी पहलू, कृषि विपणन एवं ग्रामीण साख

इकाई–1 हरित क्रान्ति एवं उसका विस्तार तथा हरित क्रान्ति के प्रभाव : आय वं उत्पादन पर प्रभाव 78
इकाई–2 कृषि विपणन वं ग्रामीण साख, RIDF, NABARD, RRBs 85
इकाई–3 समन्वित ग्रामीण विकास योजना वं ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम 94

खण्ड 4 – खेतिहर मजदूर,उनकी समस्याएँ एवं समाधान के प्रयास

इकाई–1 ग्रामीण बेरोजगारी एवं गरीबी 103
इकाई–2 डॉ0 कलाम का PURA मॉडल एवं उनका चिन्तन 111
इकाई–3 खाद्य सुरक्षा 117
इकाई–4 सहकारी खेती 130

खण्ड 5 – कृषि मूल्य एवं नीति

इकाई–1 भूमंडलीकरण एवं भारतीय कृषि 136
इकाई–2 भारत में भूमि सुधार एवं पंचायती राज व्यवस्था 146
इकाई–3 भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग 156
इकाई–4 भारत की कृषि मूल्य नीति 165

DCEEC-104
कृषि एवं ग्रामीण अर्थशास्त्र

परामर्श–समिति

प्रोफेसर सत्यकाम — **कुलपति–अध्यक्ष**
प्रो. सत्यपाल तिवारी — निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, कार्यक्रम संयोजक
श्री विनय कुमार — कुलसचिव–सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो. सत्यपाल तिवारी	**अध्यक्ष**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ अनिल कुमार यादव	**संयोजक**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो.किरन सिंह		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. एम.के. सिंह		एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
डॉ. विश्वनाथ कुमार		एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी
डॉ. अनूप कुमार		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

सम्पादक

प्रो.किरन सिंह	विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.
डॉ. शीलप्रिय त्रिपाठी	प्रो0 अर्थशास्त्र एवं पूर्व प्राचार्य, एचएनबी पी.जी. कालेज, नैनी प्रयागराज
प्रो0 (डॉ.) विश्वनाथ कुमार	एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी, उ.प्र.
डॉ. चन्द्र प्रकाश राय	सह आचार्य, अर्थशास्त्र, डीसीएसके पी.जी. कालेज मऊ, उ.प्र.

परिमापक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

लेखक मण्डल

डॉ. अनिल कुमार यादव, — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज
खण्ड–4 (इकाई–03)

डॉ. प्रदीप कुमार त्रिपाठी — सहायक आचार्य, विभागाध्यक्ष, एप्लाइड इकोनोमिक्स, प्रो0 राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, नैनी प्रयागराज

खण्ड–1 इकाई–01,02,03 **खण्ड–2** इकाई–01,02,03,04
खण्ड–3 इकाई–01,02,03 **खण्ड–4** इकाई–01,02,04
खण्ड–5 इकाई–01,02,03,04

मुद्रित– सितम्बर, 2025

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – (2025)

ISBN:- 978-81-992992-9-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–२०२५

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड़ प्रयागराज।

खण्ड–01
भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की संरचना

इकाई–01 भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था एक परिचय

इकाई की रुपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 भूमिका

1.3 ग्रामीण अर्थव्यवस्था की परिभाषा और स्वरूप

1.4 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

1.5 भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थिति

1.6 भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्रों का योगदान

1.7 विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन और रोज़गार में ग्रामीण हिस्सेदारी

1.8 ग्रामीण भारत में उत्पादन और रोजगार में संरचनात्मक परिवर्तन

1.9 ग्रामीण भारत में उत्पादन और रोज़गार में क्षेत्रवार परिवर्तन

- कृषि
- विनिर्माण
- भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की संरचना
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था की समस्याएँ
- ग्रामीण विकास हेतु सरकारी प्रयास
- गैर-कृषि गतिविधियाँ और ग्रामीण विविधीकरण
- ग्रामीण उद्यमिता और स्टार्टअप संस्कृति
- जलवायु परिवर्तन और टिकाऊ ग्रामीण अर्थव्यवस्था
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिला योगदान
- डिजिटल इंडिया और ग्रामीण परिवर्तन
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था में चुनौतियाँ
- सु धार की दिशा में सुझाव

1.10 निष्कर्ष

1.11 बोध आधारित प्रश्न

1.12 सन्दर्भ सूची

1.1 उद्देश्य -

- ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अवधारणा और विशेषताओं को समझना, जिसमें कृषि पर निर्भरता, सीमित औद्योगिक विकास और श्रम-

प्रधान प्रणालियाँ शामिल हैं।

- ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की जानकारी प्राप्त करना, जिसमें पूर्व-औपनिवेशिक काल की आत्मनिर्भरता से लेकर ब्रिटिश काल के दौरान हुई आर्थिक गिरावट और स्वतंत्रता के बाद के सुधारों तक का सफर शामिल है।
- भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना, जिसमें ग्रामीण जनसांख्यिकी, रहन-सहन का स्तर, गरीबी, और रोज़गार के आँकड़े शामिल हैं।
- देश की अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्रों के योगदान को समझना और यह भी जानना कि राष्ट्रीय आय में उनका योगदान कम क्यों हुआ, जबकि शहरी क्षेत्रों में वृद्धि हुई।
- उत्पादन और रोज़गार के संदर्भ में ग्रामीण अर्थव्यवस्था में हो रहे संरचनात्मक परिवर्तनों को पहचानना, जिसमें कृषि से गैर-कृषि क्षेत्रों (जैसे, विनिर्माण और सेवा क्षेत्र) की ओर बदलाव शामिल है।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था की संरचना के विभिन्न घटकों, जैसे कृषि, कुटीर उद्योग और सेवा क्षेत्र का अध्ययन।
- ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं को जानना, जैसे कृषि संकट, बेरोज़गारी, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी और बुनियादी ढाँचे की कमियाँ।
- ग्रामीण विकास के लिए सरकारी प्रयासों और योजनाओं (जैसे MGNREGA, PMGSY) के बारे में सीखना।
- ग्रामीण उद्यमिता, स्टार्टअप्स और महिला योगदान जैसे नए रुझानों को समझना।
- जलवायु परिवर्तन के प्रभाव और डिजिटल इंडिया जैसी पहलों की भूमिका को जानना।

1.2 भूमिका

भारत एक कृषि प्रधान और ग्रामीण समाज है। आज भी भारत की लगभग 65% से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और उनकी आजीविका का प्रमुख साधन कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग तथा अन्य गैर-कृषि गतिविधियाँ हैं। ग्रामीण क्षेत्र केवल उत्पादन के स्रोत ही नहीं, बल्कि भारत की संस्कृति, परंपरा और सामूहिक जीवन के केंद्र भी हैं। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था न केवल भारत की आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक संरचना को भी प्रभावित करती है।

1.3 ग्रामीण अर्थव्यवस्था की परिभाषा और स्वरूप

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आशय उन आर्थिक क्रियाओं और संस्थाओं से है जो भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पन्न होती हैं। इसमें कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग, शिल्प, सेवा क्षेत्र और ग्राम आधारित विपणन प्रणाली शामिल होती है।

मुख्य विशेषताएँ:

- कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था
- सीमित औद्योगिक विकास
- श्रम प्रधान उत्पादन प्रणाली
- निम्न पूंजी और तकनीक
- पारंपरिक जीवन शैली

1.4 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

पूर्व-औपनिवेशिक काल: भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर थी। गाँव में ही उत्पादन, वितरण और उपभोग की संपूर्ण व्यवस्था थी।

औपनिवेशिक काल: अंग्रेजों ने ग्रामीण भारत की आर्थिक नींव को तोड़ा। ज़मींदारी प्रथा, भारी कर प्रणाली, नकदी फसल प्रणाली और रेलवे विस्तार ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बाज़ार पर निर्भर बना दिया।

स्वतंत्रता के बाद: पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सरकार ने कृषि, सिंचाई, सहकारिता, ग्रामीण उद्योग, ग्राम पंचायत, स्वास्थ्य और शिक्षा की दिशा में योजनाबद्ध प्रयास किए।

1.5 भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थिति

A. ग्रामीण जनसांख्यिकी:

- जनगणना 2011 के अनुसार, भारत की 68.85% जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और नीति आयोग का अनुमान है कि वर्ष 2045 में भी यह आँकड़ा 50% से अधिक (जो देश के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य में ग्रामीण भारत के महत्त्व को दर्शाता है) रहेगा।

B. रहन-सहन का स्तर:

- जनगणना 2011 के अनुसार, लगभग 39% ग्रामीण परिवार एक कमरे वाले आवास में रहते हैं, तथा केवल 53.2% के पास विद्युत् की सुविधा है, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह सुविधा 92.7% है।
- 86% ग्रामीण परिवारों द्वारा खाना पकाने के लिये लकड़ी जैसे पारंपरिक ईंधन का उपयोग किया जाता था, तथा केवल 30.8% परिवारों के पास नल के जल की सुविधा थी, जिससे बुनियादी ढाँचे और सुविधाओं में चुनौतियों पर प्रकाश पड़ता है।

C. ग्रामीण गरीबी:

- तेंदुलकर विधि से पता चलता है कि वर्ष 2004-05 में ग्रामीण गरीबी 41.8% के स्तर पर चिंताजनक रूप से उच्च थी, जो वर्ष 2011-12 में घटकर लगभग 25% हो गयी।
- हालाँकि, वर्ष 2011-12 में 6 राज्यों में गरीबी अनुपात अभी भी 35% से अधिक था।
- ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय (MPCE) शहरी स्तरों की तुलना में काफी कम है, जो सीमित उपभोग क्षमता और तीव्र गरीबी को दर्शाता है।

D. रोज़गार:

- PLFS रिपोर्ट 2023-24 में बताया गया है कि ग्रामीण रोज़गार मुख्य रूप से स्वरोज़गार (53.5%) और आकस्मिक श्रम (25.6%) की विशेषता है।
- ग्रामीण श्रमिकों का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा (58.4%) कृषि में लगा हुआ है (जो मौसमी रोज़गार प्रदान करता है)।
- ग्रामीण क्षेत्रों में वेतनभोगी नौकरियाँ कुल कार्यबल का केवल 12% हैं, तथा इनमें से अधिकांश पदों पर अनुबंध, सवेतन अवकाश और नौकरी की सुरक्षा का अभाव है।
- ILO की भारत रोज़गार रिपोर्ट 2024 से पता चलता है कि शिक्षित युवाओं में बेरोज़गारी 2000 में 35.2% से लगभग दोगुनी होकर वर्ष 2022 में 65.7% हो गई है, जिसमें महिलाओं (76.7%) को पुरुषों (62.2%) की तुलना में अधिक बेरोज़गारी का सामना करना पड़ रहा है।
- वर्ष 2017-18 से वर्ष 2023-24 तक, भारत में 150 मिलियन नौकरियाँ जुड़ीं, जिसमें ग्रामीण महिलाओं ने इस वृद्धि में 54% योगदान दिया, विशेष रूप से कृषि में।
- वर्ष 2023-24 में ग्रामीण महिला कार्यबल भागीदारी 12.5% बढ़कर 34.8% हो गई।

E. कृषि संकट:

- छोटे और सीमांत किसान, जो कृषि आबादी का 86% हिस्सा हैं, के पास केवल 43% कृषि भूमि है, जबकि आर्थिक जोत वाले बड़े किसान 53% भूमि का प्रबंधन करते हैं।

- कृषि मज़दूर, जो भूस्वामियों की तुलना में ग्रामीण कार्यबल का बड़ा हिस्सा हैं, उन्हें मौसमी काम, कम मज़दूरी और चिकित्सा सहायता और पेंशन सहित सामाजिक सुरक्षा उपायों की कमी का सामना करना पड़ता है।

1.6 भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्रों का योगदान

1970-71 से 2011-12 की अवधि के दौरान भारत की अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्रों का योगदान राष्ट्रीय उत्पादन और रोज़गार में उनकी हिस्सेदारी (सारणी 1) से देखा जा सकता है। 1970-71 में ग्रामीण क्षेत्रों में कुल कार्यबल का 84.1 प्रतिशत कार्यरत था और कुल शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP) का 62.4 प्रतिशत उत्पादन हुआ। इसके बाद, 1999-00 तक राष्ट्रीय आय में ग्रामीण हिस्सेदारी में तेज़ी से गिरावट आई। कुल रोज़गार में ग्रामीण हिस्सेदारी में भी गिरावट देखी गई, लेकिन इसकी गति राष्ट्रीय उत्पादन या आय में उनकी हिस्सेदारी में हुए बदलावों के साथ मेल नहीं खाती। रोज़गार में उनकी हिस्सेदारी में समानुपातिक कमी के बिना राष्ट्रीय उत्पादन में ग्रामीण क्षेत्रों के घटते योगदान का अर्थ है कि देश में समग्र आर्थिक विकास का एक बड़ा हिस्सा शहरी क्षेत्रों के पूंजी-प्रधान क्षेत्रों से आया, जिन्होंने विचाराधीन अवधि के दौरान महत्वपूर्ण रोज़गार सृजन नहीं किया। इसके बावजूद, उत्पादन और रोज़गार में ग्रामीण हिस्सेदारी के बीच का अंतर 1970-71 में 22 प्रतिशत अंक से बढ़कर 1999-00 में 28 प्रतिशत अंक हो गया।

Table 1. Share of rural areas in total NDP and workforce

(per cent)

Year	Economy	Workforce
1970-71	62.4	84.1
1980-81	58.9	80.8
1993-94	54.3	77.8
1999-00	48.1	76.1
2004-05	48.1	74.6
2011-12	46.9	70.9

1999-00 के बाद, ग्रामीण अर्थव्यवस्था की विकास दर में तेज़ी आई और यह शहरी अर्थव्यवस्था की विकास दर के बराबर पहुँच गई। इससे कुल एनडीपी में ग्रामीण योगदान लगभग 48 प्रतिशत पर स्थिर हो गया। विकास दर में तेज़ी के बावजूद, 2004-05 से 2011-12 के दौरान राष्ट्रीय एनडीपी में ग्रामीण हिस्सेदारी में थोड़ी गिरावट आई। दूसरी ओर, कुल कार्यबल में ग्रामीण हिस्सेदारी 1999-00 में 76.1 प्रतिशत से लगातार घटकर 2011-12 में 70.9 प्रतिशत हो गया। राष्ट्रीय एनडीपी की तुलना में कुल रोज़गार में ग्रामीण हिस्सेदारी में तेज़ी से कमी आने के कारण, उत्पादन और रोज़गार में ग्रामीण हिस्सेदारी के बीच का अंतर वर्ष 2011-12 तक घटकर 24 प्रतिशत रह गया।

ये साक्ष्य दर्शाते हैं कि उत्पादन के मामले में शहरी अर्थव्यवस्था ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को पीछे छोड़ दिया, लेकिन शहरी रोज़गार ग्रामीण रोज़गार के आधे से भी कम है। इसके गंभीर परिणाम हैं जैसे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच श्रमिक उत्पादकता में व्यापक असमानता।

1.7 विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन और रोज़गार में ग्रामीण हिस्सेदारी

क्षेत्रवार विखंडन राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्रों के योगदान में महत्वपूर्ण परिवर्तन दर्शाता है। लगभग सभी कृषि उपज का उत्पादन करने के अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों ने देश में गैर-कृषि उत्पादन में लगभग एक-तिहाई और गैर-कृषि रोज़गार में 48.7 प्रतिशत का योगदान दिया (सारणी 2)। गैर-कृषि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों के योगदान में व्यापक भिन्नता और दिलचस्प पैटर्न सामने आए।

Table 2. Share of rural areas in total NDP and workforce across different sectors

(per cent)

Year	Agriculture		Manufacturing		Construction		Services		Non-agri.	
	NDP	Emp.	NDP	Emp.	NDP	Emp.	NDP	Emp.	NDP	Emp.
1970-71	96.2	96.8	25.8	51.5	43.2	64.6	32.8	42.1	32.4	47.3
1980-81	94.9	95.9	31.8	48.1	45.6	58.8	34.0	41.7	35.0	44.9
1993-94	93.9	95.8	29.8	51.3	45.1	57.2	33.6	42.3	34.8	46.6
1999-00	93.2	96.6	41.6	51.5	43.3	57.6	27.1	40.7	31.8	45.8
2004-05	94.1	96.1	42.5	49.6	45.5	64.4	32.7	41.9	36.7	47.2
2011-12	95.1	95.9	51.3	47.4	48.7	74.6	25.9	39.6	35.3	48.7

Note: Emp.: Employment, Non-agri. Includes manufacturing, construction, services and other sectors

1.8 ग्रामीण भारत में उत्पादन और रोजगार में संरचनात्मक परिवर्तन

1970-71 से 2011-12 तक के चार दशकों के दौरान, भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था वर्तमान मूल्यों पर 229 अरब रुपये से बढ़कर 34167 अरब रुपये और 2004-05 के मूल्यों पर 3199 अरब रुपये से बढ़कर 21107 अरब रुपये हो गई। इसी अवधि में, रोजगार 191 मिलियन से बढ़कर 336 मिलियन हो गया। इस प्रकार, ग्रामीण भारत में उत्पादन में लगभग सात गुना वृद्धि के बावजूद, चार दशकों की लंबी अवधि में रोजगार दोगुना भी नहीं हो सका।

उत्पादन और रोजगार की वृद्धि दर विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न अवधियों में बड़े अंतर दर्शाती है, जो देश में ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन को समझने में बहुत उपयोगी है। तीन उप-अवधियों के दौरान एनडीपी और रोजगार में क्षेत्रवार वृद्धि दर।

1970-71 से 1993-94 (जिसे सुधार-पूर्व काल कहा जाता है), 1993-94 से 2004-05 (जिसे सुधार-पश्चात काल कहा जाता है) और

Table 3.1. Growth rates in rural NDP (at 2004-05 prices) and rural employment

(per cent)

Period	Agriculture	Manufacturing	Construction	Services	Non-agriculture	Total
Net Domestic Product (at constant prices)						
1971-94	2.57	5.18	3.94	6.10	5.70	3.72
1994-05	1.87	8.38	7.92	8.55	7.93	5.06
2005-12	4.27	15.87	11.49	3.48	9.21	7.45
Employment (usual status)						
1973-94	1.72	3.55	4.82	4.51	4.22	2.16
1994-05	0.74	2.79	8.32	3.25	3.70	1.45
2005-12	-2.04	0.67	12.09	1.35	3.65	-0.28

2004-05 से 2011-12 (जिसे आर्थिक त्वरण काल कहा जाता है) को तालिका 3.1 में प्रस्तुत किया गया है और क्षेत्रीय संरचना को तालिका 3.2 में प्रस्तुत किया गया है।

1.9 ग्रामीण भारत में उत्पादन और रोज़गार में क्षेत्रवार परिवर्तन

- **कृषि**

पिछले अनुभागों में प्रस्तुत परिणाम दर्शाते हैं कि ग्रामीण उत्पादन में कृषि का योगदान धीरे-धीरे कम हुआ है। आर्थिक विकास में प्रगति के लिए इसे एक वांछनीय परिवर्तन माना जाता है। हालाँकि, रोज़गार के लिए कृषि पर अत्यधिक निर्भरता एक बड़ी चुनौती के रूप में उभरी है। 2004-05 और 2011-12 के बीच, भारत में पहली बार कृषि क्षेत्र में कार्यबल में कमी देखी गई। गिरावट की दर 2.04 प्रतिशत थी। इसके बावजूद, कृषि ने कुल ग्रामीण कार्यबल के 64 प्रतिशत को रोजगार दिया, जिसने वर्ष 2011-12 के दौरान कुल ग्रामीण उत्पादन का केवल 39 प्रतिशत ही उत्पादित किया। यह अनुमान है कि कुल उत्पादन और रोज़गार में कृषि के हिस्से के बीच अभिसरण लाने के लिए, वर्ष 2011-12 में 84 मिलियन कृषि श्रमिकों को ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-कृषि क्षेत्रों में स्थानांतरित करने की आवश्यकता थी। इससे गैर-कृषि रोज़गार में लगभग 70 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जो काफी चुनौतीपूर्ण प्रतीत होता है।

Table 3.2. Sectoral share in NDP and employment in rural areas: 1970 to 2012

(per cent)

Year	Agriculture	Manufacturing	Construction	Services
Share in rural NDP (at current prices)				
1970-71	72.4	5.9	3.5	17.1
1980-81	64.4	9.2	4.1	20.6
1993-94	57.0	8.2	4.6	26.8
1999-00	51.4	11.1	5.6	28.6
2004-05	38.9	11.5	7.8	37.3
2011-12	39.2	18.4	10.5	27.0
Share in rural employment				
1972-73	85.5	5.3	1.4	7.3
1983	83.6	6.2	1.3	8.8
1993-94	78.4	7.0	2.4	11.4
1999-00	76.3	7.4	3.3	12.5
2004-05	72.6	8.1	4.9	13.9
2011-12	64.1	8.6	10.7	15.5

Note: Shares do not sum up to 100 due to exclusion of some minor sectors.

- **विनिर्माण**

ग्रामीण क्षेत्रों में विनिर्माण उत्पादन ने 1970-71 और 1993-94 के बीच 5.18 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर दर्ज की। सुधारोत्तर अवधि (1993-94 से 2004-05) में 8.38 प्रतिशत की उच्च वृद्धि दर देखी गई, जो 2004-05 से 2011-12 के दौरान तेजी से बढ़कर 15.87 प्रतिशत हो गई (सारणी 3.1)। अन्य क्षेत्रों की तुलना में विनिर्माण में उल्लेखनीय रूप से उच्च वृद्धि ने ग्रामीण एनडीपी में इसकी हिस्सेदारी 1970-71 में 5.9 प्रतिशत से बढ़ाकर 2011-12 में 18.4 प्रतिशत कर दी (सारणी 3.2), जो ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण की ओर एक स्पष्ट रुझान की ओर इशारा करती है।

Table 5.1. Sub-sector wise changes in employment (usual status) in manufacturing and services sectors

Sub-sectors	Employment: usual status (million)		Compound growth rate (%)	Share in total employment (%)	
	2004-05	2011-12		2004-05	2011-12
Wearing apparel	3.4	4.2	2.9	12.3	14.5
Tobacco products	3.4	3.6	0.8	12.3	12.5
Textile	4.5	3.6	-3.2	16.0	12.3
Non-metallic mineral products	3.4	3.6	0.8	12.3	12.5
Food products and Beverages	3.4	3.4	0.0	12.3	11.8
Machinery, metal products and transport equipment	2.1	3.0	5.7	7.4	10.4
Wood and wood products	4.1	2.8	-5.4	14.8	9.6
Furniture	1.7	1.5	-2.1	6.2	5.1
Chemical products	0.7	0.6	-2.6	2.5	2.0
Rubber and plastic products	0.3	0.4	1.1	1.2	1.3
Paper and printing, etc.	0.3	0.3	-0.3	1.2	1.2
Leather and related products	0.3	0.3	-1.8	1.2	1.0
Others	0.0	1.7	-	0.0	5.8
Manufacturing sector- Sub total	**27.6**	**29.0**	**0.67**	**100**	**100**
Wholesale and retail trade; repair of motor vehicles	18.5	18.8	0.3	38.9	36.0
Transport, storage and communication	8.6	10.0	2.3	18.0	19.2
Education	5.5	7.0	3.4	11.5	13.3
Hotel and restaurants	2.4	2.9	2.9	5.0	5.6
Public administration, defence and compulsory social security	2.7	2.7	-0.5	5.8	5.1
Health and social work	1.4	1.6	2.0	2.9	3.0
Financial intermediation	0.7	1.1	7.1	1.4	2.1
Others	7.8	8.2	0.7	16.4	15.7
Services sector: Sub-total	**47.6**	**52.3**	**1.4**	**100.0**	**100.0**

Table 5.2. Education level (general and technical) of usually employed rural workers of age 15-59 years

(per cent)

Per cent of rural workers	Male		Female		Persons	
	2004-05	2011-12	2004-05	2011-12	2004-05	2011-12
Secondary education & above	19.7	27.1	6.8	11.8	14.9	22.3
With technical education	1.7	1.6	0.7	0.7	1.3	1.3
With vocational training	14.2	15.4	13.0	12.7	13.8	14.6

3. भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की संरचना

क. कृषि और संबद्ध गतिविधियाँ

- प्रमुख आय का स्रोत
- मानसून पर निर्भरता
- लघु और सीमांत किसान बहुलता
- खाद्यान्न, दलहन, तिलहन, नकदी फसलें
- पशुपालन, मत्स्य पालन, डेयरी

ख. कुटीर और लघु उद्योग

भारत के गाँव लंबे समय से स्वदेशी शिल्पकला और हस्तशिल्प उत्पादन के केंद्र रहे हैं, जिनमें हथकरघा बुनाई, मिट्टी के बर्तन, बढ़ईगीरी, लोहारी और चमड़े का काम शामिल है। ये क्षेत्र लाखों लोगों को आजीविका प्रदान करते हैं और भारतीय संस्कृति से गहराई से जुड़े हुए हैं। खादी और ग्रामोद्योग आयोग (केवीआईसी) ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देता है और कारीगरों को कौशल प्रशिक्षण एवं वित्तीय सहायता प्रदान करता है। हालाँकि, इन उद्योगों को औद्योगिक वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा, ब्रांडिंग की कमी और बाज़ार तक पहुँच की कमी जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है

- हस्तशिल्प, हथकरघा, खाद्य प्रसंस्करण
- स्थानीय कच्चे माल पर आधारित
- महिला स्व-रोजगार का माध्यम
- ग्रामोद्योग बोर्ड की भूमिका

ग. ग्रामीण सेवा क्षेत्र

समय के साथ, निर्माण, परिवहन, खुदरा व्यापार, आतिथ्य और मरम्मत सेवाओं जैसी गैर-कृषि गतिविधियों की ओर रुझान बढ़ा है। नाबार्ड की एनएएफआईएस रिपोर्ट (2019) के अनुसार, 40% से ज़्यादा ग्रामीण परिवार गैर-कृषि स्रोतों से आय प्राप्त करते हैं ।

- ग्राम स्तर की दुकानें, शिक्षक, दस्तकार
- ग्रामीण परिवहन सेवाएँ
- बैंकिंग, डाकघर, सरकारी सेवाएँ
- घ. सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ
- ग्राम सभा और पंचायत
- सहकारी समितियाँ
- स्वयं सहायता समूह (SHG)

4. ग्रामीण अर्थव्यवस्था की समस्याएँ

A.कृषि

संकट और अस्थिरता

- मानसून पर अत्यधिक निर्भरता

- फसल बीमा, उर्वरक, बीज की कमी
- बाज़ार में उचित मूल्य न मिलना
- ऋणग्रस्तता और किसान आत्महत्याएँ

B. बेरोज़गारी और अल्प-रोजगार

- छुपी बेरोजगारी
- प्रवास (migration) की उच्च दर
- महिला श्रमशक्ति की अवहेलना

C. शिक्षा और स्वास्थ्य की कमी

- प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की दुर्दशा
- महिला और बाल स्वास्थ्य उपेक्षित
- गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण का अभाव

D. अवसंरचनात्मक कमियाँ

- सड़कों, बिजली, इंटरनेट की सीमित पहुँच
- कृषि के लिए सिंचाई और कोल्ड स्टोरेज की कमी
- परिवहन और विपणन की कठिनाइयाँ

5. ग्रामीण विकास हेतु सरकारी प्रयास

A. पंचवर्षीय योजनाएँ

- पहले से पाँचवीं योजना तक कृषि और ग्राम विकास पर बल
- बीस सूत्रीय कार्यक्रम, गारंटी रोजगार योजनाएँ
- आठवीं योजना में महिला विकास पर विशेष ध्यान

B. प्रमुख योजनाएँ और कार्यक्रम

- महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (MGNREGA)
- प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना (PMGSY)
- राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM)
- प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण)
- स्मार्ट ग्राम योजना, डिजिटल ग्राम
- सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ – जन धन, बीमा, पेंशन

6. गैर-कृषि गतिविधियाँ और ग्रामीण विविधीकरण

ग्रामीण क्षेत्र अब केवल कृषि तक सीमित नहीं है। तेजी से हो रहा आर्थिक विविधीकरण नई संभावनाएँ लेकर आया है:

- डेयरी और मत्स्य पालन
- हस्तशिल्प, बुनाई, बांस और लकड़ी आधारित उद्योग
- ग्रामीण पर्यटन
- ग्रामीण BPO और डिजिटल सेवा केंद्र

7. ग्रामीण उद्यमिता और स्टार्टअप संस्कृति

सरकार ग्रामीण युवाओं को उद्यमी बनाने के लिए विभिन्न ग्रामीण युवा खाद्य प्रसंस्करण, कृषि-इनपुट, इको-टूरिज्म और हस्तशिल्प के क्षेत्र में स्टार्टअप शुरू कर रहे हैं। सरकारी इनक्यूबेशन और मेंटरशिप कार्यक्रम इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित कर रहे हैं। योजनाएँ चला रही है:

- मुद्रा योजना
- स्टार्टअप इंडिया
- ग्राम-स्टार्टअप नेटवर्क
- कृषि आधारित नवाचार – मोबाइल ऐप, ड्रोन, सेंसर टेक्नोलॉजी
- महिला SHG आधारित खाद्य उत्पादन इकाइयाँ

8. जलवायु परिवर्तन और टिकाऊ ग्रामीण अर्थव्यवस्था

ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर जलवायु परिवर्तन का गहरा प्रभाव पड़ता है। अनियमित वर्षा, सूखा और बाढ़ के कारण किसान असुरक्षित हो जाते हैं। इसके समाधान हेतु:

- जैविक खेती
- प्राकृतिक खेती (ZBNF)
- सौर ऊर्जा आधारित सिंचाई
- जल संचयन और पुनर्भरण

9. ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिला योगदान

महिलाएँ कृषि, पशुपालन, घरेलू उद्योगों, SHG और सामाजिक संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

- ग्रामीण महिला उद्यमिता को बढ़ावा
- स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से वित्तीय समावेशन
- महिला शिक्षा, स्वास्थ्य और नेतृत्व की दिशा में कार्य

10. डिजिटल इंडिया और ग्रामीण परिवर्तन

- डिजीटल ग्राम, CSC केंद्र, डिजिटल भुगतान
- कृषि बाजार की पारदर्शिता (e-NAM)

- शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए ऑनलाइन संसाधन
- पंचायत स्तर पर डाटा संग्रहण और योजनाओं का अनुवीक्षण

11. ग्रामीण अर्थव्यवस्था में चुनौतियाँ

- नीति और क्रियान्वयन में अंतर
- भ्रष्टाचार और योजनाओं की असमान पहुँच
- शहरी-केंद्रित विकास मॉडल
- ग्रामीण युवाओं में कृषि से मोहभंग

12. सुधार की दिशा में सुझाव

- कृषि को लाभकारी व्यवसाय बनाया जाए
- ग्रामीण शिक्षा प्रणाली को व्यवहारिक बनाया जाए
- ग्राम स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं को सशक्त किया जाए
- ग्रामीण स्टार्टअप को वित्त और तकनीक में सहायता दी जाए
- पंचायती राज संस्थाओं को अधिकार संपन्न बनाया जाए

1.10 निष्कर्ष

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था भारत की आत्मा है। यह भारत की सांस्कृतिक विरासत, आर्थिक आधार और सामाजिक समरसता का केंद्र है। आज आवश्यकता है कि हम केवल योजनाएँ न बनाएं, बल्कि गाँव को निर्णय का केंद्र बनाएँ, ग्रामीण युवाओं को नेतृत्व दें और कृषि एवं ग्रामीण जीवन को टिकाऊ, आत्मनिर्भर और समावेशी बनाएं। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था एक जटिल किन्तु गतिशील प्रणाली है जो राष्ट्र के विकास को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सकल घरेलू उत्पाद में इसकी हिस्सेदारी में गिरावट के बावजूद, इसका जनसांख्यिकीय और रणनीतिक महत्व अद्वितीय बना हुआ है । कृषि का प्रभुत्व बना हुआ है, लेकिन गैर-कृषि क्षेत्रों, सेवाओं और ग्रामीण उद्यमिता का उदय विकास के नए मार्ग प्रदान करता है। भारत का भविष्य उसकी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकास के एक जीवंत, लचीले और समावेशी इंजन में बदलने पर निर्भर करता है। प्रौद्योगिकी, ज्ञान और अवसरों से सशक्त, ग्रामीण भारत में नवाचार, उत्पादकता और समृद्धि का केंद्र बनने की क्षमता है ।

1.11 बोध आधारित प्रश्न

1. भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की तीन मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
2. औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश शासन ने भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित किया?
3. 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की कितनी प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और उनकी आजीविका का मुख्य साधन क्या है?
4. ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती गरीबी के दो प्रमुख कारण बताइए।
5. ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कुटीर और लघु उद्योगों का क्या महत्व है?
6. ग्रामीण विकास के लिए सरकार द्वारा शुरू की गई किन्हीं दो महत्वपूर्ण योजनाओं का उल्लेख करें।

7. 2004-05 से 2011-12 के बीच ग्रामीण रोज़गार में क्या महत्वपूर्ण बदलाव देखा गया
8. ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाली किन्हीं दो प्रमुख समस्याओं का वर्णन करें।

1.12 सन्दर्भ सूची / उपयोगी पुस्तकें

- Dutt Ruddar and K.P.M Sundharam, (2007), Indian economy, S.Chand Publishers, New Delhi.
- Lekhi, R.K. and Joginder Singh, (2002), Agricultural Economics, Kalyani Publishers, Ludhiana.
- राजेन्द्र कुमार मीना" भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका", International Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (www.jetir.org), ISSN:2349-5162, Vol.2, Issue 7, page no.402-405, July-2015, Available :http://www.jetir.org/papers/JETIR1701900.pdf
- Rangarajan, C, P I Kaul and Seema (2011): "Where is the Missing Labour Force?' Economic & Political Weekly, Vol 46, No 39, pp 68-72.
- United Nations (2012): "World Urbanization Prospects: The 2011 Revision,' ST/ESA/SER.A/322, Department of Economic and Social Affairs, Population Division, New York.
- वी. के. पुरी एवं एस. के. मिश्र ; भारतीय अर्थव्यवस्था, पर्यावरण तथा विकास, हिमालया पब्लिकेशन ISBN: 978-93-5840-147-
- ऋतु शुक्ला (असि, प्रो., राजकीय महाविद्यालय, तिलहर, शाहजहाँपुर); पर्यावरण संरक्षण-एक दार्शनिक अध्ययन, ISSN: 2395-6011
- रमेश सिंह ; भारतीय अर्थव्यवस्था, धारणीयता एवं जलवायु परिवर्तन, मैग्रा हिल पब्लिकेशन ISBN : 978-93-5316-6308-0
- लाल एवं लाल ; भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण और विशलेषण, शुभम पब्लिकेशन
- https:// www.ncert.nic.in
- https://moef.gov.in
- https:// unfccc.int
- Htttps://krishasevakendra.in
- https://www.nabard.org

इकाई-2 भारतीय किसानों की ऋणग्रस्तता एवं गरीबी

इकाई की रुपरेखा

2.1. उद्देश्य

2.2. प्रस्तावना: ग्रामीण भारत की स्थिति और कृषि पर निर्भरता

2.3. ग्रामीण ऋणग्रस्तता की परिभाषा और विशेषताएँ

2.4. ऋणग्रस्तता के कारण और परिणाम

2.5. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: औपनिवेशिक भारत से वर्तमान तक

2.6. सरकारी प्रयास और योजनाएँ

2.7. सामाजिक प्रभाव और सुधारात्मक उपाय

2.8. निष्कर्ष: नीति सुधार और कृषि का सम्मान

2.9. बोध आधारित प्रश्न

2.10. सन्दर्भ सूची

2.1 उद्देश्य (Learning Objectives)

छात्र इस अध्याय के माध्यम से:

- भारतीय किसानों की ऋणग्रस्तता की संरचना और कारणों को समझेंगे।
- गरीबी और ऋण के बीच के संबंध को विश्लेषित कर सकेंगे।
- ऐतिहासिक और वर्तमान संदर्भों में कृषि नीति की भूमिका को जानेंगे।
- सरकारी योजनाओं की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना सीखेंगे।
- सुधारात्मक उपायों की आवश्यकता और संभावनाओं पर विचार कर सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

ग्रामीण क्षेत्र भारत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। ज़्यादातर लोग गांवों में रहते हैं और खेती-बाड़ी करते हैं। यह कृषि क्षेत्र अर्थव्यवस्था में भी अहम योगदान देता है। भारत के लिए ग्रामीण क्षेत्रों का विकास और स्थिरता ज़रूरी है। लेकिन, कम आय, गरीबी और भारी कर्ज का बोलबाला है। भारत में कई ग्रामीण लोग कर्ज के चक्र और ग्रामीण ऋणग्रस्तता में फंसे हुए हैं|

भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि और उससे जुड़ी गतिविधियों पर निर्भर है। परंतु विडंबना यह है कि इसी कृषि पर आश्रित किसान आज सबसे अधिक ऋणग्रस्त और गरीब हैं। भारत का अन्नदाता खुद भूखा सोने को विवश है। उसकी आजीविका अस्थिर है, आमदनी सीमित है और ज़िंदगी कर्ज़ के बोझ में डूबी हुई है। यह लेख भारतीय किसानों की ऋणग्रस्तता और गरीबी की समस्या का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता क्या है?

ग्रामीण ऋणग्रस्तता की परिभाषा तब होती है जब ग्रामीण लोग अपने ऋण दायित्वों को पूरा करने में असमर्थ होते हैं। वे ऋण चक्र में फंस जाते हैं। ऐसा ऋण अक्सर गैर-कृषि उद्देश्यों के लिए होता है। वे ऋण से आय उत्पन्न नहीं करते हैं। यह उन्हें पैसे चुकाने में असमर्थ बनाता है।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता का अर्थ एक ऐसे परिदृश्य के रूप में समझा जा सकता है जहाँ किसान और ग्रामीण पैसे उधार लेते हैं और उसे चुका नहीं पाते हैं। वे खेती, आवास या दैनिक ज़रूरतों के लिए उधार लेते हैं। उच्च ब्याज दरें और खराब आय ऋण चुकाना मुश्किल बनाती हैं। इससे गरीबी और अधिक उधारी होती है। ग्रामीण ऋणग्रस्तता को हल करने के लिए उचित ऋण और बेहतर आय के अवसरों की आवश्यकता होती है।

भारत की कृषि और अर्थव्यवस्था में ग्रामीण ऋणग्रस्तता

भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था और इसकी कृषि की सूची में सबसे ऊपर ऋण है। बहुत से लोग अपने खेतों के लिए बीज, उर्वरक और विभिन्न उपकरणों की खेती के लिए ऋण लेते हैं। फिर, जब वे फसलें खराब हो जाती हैं और फिर से खेती नहीं की जा सकती, तो कोई उस ऋण का भुगतान नहीं कर सकता, जिससे और अधिक ऋण जमा हो जाता है। कुछ किसान, बिना चुकाए ऋण के कारण, ऋणदाताओं के हाथों संपत्ति और जमीन खो देते हैं, जिससे बीज और उपकरण की सामर्थ्य की कमी के कारण कृषि प्रभावित होती है। उचित ऋण का उपयोग करके इस समस्या का समाधान करना और आय में सुधार करना, किसानों और बदले में अर्थव्यवस्था के पक्ष में होना तय है।

2.3 ग्रामीण ऋणग्रस्तता की विशेषताएँ

ग्रामीण ऋणग्रस्तता तब होती है जब ग्रामीण और किसान ऋण लेते हैं लेकिन उसे चुकाने में संघर्ष करते हैं। यह एक बड़ी समस्या है जो उनके जीवन और काम को प्रभावित करती है।

ऋण पर उच्च निर्भरता

कई किसानों और ग्रामीणों को ऋण की मुख्य आवश्यकता खेती, शिक्षा या आपातकालीन स्थितियों के लिए होती है। वे साहूकारों, बैंकों या सहकारी समितियों से पैसे उधार लेते हैं। ऋण के बिना, वे बीज, उर्वरक या उपकरण नहीं खरीद पाएंगे। कभी-कभी, वे अन्य पुराने ऋणों को चुकाने के लिए ऋण लेते हैं। इससे ऋण चक्र से बाहर निकलना बहुत मुश्किल हो जाता है। अधिक आय आसानी से ऋण पर उनकी निर्भरता को कम कर सकती है।

उच्च ब्याज दरें

कई ग्रामीण उधारकर्ता ऋण पर बहुत अधिक ब्याज देते हैं। साहूकार अक्सर बैंकों से ज़्यादा ब्याज लेते हैं। उच्च ब्याज के कारण ऋण चुकाना मुश्किल हो जाता है। जब उधारकर्ता समय पर भुगतान नहीं कर पाते हैं, तो उन पर बकाया राशि बढ़ती रहती है। इससे उनका वित्तीय बोझ बढ़ता है। कम ब्याज दरें ग्रामीणों को ऋण चुकाने में आसानी कर सकती हैं।

कम और अस्थिर आय

किसानों को लाभ कमाने के लिए अच्छी फसल की आवश्यकता होती है। यदि मौसम खराब है, तो वे अपनी फसल और आय खो सकते हैं। यदि उनके पास पैसे नहीं हैं, तो वे ऋण भी नहीं चुका सकते हैं। कृषि उत्पाद की कीमतों में भी उतार-चढ़ाव होता है, जिससे उनकी आय अनिश्चित हो जाती है। खराब फसल या कम कीमतें उनके कर्ज को बढ़ा सकती हैं। बेहतर कृषि सहायता उन्हें अधिक आय सुनिश्चित कर सकती है।

दैनिक उपयोग के लिए उधार लेना

कई ग्रामीण न केवल खेती के लिए बल्कि भोजन, स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए भी पैसे उधार लेते हैं। हो सकता है कि उनके पास आपातकालीन स्थितियों से निपटने के लिए बचत न हो। जब परिवार में कोई बीमार हो जाता है, तो उन्हें ऋण लेना पड़ता है। अगर वे चुका नहीं पाते हैं, तो उनका कर्ज बढ़ता रहता है। इससे उनकी वित्तीय स्थिति और खराब हो जाती है। बेहतर सरकारी सहायता से उन्हें ऋण की आवश्यकता कम करने में मदद मिल सकती है।

कर्ज का जाल और गरीबी

जब भी गांव के लोग किसी कर्ज को चुकाने में सक्षम नहीं होते हैं, तो वे पुराने कर्ज को चुकाने के लिए नए कर्ज लेते हैं। इसे कर्ज का जाल कहते हैं। लंबे समय तक कर्ज में रहने से वे गरीब हो जाते हैं। अगर वे साहूकारों को पैसे नहीं चुका पाते हैं, तो वे अपनी जमीन या जानवर खो सकते हैं। इससे उनका जीवन और भी कठिन हो जाता है। लोगों को अधिक पैसा कमाने में मदद करना उन्हें कर्ज के जाल में फंसने से बचाता है।

2.4 ग्रामीण ऋणग्रस्तता के परिणाम

ग्रामीण ऋणग्रस्तता किसानों और ग्रामीणों के लिए कई समस्याएं पैदा करती है। जब भी वे ऋण की राशि का भुगतान करने में सक्षम नहीं होते हैं, तो उन्हें अपने जीवन और भविष्य में गंभीर नुकसान का सामना करना पड़ता है।

भूमि और संपत्ति का नुकसान

कई किसान अपनी ज़मीन या घर गिरवी रखकर ऋण लेते हैं। अगर वे चुका नहीं पाते हैं, तो ऋणदाता उनकी ज़मीन या घर ले लेते हैं।

ज़मीन के नुकसान की वजह से वे फ़सल नहीं उगा सकते या पैसे नहीं कमा सकते। उनकी स्थिति खराब हो जाती है और गरीबी बढ़ जाती है। कुछ लोग ऋण के कारण बेघर हो जाते हैं। उचित ऋण प्रणाली उन्हें अपनी ज़मीन और संपत्ति की रक्षा करने में मदद कर सकती है।

गरीबी और भुखमरी

जब ग्रामीण कर्ज में डूब जाते हैं, तो उनके पास भोजन और अपनी दैनिक जरूरतों के लिए कम पैसे होते हैं। कई परिवारों को पर्याप्त भोजन खरीदना मुश्किल लगता है। बच्चे भूखे रह सकते हैं और कुपोषण से पीड़ित हो सकते हैं। पैसे के बिना, वे कपड़े या दवा नहीं खरीद सकते। इससे उनका जीवन बहुत कठिन हो जाता है। कर्ज कम करने से ग्रामीणों को बेहतर जीवन जीने में मदद मिलेगी।

शिक्षा का अभाव

कर्ज में डूबे गरीब परिवार अपने बच्चों की स्कूल फीस नहीं भर सकते। कुछ बच्चे काम करने और अपने परिवार की मदद करने के लिए स्कूल छोड़ देते हैं। शिक्षा के बिना, उन्हें भविष्य में अच्छी नौकरी नहीं मिल सकती। इससे वे कई सालों तक गरीबी में फंसे रहते हैं। शिक्षा की कमी उनके बेहतर जीवन के अवसरों को सीमित करती है। मुफ़्त शिक्षा कर्ज में डूबे परिवारों के बच्चों की मदद कर सकती है।

शहरों की ओर पलायन

कई ग्रामीण काम के लिए शहरों की ओर जाते हैं। वे पलायन इसलिए करते हैं क्योंकि उन्हें अपना कर्ज चुकाने के लिए पैसे की जरूरत होती है। शहरों में, वे खराब परिस्थितियों में मजदूर के रूप में काम करते हैं। वे अक्सर छोटे, भीड़-भाड़ वाले इलाकों में रहते हैं जहाँ कोई उचित सुविधाएँ नहीं होती हैं। घर से दूर रहना उनके लिए जीवन को कठिन बना देता है। गाँवों में अधिक नौकरियाँ पैदा करने से जबरन पलायन को रोका जा सकता है।

2.5 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

औपनिवेशिक भारत में किसान

ब्रिटिश शासन काल में भारतीय किसानों की दशा अत्यंत दयनीय थी। अंग्रेजों की कर प्रणाली (रेग्वेन्यू सिस्टम), ज़मींदारी प्रथा और कैश क्रॉप आधारित कृषि नीति ने किसान को शोषण की जंजीरों में जकड़ दिया। कृषि केवल राजस्व संग्रह का माध्यम बनी रही साहूकारों और ज़मींदारों की दया पर निर्भरता कृषि उत्पादन का अधिकांश भाग ऋण चुकाने में चला जाता था| स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधार, सहकारी बैंक, ऋण माफी योजनाएं, हरित क्रांति, समर्थन मूल्य नीति (MSP) आदि लाए गए| परंतु किसानों की आय और जीवनस्तर में वांछित सुधार नहीं आ पाया।

3. ऋणग्रस्तता की वर्तमान स्थिति

राष्ट्रीय सैंपल सर्वे संगठन (NSSO), कृषि जनगणना, और कई शोधों से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश किसान ऋणग्रस्त हैं।

कुछ प्रमुख आंकड़े (2020-2022 आधारित):

- ग्रामीण भारत के 52% किसान परिवार कर्ज़दार हैं
- औसत ऋण ₹74,000 से ₹1 लाख के बीच
- अधिकतर ऋण गैर-संस्थागत स्रोतों (जैसे साहूकार, व्यापारी) से लिया जाता है
- लघु एवं सीमांत किसानों की ऋणग्रस्त ता सर्वाधिक है

4. ऋणग्रस्तता के प्रमुख कारण

A. कृषि की अनिश्चितता

- मानसून पर निर्भरता
- प्राकृतिक आपदाएँ – सूखा, बाढ़, कीट
- उत्पादकता का अस्थिर स्तर

B. उत्पादन लागत में वृद्धि

- बीज, उर्वरक, कीटनाशक, डीजल के दाम बढ़ना
- श्रम लागत में वृद्धि
- आधुनिक कृषि यंत्रों की ऊँची कीमत

C. लाभकारी मूल्य की अनुपलब्धता

- फसल की उचित कीमत न मिलना
- समर्थन मूल्य नीति का समुचित क्रियान्वयन नहीं
- बिचौलियों का शोषण

D. सीमांत कृषि जोतें

- अधिकांश किसान <2 हेक्टेयर भूमि के मालिक
- छोटे जोतों पर व्यावसायिक कृषि कठिन
- आय का विविधिकरण असंभव

E. विपणन और भंडारण की समस्याएँ

- किसान को फसल तुरंत बेचना पड़ता है
- भंडारण व्यवस्था का अभाव
- निजी आढ़तियों और साहूकारों पर निर्भरता

F. कर्ज़ की आसान उपलब्धता, पर चुकाने में कठिनाई

- बिना भविष्य की योजना के ऋण लेना
- गैर-कृषि कार्यों में कर्ज़ का प्रयोग
- उच्च ब्याज दरें

5. किसानों की गरीबी का स्वरूप

A. आय और व्यय का असंतुलन

- आय कम, खर्च अधिक
- शिक्षा, विवाह, सामाजिक जिम्मेदारियाँ
- न्यूनतम जीवन की सुविधाओं का अभाव

B. शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की कमी

C. पोषण और जीवन स्तर में गिरावट

- कुपोषण की समस्या
- साफ पानी, शौचालय, घर की कमी
- जीवन गुणवत्ता का निम्न स्तर
- सरकारी सेवाएँ गुणवत्ताहीन

- बच्चों की शिक्षा में बाधा
- निजी स्कूल और अस्पताल महंगे

6. ऋणग्रस्तता और आत्महत्या के बीच संबंध

- महाराष्ट्र, विदर्भ, तेलंगाना, पंजाब जैसे क्षेत्रों में आत्महत्या की घटनाएँ
- कर्ज़ न चुका पाने का मानसिक दबाव
- सामाजिक अपमान का डर
- फसल खराब होने के बाद कोई सुरक्षा नहीं
- राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के अनुसार, प्रत्येक वर्ष 10,000 से अधिक किसान आत्महत्या करते हैं, जिनमें अधिकांश लघु किसान होते हैं।

2.7 सरकारी प्रयास

A. संस्थागत ऋण की सुविधा

- सहकारी बैंक, ग्रामीण बैंक, NABARD, KCC
- किसान क्रेडिट कार्ड योजना
- ब्याज में छूट और सब्सिडी

B. ऋण माफी योजनाएँ

- राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर
- तत्काल राहत, लेकिन दीर्घकालीन समाधान नहीं

C. फसल बीमा योजना

- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (PMFBY)
- प्राकृतिक आपदाओं से राहत
- परन्तु क्रियान्वयन में पारदर्शिता की कमी

D. न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP)

- किसानों को गारंटीकृत मूल्य
- सीमित फसलों और क्षेत्रों में प्रभावी

E. अन्य योजनाएँ

- PM-KISAN – सालाना ₹6000 नकद सहायता
- e-NAM – ऑनलाइन कृषि विपणन
- आत्मनिर्भर कृषि योजना, मुद्रा ऋण, SHG वित्त पोषण

8. ऋणग्रस्तता एवं गरीबी का सामाजिक प्रभाव

- ग्रामीण सामाजिक ढांचे में दरार

- युवा कृषि से विमुख
- मजदूरी की ओर झुकाव
- प्रवास (migration) की प्रवृत्ति में वृद्धि
- महिला किसानों की उपेक्षा

9. सुधारात्मक उपाय

A. आय आधारित समर्थन प्रणाली

- केवल कर्ज़ माफी नहीं, बल्कि आय स्थायित्व आवश्यक
- हर फसल के लिए न्यूनतम आमदनी की गारंटी

B. कृषि आधारित उद्योगों का विकास

- खाद्य प्रसंस्करण, डेयरी, मछली पालन
- स्थानीय स्तर पर मूल्य संवर्धन

C. डिजिटल और स्मार्ट कृषि को बढ़ावा

- मौसम पूर्वानुमान, मोबाइल आधारित कृषि सेवाएँ
- कृषि यंत्रों की सामूहिक सेवा

D. किसानों की वित्तीय साक्षरता

- ऋण का सही उपयोग और प्रबंधन
- ग्रामीण बैंकिंग की पहुंच बढ़ाना
- SHG और FPO का सशक्तिकरण

E. बीमा और आपदा राहत प्रणाली को मजबूती देना

ग्रामीण ऋणग्रस्तता के उपाय

ग्रामीण ऋणग्रस्तता किसानों और ग्रामीणों के लिए एक बड़ी समस्या है। उन्हें ऋण कम करने और बेहतर जीवन जीने में मदद करने के कई तरीके हैं।

कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराना

किसानों को खेती, शिक्षा और दैनिक जरूरतों के लिए ऋण की आवश्यकता होती है। बैंकों को कम ब्याज दर पर ऋण देना चाहिए। इससे उन्हें बिना किसी बोझ के पैसे चुकाने में मदद मिलेगी। साहूकार अक्सर उच्च ब्याज लेते हैं, जिससे ऋण और भी खराब हो जाता है। यदि ऋण किफायती हैं, तो किसान उनका बुद्धिमानी से उपयोग कर सकते हैं। उचित ऋण नीतियां ग्रामीण ऋणग्रस्तता को कम कर सकती हैं।

बचत को प्रोत्साहित करना

पैसे बचाने से लोगों को आपातकालीन परिस्थितियों में बिना उधार लिए मदद मिलेगी। ग्रामीणों को नियमित रूप से छोटी-छोटी रकम बचाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। बैंक और सहकारी समितियाँ उनके लिए विशेष बचत योजनाएँ पेश कर सकती हैं। बचत से वे बिना ऋण के बीज और खाद खरीद सकते हैं। इससे उन्हें पैसे उधार लेने की ज़रूरत कम होगी। अच्छी बचत की आदतें भविष्य में कर्ज से बचा सकती हैं।

किसानों की आय में वृद्धि

अगर किसानों को ज़्यादा भुगतान किया जाए, तो उन्हें ज़्यादा उधार लेने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। सरकार उन्हें उनकी फ़सलों के लिए उचित मूल्य देकर उनकी सहायता कर सकती है। बेहतर खेती के तरीके और नई तकनीक से उत्पादन में वृद्धि हो सकती है। किसानों को अतिरिक्त आय अर्जित करने के लिए अलग-अलग कामों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। ज़्यादा आय का मतलब है कि वे आसानी से ऋण चुका सकते हैं। एक मज़बूत ग्रामीण अर्थव्यवस्था ऋणग्रस्तता को कम करती है।

शिक्षा और जागरूकता में सुधार

कई ग्रामीण जोखिम को जाने बिना ही ऋण ले लेते हैं। ग्रामीणों को सिखाया जाना चाहिए कि पैसे और ऋण का सही तरीके से प्रबंधन कैसे किया जाए। स्कूलों को बच्चों को बचत और समझदारी से खर्च करने के बारे में शिक्षित करना चाहिए। कार्यशालाओं से किसानों को बेहतर वित्तीय नियोजन समझने में मदद मिल सकती है। जागरूकता लोगों को कर्ज के जाल में फंसने से बचा सकती है। ज्ञान बेहतर वित्तीय निर्णय लेने में मदद करता है।

सहकारी समितियों का सुदृढ़ीकरण

सहकारी समितियां ग्रामीणों को उचित ऋण दिलाने और उनके उत्पाद बेचने में मदद करती हैं। ये समूह लोगों को एक-दूसरे की आर्थिक मदद करने में मदद करते हैं। वे महंगे साहूकारों के बजाय कम ब्याज पर ऋण दे सकते हैं। जब किसान एक साथ काम करते हैं, तो वे सस्ती दरों पर बीज और उपकरण खरीद सकते हैं। सहकारी समितियां फसलों को अच्छी दरों पर बेचने में भी मदद करती हैं। एक मजबूत सहकारी प्रणाली उच्च ब्याज वाले उधार की आवश्यकता को कम करती है।

2.8 निष्कर्ष

भारतीय किसान देश की रीढ़ हैं, परंतु ऋण और गरीबी की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं। सरकार की योजनाओं के बावजूद जमीनी स्तर पर व्यवस्थागत सुधारों, नीति पारदर्शिता और कृषि को स्थायित्व देने वाली योजनाओं की आवश्यकता है। केवल ऋण माफी से समाधान नहीं होगा, बल्कि कृषि को सम्मानजनक और लाभकारी व्यवसाय बनाना होगा।

कृषि नीति में किसानों को केंद्र में रखकर, उनकी समस्याओं को नीचे से ऊपर (bottom-up) दृष्टिकोण से सुलझाना आज की आवश्यकता है। तभी सच्चे अर्थों में भारत के "अन्नदाता' को उसका सम्मान और जीवन का अधिकार प्राप्त हो सकेगा।

4. ऋणग्रस्तता के प्रमुख कारण

A. कृषि की अनिश्चितता

- मानसून पर निर्भरता
- प्राकृतिक आपदाएँ – सूखा, बाढ़, कीट
- उत्पादकता का अस्थिर स्तर

B. उत्पादन लागत में वृद्धि

- बीज, उर्वरक, कीटनाशक, डीजल के दाम बढ़ना
- श्रम लागत में वृद्धि
- आधुनिक कृषि यंत्रों की ऊँची कीमत

C. लाभकारी मूल्य की अनुपलब्धता

- फसल की उचित कीमत न मिलना
- समर्थन मूल्य नीति का समुचित क्रियान्वयन नहीं

- बिचौलियों का शोषण

D. सीमांत कृषि जोतें

- अधिकांश किसान <2 हेक्टेयर भूमि के मालिक
- छोटे जोतों पर व्यावसायिक कृषि कठिन
- आय का विविधिकरण असंभव

E. विपणन और भंडारण की समस्याएँ

- किसान को फसल तुरंत बेचना पड़ता है
- भंडारण व्यवस्था का अभाव
- निजी आढ़तियों और साहूकारों पर निर्भरता

F. कर्ज़ की आसान उपलब्धता, पर चुकाने में कठिनाई

- बिना भविष्य की योजना के ऋण लेना
- गैर-कृषि कार्यों में कर्ज़ का प्रयोग
- उच्च ब्याज दरें

5. किसानों की गरीबी का स्वरूप

A. आय और व्यय का असंतुलन

- आय कम, खर्च अधिक
- शिक्षा, विवाह, सामाजिक जिम्मेदारियाँ
- न्यूनतम जीवन की सुविधाओं का अभाव

B. शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की कमी

C. पोषण और जीवन स्तर में गिरावट

- कुपोषण की समस्या
- साफ पानी, शौचालय, घर की कमी
- जीवन गुणवत्ता का निम्न स्तर
- सरकारी सेवाएँ गुणवत्ताहीन
- बच्चों की शिक्षा में बाधा
- निजी स्कूल और अस्पताल महंगे

6. ऋणग्रस्तता और आत्महत्या के बीच संबंध

- महाराष्ट्र, विदर्भ, तेलंगाना, पंजाब जैसे क्षेत्रों में आत्महत्या की घटनाएँ
- कर्ज़ न चुका पाने का मानसिक दबाव
- सामाजिक अपमान का डर

- फसल खराब होने के बाद कोई सुरक्षा नहीं
- राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के अनुसार, प्रत्येक वर्ष 10,000 से अधिक किसान आत्महत्या करते हैं, जिनमें अधिकांश लघु किसान होते हैं।

7. सरकारी प्रयास

A. संस्थागत ऋण की सुविधा

- सहकारी बैंक, ग्रामीण बैंक, NABARD, KCC
- किसान क्रेडिट कार्ड योजना
- ब्याज में छूट और सब्सिडी

B. ऋण माफी योजनाएँ

- राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर
- तत्काल राहत, लेकिन दीर्घकालीन समाधान नहीं

C. फसल बीमा योजना

- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (PMFBY)
- प्राकृतिक आपदाओं से राहत
- परन्तु क्रियान्वयन में पारदर्शिता की कमी

D. न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP)

- किसानों को गारंटीकृत मूल्य
- सीमित फसलों और क्षेत्रों में प्रभावी

E. अन्य योजनाएँ

- PM-KISAN – सालाना ₹6000 नकद सहायता
- e-NAM – ऑनलाइन कृषि विपणन
- आत्मनिर्भर कृषि योजना, मुद्रा ऋण, SHG वित्त पोषण

8. ऋणग्रस्तता एवं गरीबी का सामाजिक प्रभाव

- ग्रामीण सामाजिक ढांचे में दरार
- युवा कृषि से विमुख
- मजदूरी की ओर झुकाव
- प्रवास (migration) की प्रवृत्ति में वृद्धि
- महिला किसानों की उपेक्षा

9. सुधारात्मक उपाय

A. आय आधारित समर्थन प्रणाली

- केवल कर्ज़ माफी नहीं, बल्कि आय स्थायित्व आवश्यक

- हर फसल के लिए न्यूनतम आमदनी की गारंटी

B. कृषि आधारित उद्योगों का विकास

- खाद्य प्रसंस्करण, डेयरी, मछली पालन
- स्थानीय स्तर पर मूल्य संवर्धन

C. डिजिटल और स्मार्ट कृषि को बढ़ावा

- मौसम पूर्वानुमान, मोबाइल आधारित कृषि सेवाएँ
- कृषि यंत्रों की सामूहिक सेवा

D. किसानों की वित्तीय साक्षरता

- ऋण का सही उपयोग और प्रबंधन
- ग्रामीण बैंकिंग की पहुंच बढ़ाना
- SHG और FPO का सशक्तिकरण

E. बीमा और आपदा राहत प्रणाली को मजबूती देना

ग्रामीण ऋणग्रस्तता के उपाय

ग्रामीण ऋणग्रस्तता किसानों और ग्रामीणों के लिए एक बड़ी समस्या है। उन्हें ऋण कम करने और बेहतर जीवन जीने में मदद करने के कई तरीके हैं।

कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराना

किसानों को खेती, शिक्षा और दैनिक जरूरतों के लिए ऋण की आवश्यकता होती है। बैंकों को कम ब्याज दर पर ऋण देना चाहिए। इससे उन्हें बिना किसी बोझ के पैसे चुकाने में मदद मिलेगी। साहूकार अक्सर उच्च ब्याज लेते हैं, जिससे ऋण और भी खराब हो जाता है। यदि ऋण किफायती हैं, तो किसान उनका बुद्धिमानी से उपयोग कर सकते हैं। उचित ऋण नीतियां ग्रामीण ऋणग्रस्तता को कम कर सकती हैं।

बचत को प्रोत्साहित करना

पैसे बचाने से लोगों को आपातकालीन परिस्थितियों में बिना उधार लिए मदद मिलेगी। ग्रामीणों को नियमित रूप से छोटी-छोटी रकम बचाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। बैंक और सहकारी समितियाँ उनके लिए विशेष बचत योजनाएँ पेश कर सकती हैं। बचत से वे बिना ऋण के बीज और खाद खरीद सकते हैं। इससे उन्हें पैसे उधार लेने की ज़रूरत कम होगी। अच्छी बचत की आदतें भविष्य में कर्ज से बचा सकती हैं।

किसानों की आय में वृद्धि

अगर किसानों को ज़्यादा भुगतान किया जाए, तो उन्हें ज़्यादा उधार लेने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। सरकार उन्हें उनकी फ़सलों के लिए उचित मूल्य देकर उनकी सहायता कर सकती है। बेहतर खेती के तरीके और नई तकनीक से उत्पादन में वृद्धि हो सकती है। किसानों को अतिरिक्त आय अर्जित करने के लिए अलग-अलग कामों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। ज़्यादा आय का मतलब है कि वे आसानी से ऋण चुका सकते हैं। एक मज़बूत ग्रामीण अर्थव्यवस्था ऋणग्रस्तता को कम करती है।

शिक्षा और जागरूकता में सुधार

कई ग्रामीण जोखिम को जाने बिना ही ऋण ले लेते हैं। ग्रामीणों को सिखाया जाना चाहिए कि पैसे और ऋण का सही तरीके से प्रबंधन कैसे किया जाए। स्कूलों को बच्चों को बचत और समझदारी से खर्च करने के बारे में शिक्षित करना चाहिए। कार्यशालाओं से किसानों को बेहतर वित्तीय नियोजन समझने में मदद मिल सकती है। जागरूकता लोगों को कर्ज के जाल में फंसने से बचा सकती है। ज्ञान बेहतर वित्तीय निर्णय लेने में मदद करता है।

सहकारी समितियों का सुदृढ़ीकरण

सहकारी समितियां ग्रामीणों को उचित ऋण दिलाने और उनके उत्पाद बेचने में मदद करती हैं। ये समूह लोगों को एक-दूसरे की आर्थिक मदद करने में मदद करते हैं। वे महंगे साहूकारों के बजाय कम ब्याज पर ऋण दे सकते हैं। जब किसान एक साथ काम करते हैं, तो वे सस्ती दरों पर बीज और उपकरण खरीद सकते हैं। सहकारी समितियां फसलों को अच्छी दरों पर बेचने में भी मदद करती हैं। एक मजबूत सहकारी प्रणाली उच्च ब्याज वाले उधार की आवश्यकता को कम करती है।

10. निष्कर्ष

भारतीय किसान देश की रीढ़ हैं, परंतु ऋण और गरीबी की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं। सरकार की योजनाओं के बावजूद जमीनी स्तर पर व्यवस्थागत सुधारों, नीति पारदर्शिता और कृषि को स्थायित्व देने वाली योजनाओं की आवश्यकता है। केवल ऋण माफी से समाधान नहीं होगा, बल्कि कृषि को सम्मानजनक और लाभकारी व्यवसाय बनाना होगा।

कृषि नीति में किसानों को केंद्र में रखकर, उनकी समस्याओं को नीचे से ऊपर (bottom-up) दृष्टिकोण से सुलझाना आज की आवश्यकता है। तभी सच्चे अर्थों में भारत के "अन्नदाता' को उसका सम्मान और जीवन का अधिकार प्राप्त हो सकेगा।

Statement 1: Estimated number of rural households, and total and indebted farmer households in each State

State	estimated number of rural households ('00)	estimated number of farmer households ('00)	estimated number of indebted farmer households ('00)	percentage of farmer households indebted
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
Andhra Pradesh	142512	60339	49493	82.0
Arunachal Pradesh	15412	1227	72	5..9
Assam	41525	25040	4536	18.1
Bihar	116853	70804	23383	33.0
Chhattisgarh	36316	27598	11092	40.2
Gujarat	63015	37845	19644	51.9
Haryana	31474	19445	10330	53.1
Himachal Pradesh	11928	9061	3030	33.4
Jammu & Kashmir	10418	9432	3003	31.8
Jharkhand	36930	28238	5893	20.9
Karnataka	69908	40413	24897	61.6
Kerala	49942	21946	14126	64.4
Madhya Pradesh	93898	63206	32110	50.8
Maharashtra	118177	65817	36098	54.8
Manipur	2685	2146	533	24.8
Meghalaya	3401	2543	103	4.1
Mizoram	942	780	184	23.6
Nagaland	973	805	294	36.5
Orissa	66199	42341	20250	47.8
Punjab	29847	18442	12069	65.4
Rajasthan	70172	53080	27828	52.4
Sikkim	812	531	174	38.8
Tamil Nadu	110182	38880	28954	74.5
Tripura	5977	2333	1148	49.2
Uttar Pradesh	221499	171575	69199	40.3
Uttaranchal	11959	8962	644	7.2
West Bengal	121667	69226	34696	50.1
Group of UT's	2325	732	372	50.8
All India	1478988	893504	434242	48.6

Statement 2: Per 1000 distribution of all farmer households by social group in different States

State	per 1000 no. of farmer households in social group					estd. no. of farmer households (00)	sample no. of farmer households
	scheduled tribe	scheduled caste	other backward class	others	all		
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
Andhra Pradesh	113	174	470	242	1000	60339	3396
Arunachal Pradesh	851	-	-	136	1000	1227	502
Assam	140	103	246	508	1000	25040	2187
Bihar	25	144	611	216	1000	70804	3970
Chhattisgarh	422	126	415	37	1000	27598	1087
Gujarat	280	74	351	295	1000	37845	1330
Haryana	6	213	304	477	1000	19445	928
Himachal Pradesh	105	218	158	519	1000	9061	1154
Jammu & Kashmir	130	-	163	688	1000	9432	917
Jharkhand	397	105	415	84	1000	28238	1405
Karnataka	106	128	384	382	1000	40413	2009
Kerala	21	45	499	436	1000	21946	2232
Madhya Pradesh	211	154	441	194	1000	63206	2455
Maharashtra	141	101	325	432	1000	65817	3312
Manipur	490	-	360	146	1000	2146	986
Meghalaya	931	-	-	-	1000	2543	724
Mizoram	968	-	-	-	1000	780	501
Nagaland	948	-	46	-	1000	805	384
Orissa	349	139	376	136	1000	42341	1938
Punjab	4	315	162	518	1000	18442	1279
Rajasthan	229	147	461	163	1000	53080	2596
Sikkim	292	56	331	318	1000	531	552
Tamil Nadu	43	211	733	13	1000	38880	3189
Tripura	384	179	150	278	1000	2333	1022
Uttar Pradesh	18	248	540	191	1000	171575	6748
Uttaranchal		242	66	657	1000	8962	412
West Bengal	82	297	67	552	1000	69226	3958
Group of UTs	366	72	350	212	1000	732	484
All-India	133	175	415	276	1000	893504	51770
estimated no. of hhs (00)	119241	155926	370430	246884	893504	-	-
sample no. of hhs	7996	9089	20019	14585	51770	-	-

Statement 3: Per 1000 distribution of indebted farmer households by social group in different States

State	per 1000 no. of indebted farmer households in social group					estd. no. of indebted farmer households (00)	sample no. of indebted farmer households
	scheduled tribe	scheduled caste	other backward class	others	all		
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
Andhra Pradesh	108	168	477	247	1000	49493	2690
Arunachal Pradesh	486	0	0	514	1000	72	45
Assam	71	100	213	616	1000	4536	425
Bihar	29	170	598	204	1000	23383	1320
Chhattisgarh	308	167	492	33	1000	11092	456
Gujarat	228	66	362	344	1000	19644	661
Haryana	5	218	326	451	1000	10330	493
Himachal Pradesh	67	278	177	479	1000	3030	398
Jammu & Kashmir	0	189	46	765	1000	3003	163
Jharkhand	239	156	480	125	1000	5893	298
Karnataka	98	108	430	364	1000	24897	1168
Kerala	16	45	496	443	1000	14126	1437
Madhya Pradesh	159	186	478	176	1000	32110	1234
Maharashtra	93	86	345	477	1000	36098	1705
Manipur	229	0	574	197	1000	533	257
Meghalaya	922	0	29	49	1000	103	31
Mizoram	1000	0	0	0	1000	184	89
Nagaland	969	0	27	3	1000	294	145
Orissa	233	142	441	185	1000	20250	923
Punjab	2	261	158	579	1000	12069	825
Rajasthan	208	165	470	157	1000	27828	1364
Sikkim	264	46	345	345	1000	174	183
Tamil Nadu	42	219	729	10	1000	28954	2254
Tripura	414	170	149	267	1000	1148	457
Uttar Pradesh	18	257	557	168	1000	69199	2762
Uttaranchal	0	364	190	446	1000	644	43
West Bengal	57	296	74	573	1000	34696	1882
Group of UTs	261	97	515	127	1000	372	211
All India	100	180	439	281	1000	434242	23935
estimated no. of hhs (00)	119241	155926	370430	246884	893504	-	-
estimated no. of indebted hhs (00)	43304	78323	190467	122014	434242	-	-
sample no. of hhs	7996	9089	20019	14585	51770	-	-

2.9 बोध आधारित प्रश्न

1. ग्रामीण ऋणग्रस्तता क्या है?
2. ऋणग्रस्तता के दो प्रमुख कारण क्या हैं?
3. ऋणग्रस्तता का किसानों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
4. सरकार द्वारा कौन-सी योजना किसानों को राहत देने के लिए चलाई गई है?
5. ऋणग्रस्तता से बचने के लिए एक सुधारात्मक उपाय बताइए।

2.10 सन्दर्भ सूची उपयोगी पुस्तकें

- वी. के. पुरी एवं एस. के. मिश्र ; भारतीय अर्थव्यवस्था, पर्यावरण तथा विकास, हिमालया पब्लिकेशन ISBN: 978-93-5840-147-
- ऋतु शुक्ला (असि, प्रो., राजकीय महाविद्यालय, तिलहर, शाहजहाँपुर(); पर्यावरण संरक्षण-एक दार्शनिक अध्ययन, ISSN: 2395-6011
- रमेश सिंह ; भारतीय अर्थव्यवस्था, धारणीयता एवं जलवायु परिवर्तन, मैग्रा हिल पब्लिकेशन ISBN : 978-93-5316-6308-0
- लाल एवं लाल ; भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण और विशलेषण, शुभम पब्लिकेशन
- https:// www.ncert.nic.in
- https://moef.gov.in
- https:// unfccc.int
- https://rajbhasha.gov.in
- Htttps://krishasevakendra.in
- https://timesofindia.indiatimes.com
- https://www.nabard.org
- https://www.researchgate.net
- https://dge.gov.in

इकाई 3 : गांधी एवं नेहरू का विकास के प्रति दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखाः

3.1. उद्देश्य (Objectives)

3.2. प्रस्तावना

3.3. महात्मा गाँधी का विकास दष्टिकोण

3.4. ग्राम स्वराज की अवधारणा

3.5. विकेंन्द्रीकरण

3.6. स्वदेशी और कुटीर उद्योग

3.7. स्वावलंबन

3.8. पर्यावरण संतुलन

3.9. सामाजिक न्याय

3.10. जवाहरलाल नेहरू का विकास दृष्टिकोण

3.11. औद्योगीकरण

3.12. राज्य का हस्तक्षेप

3.13. मिश्रित अर्थव्यवस्था का समर्थन

3.14. योजनाबद्ध विकास

3.15. सामाजिक न्याय की भावना

3.16. उद्योगों का राष्ट्रीयकरण

3.17. शिक्षा एवं ज्ञान में निवेश

3.18. सामाजिक समानता

3.19. निष्कर्ष

3.1 उद्देश्य (Objectives):

1. गांधी और नेहरू के आर्थिक विचारों को समझना।
2. दोनों के दृष्टिकोण की समानताओं और अंतरों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. ग्राम स्वराज और औद्योगिकीकरण के मॉडल की प्रासंगिकता पर विचार करना।
4. स्वतंत्रता–उत्तर भारत की आर्थिक नीतियों में दोनों नेताओं की भूमिका को जानना।
5. आज के भारत में गांधी–नेहरू आर्थिक सोच की उपयोगिता का मूल्यांकन करना।

3.2 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी और जवाहर लाल नेहरू, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दो महान नेता, विकास के प्रति अपने दृ ष्टिकोण और परिप्रेक्ष्य के लिए भारतीय विकास अध्ययन (Indian development studies) में अपना अमुक योगदान रखते हैं। आजादी के संघर्ष के दिनों से ही भारत की विकास नीति की चर्चा सत्ता के गलियारों में विभिन्न विद्वानों द्वारा होती रही है, उसमें महात्मा गाँधी अपने 'सैद्धांतिक मतैक्य' को आर्थिक विकास में लाने तथा सोवियत रसियन

प्रभाव से नेहरू जी अपने 'समाजवादी मॉडल' को भारतीय आर्थिकता में दाखिल कराने के पक्ष में थे और दोनो नेताओं के उद्देश्य में काफी समानता थी –'एक स्वंतंत्र, समृद्ध और आत्मनिर्भर भारत' के समग्र विकास को केन्द्र विन्दु में रखते हुए, दोनो व्यक्तित्वों के विचार और प्राथमिकताओं में कुछ अन्तर थे।

3.3 महात्मा गाँधी का विकास दष्टिकोण

महात्मा गांधी केवल एक स्वतंत्रता सेनानी नहीं थे, बल्कि वे एक युगद्रष्टा, समाज सुधारक और आर्थिक चिंतक भी थे। उनका आर्थिक विकास दृष्टिकोण पारंपरिक पद्धतियों से अलग था। उन्होंने संपूर्ण ग्राम विकास, स्वावलंबन, स्वदेशी, कुटीर उद्योग जैसे विचारों को अपनाकर ऐसे आर्थिक ढांचे की कल्पना की, जो मानवीय गरिमा, पर्यावरणीय संतुलन और आत्मनिर्भरता पर आधारित हो। गांधी जी का आर्थिक दृष्टिकोण पूंजीवादी या साम्यवादी मॉडल का विरोधी नहीं था, बल्कि वैकल्पिक था। वे एक ट्रस्टीशिप मॉडल जो नैतिक मूल्यों और सामाजिक समानता पर आधारित था को स्वीकार्य करते थे।

3.4 ग्राम स्वराज की अवधारणा :

गाँधी जी के दृष्टिकोण का केन्द्र बिन्दु बना 'ग्राम स्वराज' जिसकी परिकल्पना वह अपने नवीन आजाद भारत के लिए प्रायः किया करते थे। गाँधी जी का पूर्णतया विश्वास था कि भारत की आत्मा उसके गाँवो में अनवरत बहती है। इसके परिप्रेक्ष्य में भारत का विकास वास्तविक रूप से तभी संभव है जब उसके गाँव आत्मनिर्भर और स्वावलंबी बने। भारत के विकास की दृष्टि में गाँधी जी 'विकेन्द्रीकरण' और 'कुटीर उद्योगों' पर विशेष बल देते थे। समानता और सामाजिक न्याय के प्रणेता गाँधी जी बड़े उद्योगो और शहरीकरण के पक्षधर कभी नहीं थे और उन्होने इन सिध्दांतो को बहिष्कृत किया और इन सिध्दांतो को भारतीयता के खिलाफ बताया। आइए गांधी जी के विभिन्न परिकल्पनाओं का विस्तृत अध्ययन करते हैं–

3.5 विकेंन्द्रीकरणः

गांधी जी के अनुसार, "स्वदेशी" का अर्थ केवल देश में बनी वस्तुओं का उपयोग करना नहीं था, बल्कि अपने आस–पास के संसाधनों, श्रम और कौशल का अधिकतम उपयोग करना था। यह आत्मनिर्भरता की भावना और आर्थिक स्वतंत्रता का आधार था। गांधी जी शासन और आर्थिक गतिविधिओं के विकेंद्रीत को ही सफल मानते थे। वे इस बात के पक्षधर थे कि सत्ता और संसाधनो का केंद्रीकरण समाज में वैमनश्यता, स्वतंत्रता को कम करने तथा सामाजिक न्याय के खिलाफ है। गाँधी जी ने "ग्रामीण स्वराज" की अवधारणा रखी, जिसमें गांवों को छोटे – 2 इकाईओं में विकसित किया जाएगा तथा व्यक्ति और वहाँ का समाज अपने उत्पादन और उपभोग के लिए जिम्मेदार होगा। यहाँ "स्वराज" से तात्पर्य ही संसाधनों और उत्पादनों के आत्मनिर्भरता से है।

3.6 स्वदेशी और कुटीर उद्योगः

गांधी जी के अनुसार, "स्वदेशी" का अर्थ केवल देश में बनी वस्तुओं का उपयोग करना नहीं था, बल्कि अपने आस–पास के संसाधनों, श्रम और कौशल का अधिकतम उपयोग करना था। यह आत्मनिर्भरता की भावना और आर्थिक स्वतंत्रता का आधार थी। उनका मानना था कि कुटीर उद्योग गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार देकर गरीबी घटाते हैं और यह बात पर्यावरण एवं स्थानीय संस्कृति के अनुकूल भी है।

गांधी जी ने बड़े उद्योगों और कारखानों के स्थान पर स्वदेशी, कुटीर उद्योग और हस्तशिल्प कला को ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आधारशीला माना। चरखा जिसे वे स्वदेशी आंदोलन में प्रतीक के रूप में ले आए, वह स्थानीय उत्पादन की अवधारणा का घोतक बन गया। प्रत्येक गाँव एक स्वायत्त इकाई हो, जो अपनी ज़रूरत की अधिकतर चीज़ें खुद बना सके एवं गाँव के पास अपने संसाधनों पर अधिकार हो जिससे निर्णय लेने की शक्ति स्थानीय पंचायत के हाथ में हो। यह गांधी जी के द्वारा धरातल स्तर पर विकेन्द्रीकरण की भावना को मूर्त रूप प्रदान करता है। गांधी जी आगे कहते हैं कि "भारत की आत्मा उसके गाँवों में बसती है। यदि गाँव मजबूत होंगे तो पूरा भारत मजबूत होगा।" "केंद्रीकृत उद्योग और सत्ता केवल कुछ लोगों को लाभ देती है, जबकि विकेंद्रीकरण सबको समान अवसर प्रदान करता है।"

3.7 स्वावलंबनः

गाँधी जी मानते थे कि व्यक्ति को आत्मनिर्भर तथा स्वावलंबी होना चाहिए तथा वह अपनी छोटी–छोटी चीजों और जरूरतो को बिना दूसरे पर आश्रित हुए पूरा करना चाहिए। वे मानते थे कि स्वावलंबन एवं आत्मनिर्भरता ही सच्ची स्वतंत्रता के पूरक हैं और इसी अवधारणा को वे ग्रामीण स्वराज्य का आधार मानते थे । उनका विचार था कि प्रत्येक गाँव अपनी आवश्यकता की पूर्ति स्वयं कर सके जिससे बाहरी निर्भरता कम हो और समाज में आर्थिक असामनता न हो। गांधी जी ने चरखे को आर्थिक स्वतंत्रता का प्रतीक बनाया। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि खादी पहनना सिर्फ कपड़े का चुनाव नहीं, अपितु ब्रिटिश वस्त्र उद्योग के बहिष्कार और स्वदेशी के समर्थन का प्रतीक भी था और इसी क्रम में चरखा ग्रामीण महिलाओं, वृद्धों और बेरोज़गार युवाओं के लिए रोज़गार का साधन बना। यदि "गाँव का प्रत्येक व्यक्ति चरखा कातने लगे, तो भारत की गरीबी मिट सकती है।" कुटीर उद्योग केवल वस्तु निर्माण नहीं, बल्कि मानव निर्माण का साधन भी है।

3.8 पर्यावरण संतुलनः

पर्यावरण तथा प्रकृति के लिए अत्यंन्त संवेदनशील गाँधी जी विकास और प्रकृति के बीच गहरे सामंजस्य को वास्तविक विकास मानते हैं। संपोषणीय विकास तभी हो सकता है जब उस विकास को प्रकृति का पूर्ण सहयोग मिले। गाँधी जी ने पश्चिमी औद्योगीकरण जनित विकास को पर्यावरण का दुश्मन बताया और इसके हानिकारक दुष्प्रभावों की भी परत खोली। गांधी जी के लिए अहिंसा केवल मनुष्यों के प्रति नहीं, बल्कि पशु–पक्षी, वृक्ष–वनस्पति और पूरे प्रकृति तंत्र के प्रति थी। वे मानते थे कि पर्यावरण का विनाश भी हिंसा का एक रूप है। गांधी जी का जीवन और विचार आज के (Sustainable Development Goals -SDGs) की नींव से मेल खाते हैं। उनका संयम, स्वदेशी, कुटीर उद्योग, विकेंद्रीकरण और सादा जीवन का संदेश न केवल सामाजिक और आर्थिक संतुलन लाता है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन के लिए भी अपरिहार्य है। आज के समय में जब जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और संसाधनों की कमी गंभीर संकट बन चुके हैं, गांधी जी की जीवनशैली हमें टिकाऊ विकास का व्यावहारिक रास्ता दिखाती है।

3.9 सामाजिक न्यायः

गाँधी जी का विकास मॉडल सामाजिक न्याय पर आधारित था। उनका मत था कि विकास में सभी वर्गो को बराबर का योगदान और लाभ मिले विशेष रूप से गरीब और कमजोर वर्गो को जो ऐतिहासिक, सामाजिक तथा आर्थिक पिछड़ेपन का भार ढो रहे हैं। उनका मानना था कि समाज में किसी तरह के विकास की सार्थकता तब जायज है जब वह सभी वर्गों के लिए हो न कि विशेष वर्गो के लिए। गाँधी जी का ट्रस्टीशिप मॉडल' उनकी इसी आधारभूत संकल्पना का वर्णन करता है कि संपत्ति और संसाधनो का उपयोग, समाज के सभी वर्गो के लिए किया जाना चाहिए। गाँधीजी के विकास की परिकल्पना में एक विशेषता यह थी कि उन्होने ऐसे विकास पर बल दिया जो समाजिक एकता और राष्ट्र की अखंडता का भी प्रहरी बने। वे मानते थे कि भारत जैसे उप–महाद्वीपीय राष्ट्र में विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास ही वो मील का पत्थर हो सकता है जिससे देश सही दिशा में चल सके। हांलाकि गाँधी जी द्वारा दिए गए विकास के रास्तो को आलोचना का भी मुंह देखना पड़ा है, खास कर उनसे जो औद्योगीकरण और आधुनिक वैज्ञानिक विधियों से भारत के विकास की नींव रखना चाहते थे।

3.10 जवाहरलाल नेहरू का विकास दृष्टिकोण

पंडित जवाहरलाल नेहरू भारत के पहले प्रधानमंत्री और एक दूरदर्शी नेता थे, जिनकी आर्थिक दृष्टि ने स्वतंत्र भारत की आधारशिला रखी। उन्होंने आर्थिक विकास को महज उत्पादन और उपभोग से नहीं यद्यपि राष्ट्र निर्माण, आधुनिकता, वैज्ञानिक सोच और सामाजिक न्याय के साथ जोड़कर देखा। भारत की आजादी के पश्चात् देश एक गहरे आर्थिक संकट से जूझ रहा था– कृषि पिछड़ी हुई थी, उद्योग नगण्य थे, बेरोजगारी और गरीबी चरम पर थी। ऐसे में नेहरू ने एक ऐसे समाजवादी और योजनाबद्ध आर्थिक ढांचे की परिकल्पना की, जो विकास को समावेशी, टिकाऊ और प्रगतिशील बना सके।

जवाहरलाल नेहरू जी स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने उनके विचार खासकर विकास पर गाँधी जी से हटकर – आधुनिकता, औद्योगीकरण और विज्ञान पर आधारित था । नेहरू जी तत्कालीन वैश्विक परिदृश्य को

वैश्विक पटल पर देखते हुए भारत को एक आधुनिक सशक्त और प्रतिस्पर्धा युक्त देश बनाने को पुरजोर समर्थक व्यक्ति थे। उन्होंने भारत के औद्योगीकरण और वैज्ञानिक विकास को अपने केन्द्रबिंदु में रखा।

जवाहर लाल नेहरू जी के विचार समाजवादी मॉडल पर आधारित था जहाँ राज्य, विकास की सबसे महत्वपूर्ण ईकाई होती है और राज्य अपने विकास के विभिन्न मॉडलों से यह सुनिश्चित करता है कि समाज में असमानता न फैले तथा सामाजिक न्याय और विकास भी बना रहे।

नहरू जी के विकाश दष्टिकोण की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार थीः

3.11 औद्योगीकरण

नेहरू जी इस बात के पक्के समर्थक थे की बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण भारत के आर्थिक विकास के लिए अपरिहार्य है। इनका तर्क था कि बढ़ती हुई भारतीय जनसंख्या पूरी तरह से जो कृषि पर निर्भर हो वो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति सिर्फ कृषि से नहीं कर सकती है। इसलिए उन्होने भारी संयंत्रो या उद्योगो जैसे, इस्पात संयत्र, बिजली उत्पादन और इंजीनियरिंग उद्योगों के विकास पर जोर दिया। नेहरू जी ने बड़े बाँधों और स्टील प्लांटो को भारत के आर्थिक विकास का प्रतीक बताया। नेहरू जी ने इन्हे आधुनिक भारत के मंदिर जैसी उपमा से अलंकृत किया।

नेहरू जी मानते थे कि विज्ञान और तकनीक विकास के सच्चे घोतक हो सकते हैं। उनका मानना था कि वैश्विक धरा पर भारत को अपनी पहचान बनाने के लिए तथा आत्मनिर्भर बनने के लिए वैज्ञानिक शोध और तकनीकी शिक्षा में निवेश अनिवार्य है। उनके प्रयासो से ही भारत में कई तकनीकी संस्थान जैसे कि आईआईटी, इसरो, एम्स की स्थापना हुई जिन्होंने बाद में भारत के तकनीकी तथा वैज्ञानिक विकास में आमूल – चूल परिवर्तन किया। नेहरू मानते थे कि भारत को 'Research and Science' के आधार पर विकसित करना होगा। उन्होंने परंपरागत ढांचों से हटकर आधुनिक तकनीक और वैज्ञानिक संस्थाओं को प्राथमिकता दी। नेहरू का मानना था कि विकास को वैज्ञानिक ढंग से योजनाबद्ध तरीके से आगे बढ़ाना चाहिए, तभी समानता और प्रगति संभव है। पंडित जवाहरलाल नेहरू स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री और आधुनिक भारत के निर्माता माने जाते हैं। उन्होंने भारत को औद्योगिक विकास के मार्ग पर ले जाने के लिए योजनाबद्ध, वैज्ञानिक और आधुनिक दृष्टिकोण अपनाया। नेहरू जी का मानना था कि औद्योगीकीकरण ही भारत की आर्थिक प्रगति, आत्मनिर्भरता और सामाजिक परिवर्तन का मुख्य साधन है।

उनकी औद्योगिक नीति ने स्वतंत्र भारत में भारी उद्योग, सार्वजनिक क्षेत्र, वैज्ञानिक अनुसंधान और आधारभूत संरचना के विकास की नींव रखी। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था को उद्योग प्रधान मिश्रित अर्थव्यवस्था में बदलना जरूरी है। आधुनिक उद्योग रोजगार के नए अवसर पैदा करते हैं। आत्मनिर्भरता के लिए आयात–प्रतिस्थापन (Import Substitution) नीति अपनानी होगी। विज्ञान और तकनीक के बिना आर्थिक स्वतंत्रता अधूरी है।

इसी परिपेक्ष्य में नेहरू जी ने औद्योगिक नीति और योजना 1948 लायी जिसमें मिश्रित अर्थव्यवस्था का मॉडल अपनाया गया और सार्वजनिक क्षेत्र को कोयला, इस्पात, रेल, जलविद्युत जैसे भारी उद्योग सौंपे गए तथा निजी क्षेत्र को उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन और हल्के उद्योगों में भूमिका प्रदान की गई। नेहरू जी के औद्योगिकीकरण की छाप हमें निम्नलिखित पंचवर्षीय योजनाओं में भी देखने को मिलती है–

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56)– मुख्य ध्यान कृषि, सिंचाई और बिजली पर था, ताकि उद्योगों के लिए आधार तैयार हो सके। उद्योगों के लिए डैम और पावर प्रोजेक्ट्स शुरू किए गए जैसे भाखड़ा नंगल, हीराकुंड, दामोदर घाटी परियोजना।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–61) –महालनोबिस मॉडल– यह योजना नेहरू जी की औद्योगिक दृष्टि का वास्तविक आरंभ था। इस योजना में कुल व्यय 4672 करोड़ रूपये था। इसमें 938 करोड़ रूपये जो लगभग 20 प्रतिषत था उद्योग पर खर्च किये गये इससे यह स्पष्ट होता है कि द्वितीय योजना में औद्योगिकीकरण के बहुत बड़े कार्यक्रम शुरू किये गये। विनिर्माण क्षेत्र के लिए उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य 10.5 प्रतिवर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि 7.25 प्रतिवर्ष प्राप्त हुआ। जहाँ तक औद्योगिक विस्तार के कार्यक्रमों के सम्बन्ध है जिसमें महत्वपूर्ण उपलब्धि सार्वजनिक क्षेत्र में तीन बड़े इस्पात कारखानों की स्थापना थी। जिसकी स्थपना उड़ीसा के राउरकेला,

छत्तीसगढ़ के भिलाई एवं पं. बंगाल के दुर्गापुर में की गई। इसके साथ ही इस योजना में भारी मशीन निर्माण संयंत्रों (HMT,BHEL, HAL) की भी स्थापना की गयी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–66) में राष्ट्रीय आय में 5.6 प्रतिशत वार्षीक वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया था जो दूसरी योजना के द्वारा निर्धारित योजना से ज्यादा ऊँचा लक्ष्य नहीं था। तीसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि और औद्योगिक विकास के बीच सन्तुलन पर अधिक जोर दिया गया था। इस योजना की संपूर्ण अवधी में राष्टीय आय में केवल 3.3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई है। तीसरी योजना समृद्धि की दृष्टि से पूरी तरह असफल रही और परिणाम यह हुआ भारतीय अर्थव्यवस्था गंभीर संकट में फंस गयी। स्थिति यहा तक बिगड़ी की दीर्धकालीक आर्थिक आयोजना को 3 वर्ष के लिए स्थगित कर दिया गया।

3.12 राज्य का हस्तक्षेपः

जैसा कि नेहरू जी समाजवादी विचारक थे, उन्हाने राज्य के हस्तक्षेप को उसके विकास की कुंजी माना । उन्होंने योजना आयोग का गठन किया तथा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सामाजिक विकास की नींव तथा रूपरेखा रखी। उनके अनुसार, विकास का मार्ग राज्य के नेतृत्व से ही संभव है, जहाँ सरकार नीतियाँ बनाकर संसाधनो का उचित बँटवारा सुनिश्चित करे। यह मॉडल मुख्य रूप से राज्य की भूमिका, आर्थिक और सामाजिक असमानता को कम करने और समाज के सभी वर्गों को विकास का लाभ देने की होती है। नेहरू के राज्य के हस्तक्षेप सिद्धांत (Nehru's Principle of State Intervention) का वर्णन पंडित जवाहरलाल नेहरू की आर्थिक और सामाजिक नीतियों के संदर्भ में किया जाता है। नेहरू का मानना था कि स्वतंत्र भारत की सामाजिक और आर्थिक प्रगति के लिए केवल निजी क्षेत्र पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं होगा। इसलिए उन्होंने राज्य (सरकार) को एक सक्रिय भूमिका में देखा, जो देश की योजनाबद्ध विकास प्रक्रिया को नियंत्रित और संचालित करे। नेहरू के राज्य के हस्तक्षेप सिद्धांत के मुख्य को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है–

3.13 मिश्रित अर्थव्यवस्था का समर्थन

नेहरू ने ऐसी आर्थिक व्यवस्था की कल्पना की जिसमें निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्र एक साथ कार्य करें। उनका मानना था कि सार्वजनिक तथा नीजि क्षेत्र दोनों का महत्व है परन्तु भारत जैसे विकासशील देश में विकास के प्रारम्भिक चरण में आधारभूत आर्थिक संरचना को बढ़ावा देने के लिए अधिक मात्रा में निवेश की आवश्यकता पड़ती है जिसको मिश्रित अर्थव्यवस्था द्वारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन उन्होंने रणनीतिक क्षेत्रों (जैसे भारी उद्योग, रेलवे, रक्षा, ऊर्जा) में राज्य के नियंत्रण की आवश्यकता पर भी बल दिया।

3.14 योजनाबद्ध विकास

नेहरू ने योजना आयोग (Planning Commission–1950 ई0) की स्थापना की और पांच वर्षीय योजनाओं की शुरुआत की। इसके माध्यम से राज्य ने शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, और बुनियादी ढांचे जैसे क्षेत्रों में सक्रिय हस्तक्षेप किया। नेहरू जी प्रथम पंचवर्षीय योजना जो हैराल्ड–डोमर मॉडल पर आधारित था जिसमें कृषि विकास को विशेष महत्व दिया गया। पहली पंचवर्षीय योजना के आरम्भ होने के समय भारत का औद्योगिक आधार बहुत सीमित था जिसे हम कह सकते हैं कि भारत का औद्योगिक ढ़ॉचा अत्यन्त अल्प विकसित स्वरूप में था। जहाँ तक औद्योगिक विकास का सम्बन्ध है द्वितीय पंचवर्षीय योजना में औद्योगिकरण को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। यह योजना महालोबिस मॉडल पर आधारित था। इसके अन्तर्गत सरकार ने बड़े पैमाने पर पूँजीगत वस्तु उद्योगों की स्थापना का लक्ष्य रखा ताकि भविष्य में औद्योगिक विकास के लिए मजबूत आधार तैयार किया जा सके।

3.15 सामाजिक न्याय की भावना

नेहरू राज्य को केवल आर्थिक नियामक नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने वाला मानते थे। उन्होंने गरीबी उन्मूलन, जातीय भेदभाव, और समान अवसर के लिए राज्य की भूमिका को आवश्यक माना।

3.16 उद्योगों का राष्ट्रीयकरण

सरकारी हस्तक्षेप के अंतर्गत कुछ महत्वपूर्ण उद्योगों (जैसे बैंक, कोयला, इस्पात) का राष्ट्रीयकरण किया गया

ताकि इनका लाभ समाज के सभी वर्गों को मिल सके। उनका यह मानना था कि यदि सरकार के पास इस प्रकार के उद्योग एवं संसाधन उपलब्ध होगें तो सरकार अपनी नीतियों और क्रिया–कलापों को जनता तक आसानी से पहुँचाया जा सकता है।

3.17 शिक्षा और विज्ञान में निवेश

नेहरू विज्ञान और तकनीक को विकास का आधार मानते थे। उन्होंने IITs, AIIMS, और ISRO जैसी संस्थाओं की स्थापना में राज्य की भूमिका सुनिश्चित की।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नेहरू के हस्तक्षेप सिद्धांत का मूल विचार यह था कि भारत जैसे विकासशील देश में सरकार को एक सक्रिय भागीदार बनकर समाज के कमजोर वर्गों को सशक्त बनाना चाहिए और संसाधनों का न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करना चाहिए। यह सिद्धांत बाद के दशकों में भारत की आर्थिक नीति का आधार बना, हालांकि समय के साथ इसमें बदलाव भी आए।

3.18 सामाजिक समानता

नेहरू जी का विकास दृष्टिकोण, समाज में समानता स्थापित करने पर था। वे मानते थे कि समाज के सभी वर्गों को विकास का लाभ मिलना चाहिए। इसी कड़ी में उन्होने भूमि सुधार, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार जैसे कदम उठाए। उन्होंने समाज में व्याप्त बुराईओ एवं असमानताओं को दूर करने के लिए आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक विकास पर भी विशेष बल दिया जिससे सामाजिक शोषण को समाप्त किया जा सके । नेहरू का दृष्टिकोण मिश्रित अर्थव्यवस्था का था, जहाँ राज्य प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों को नियंत्रित करे और निजी क्षेत्र को सीमित भूमिका दी जाए। उन्होंने सोवियत संघ के योजना मॉडल से प्रेरणा ली, किंतु लोकतांत्रिक व्यवस्था बनाए रखी।

आधुनिक शिक्षा नेहरू जी मानते थे कि भारत को अगर भविष्य की ऊँचाइयाँ छूनी है तो आधुनिक शिक्षा ही वह केन्द्र विन्दु हो सकता है। उन्हाने आधुनिक शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा दिया, जो वैज्ञानिक सोच और अनुसंधान पर आधारित हो । उनके द्वारा बनाए गए संस्थान आज भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था के ऊचें मानकों को स्थापित करते हुए देश के विकास में अपरिहार्य प्रतिबद्धता को दर्शा रहे हैं। यद्यपि नेहरू जी का उद्देश्य गाँधी जी से भिन्न था लेकिन दोनो लोग का अंतिम उद्देश्य समान था – भारत का सर्वांगीण एवं समतामूलक विकास ।

नेहरू मानते थे कि जाति, धर्म, भाषा, लिंग या वर्ग के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं होना चाहिए। उनका विश्वास था कि हर व्यक्ति को समाज में बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए।

नेहरू समाजवाद के समर्थक थे। उनका मानना था कि आर्थिक संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण होना चाहिए ताकि अमीरी–गरीबी की खाई कम की जा सके। उन्होंने मिश्रित अर्थव्यवस्था की नींव रखी जिसमें सार्वजनिक और निजी क्षेत्र दोनों का योगदान हो। इसके साथ ही वे राजनीतिक समानता की बात करते हुए कहते हैं कि लोकतंत्र को मजबूत होना चाहिए, जहाँ हर नागरिक को वोट देने और राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने का समान अधिकार हो।

आगे बढ़ते हुए वे महिलाओं को समान अधिकार देने की वकालत की। उनका मानना था कि महिला सशक्तिकरण के बिना समाज प्रगति नहीं कर सकता। नारी समाज का अभिन्न अंग है और वे जिस समाज में कंधे से कंधा मिलाकर जब चलेगी वो समाज कभी–भी पिछे नहीं जायेगा।

अन्ततः कहा जा सकता है कि नेहरू जी एक सशक्त, दूरदर्शी एवं उत्कृष्ट कोटि के अर्थशास्त्री भी थे। जिन्होंने अपने नेतृत्व में भारत को न सिर्फ एम्स, आईआईटी, युनिवर्सिटी और आधुनिक समय के कई उद्योग प्रदान किये जिसपे आज के आधुनिक भारत की नींव टिकी हुई है।

3.19 निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू, दोनों के विचार भारत के प्रगति एवं समृद्धि के सन्दर्भ में भिन्न–भिन्न हैं, यद्यपि दोनों का उद्देश्य भारत को एक स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और समृद्ध राष्ट्र बनाना था।

महात्मा गांधी की कृति **हिंद स्वराज (1909)** में उनका विकास का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से सामने आता है। गांधी जी का मानना था कि भारत का विकास ग्रामीण स्वराज, आत्मनिर्भरता, नैतिकता और अहिंसा पर आधारित होना चाहिए। उन्होंने मशीनों और अंधाधुंध औद्योगीकरण का विरोध करते हुए गांवों के विकास, खादी और हस्तशिल्प के प्रोत्साहन तथा स्वदेशी के माध्यम से आर्थिक स्वावलंबन की बात की। गांधी जी के लिए विकास का अर्थ केवल आर्थिक प्रगति नहीं, बल्कि मानवता और नैतिक मूल्यों का उत्थान था। वहीं पंडित नेहरू ने **भारत एक खोज** (The Discovery of India, 1946) जैसी रचनाओं में भारत के विकास की एक आधुनिक, वैज्ञानिक और औद्योगिक सोच प्रस्तुत की। नेहरू जी का मानना था कि भारत को आगे बढ़ाने के लिए विज्ञान, शिक्षा, तकनीक और योजनाबद्ध औद्योगीकरण जरूरी है। उन्होंने धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और सामाजिक समानता पर बल दिया और आधुनिक संस्थाओं, बड़े बांधों, कारखानों और अनुसंधान केंद्रों को नवभारत के मंदिर कहा। उनके विचारों में राज्य की भूमिका केंद्रीय थी जो विकास को गति दे सके।

अतः आज के समकालीन दौर में यदि दोनों महान विभूतियों के विचारों और दृष्टियों का समेकित प्रयोग किया जाये तो हम अवष्य ही एक उज्जवल, आत्मनिर्भर एवं विकसित भारत की स्थापना की जा सकती है।

बोध आधारित प्रश्न

1. गांधी जी के आर्थिक दृष्टिकोण के मुख्य तत्त्व लिखिए।
2. नेहरू जी की प्रथम पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य क्या था?
3. गांधी जी विकेंद्रीकरण पर इतना बल क्यों देते थे?
4. नेहरू जी ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी को विकास की कुंजी क्यों माना?
5. गांधी और नेहरू के आर्थिक दृष्टिकोणों की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।
6. गांधी का "ग्राम स्वराज" और नेहरू का "औद्योगिकीकरण" दोनों मॉडल भारत की वास्तविकताओं से कितने संगत थे?
7. यदि गांधी और नेहरू के दृष्टिकोणों को मिलाकर एक विकास मॉडल बनाया जाए, तो उसकी क्या विशेषताएँ होंगी?
8. आज के भारत में गांधी और नेहरू की आर्थिक नीतियों का संतुलित प्रयोग कैसे किया जा सकता है?
9. गांधी का ग्राम स्वराज और नेहरू का औद्योगिकीकरण, इनमें से किसे आप अधिक प्रासंगिक मानते हैं और क्यों?
10. क्या नेहरू के औद्योगिकीकरण मॉडल में गांधी के सतत विकास के विचारों की अनदेखी की गई थी? समीक्षात्मक टिप्पणी कीजिए।

References Books (सन्दर्भ ग्रन्थ सूची):

- Guha. R., (2017)- India after Gandhi: The history of the world's largest democracy- Pan Macmillan-
- Guha. R., & Martinez & Alier, J- (1997)- Mahatma Gandhi and the environmental movement- Environmental issues in India: A reader] 111&128
- Gandhi. M.,- (2023)- The story of my experiments with truth: An autobiography.
- Gandhi, M. K. (1909). Hind Swaraj or Indian Home Rule. Navajivan Publishing House.
- Gandhi, M. K. (1945). Constructive Programme: Its Meaning and Place. Navajivan Publishing House.
- Gandhi, M. K. (1908/1920). Sarvodaya. Navajivan Publishing House.

- Gandhi, M. K. (1958–1994). The Collected Works of Mahatma Gandhi (Vols. 1–100). Publications Division, Government of India.
- Panagariya. A., (2024). The Nehru & era Economic History and Thought & Their Lasting Impact- Oxford University Press-
- Nehru. J., (2004)- Glimpses of world history- Penguin UK-
- Nehru. J., (2015)- Letters for a Nation: From Jawaharlal Nehru to His Chief Ministers 1947&1963- Penguin UK-
- Nehru, J. (1934). Glimpses of World History. Oxford University Press.
- Nehru, J. (1936). An Autobiography. Bodley Head.
- Nehru, J. (1946). The Discovery of India. Oxford University Press.
- Government of India. (1951–1964). Parliamentary Speeches of Jawaharlal Nehru. Lok Sabha Secretariat.
- Bettelheim, C. (1968). India Independent. Monthly Review Press.
- Bipan Chandra. (1999). India After Independence, 1947–1999. Penguin.
- Dantwala, M. L. (1996). Indian Agricultural Development Since Independence. Oxford University Press.
- Frankel, F. R. (2005). India's Political Economy, 1947–2004. Oxford University Press.
- Gadgil, D. R. (1965). Planning and Economic Policy in India. Asia Publishing House.
- Kumarappa, J. C. (1945). Economy of Permanence. Sarva Seva Sangh Prakashan.
- Pyarelal. (1956). Mahatma Gandhi: The Last Phase. Navajivan Publishing House.
- Weber, T. (2004). Gandhi as Disciple and Mentor. Cambridge University Press.
- Austin, G. (1966). The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation. Oxford University Press.
- **Journals & Reports**
- Economic and Political Weekly (various issues). Articles on Gandhian and Nehruvian economic thought.
- Indian Economic Journal. (Various issues). Indian Economic Association.
- Journal of Gandhian Studies. (Various issues). Gandhi Peace Foundation.
- Planning Commission. (1951–1956). First Five Year Plan. Government of India.

खण्ड-2 सहकारिता आन्दोलन एवं ग्रामीण विकास

इकाई-1 भारत में सहकारिता आंदोलन का विकास एवं परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य (Objective)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

2.2 भारत में सहकारिता का विकास

2.3 सहकारिता की अवधारणा

2.4 सहकारिता आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य

2.5 सहकारिता के सिद्धांत

2.6 **सहकारी समितियों** के विकास **की कानूनी रुपरेखा: क्रमिक विकास**

2.7 स्वतंत्रता पूर्व सहकारिता आन्दोलन का विकास

(1) सहकारी साख समिति अधिनियम, **1904** - आरंभिक स्थापना

(2) सहकारी समिति अधिनियम, **1912**

(3) सहकारिता पर मैक्लेगन समिति, **1914**

(4) भारत सरकार अधिनियम, **1919**

(5) बहु-ईकाई सहकारी समिति अधिनियम, **1942**

(6) सहकारी योजना समिति (**1945**)

2.8 स्वातंत्र्योत्तर काल में सहकारिता आन्दोलन का विकास

(7) अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति (**1951**)

(8) **सहकारी कानून पर समिति, 1956**

(9) नाबार्ड अधिनियम, **1981**

(10) बहुराज्यीय सहकारी समिति अधिनियम, **1984**

(11) **सहकारी कानून के लोकतंत्रीकरण और सहकारिता में व्यवसायीकरण के प्रबंधन के लिए समिति, 1985**

(12) मॉडल सहकारी समिति अधिनियम, **1990**

(13) **समानांतर सहकारिता अधिनियम** (1995-2003)

(14) राष्ट्रीय सहकारिता नीति (**2002**)

(15) बहु-उद्देश्यीय राज्य सहकारी समिति अधिनियम, **2002**

(16) कम्पनी संशोधन अधिनियम, **2002**

(17) एन.सी.डी.सी संशोधन अधिनियम, **2002**

(18) **सहकारी** ऋण समितियों को पुनर्जीवित करने पर कार्यदल, **2004**

(19) **संविधान (97 वां संशोधन) अधिनियम, 2011**

(20) केन्द्र में सहकारिता मंत्रालय की स्थापना, **2021**

2.9 निष्कर्ष

2.10 बोध प्रश्न

2.11 संदर्भ ग्रंथसूची

1.1 उद्देश्य (Objective)

इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि:

- भारत में सहकारिता के विकास को समझ सकेंगें।
- विश्व में सहकारिता के विकास की स्थिति को समझ सकेंगें।
- सहकारिता के अवधारणा को आत्मसात कर सकेंगें।
- सहकारिता के प्रमुख सिद्धांतों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- सहकारिता के विकास में सहायक स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद की कानून की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।

1.2 प्रस्तावना (Introduction)

सहकारी समितियों का प्रारम्भ 19वीं सदी के मध्य में पश्चिमी यूरोप, उत्तरी अमेरिका और जापान में एक बुनियादी स्तर के संगठनों के रूप में हुआ, लेकिन **रोकडेल पायनियर्स** को सही मायनों में आधुनिक सहकारी समितियों का पूर्वरूप और सहकारी आन्दोलन का जनक माना जाता है। 1844 में उत्तरी ईग्लैण्ड के रोचडेल कसबे में सूत मिल में काम करने वाले 28 कारीगरों ने पहले आधुनिक सहकारी व्यवसाय का आरम्भ किया- इसका नाम था "राकडेल इक्विटेबल पायनियर्स सोसाइटी' बुनकरों को खराब कार्य स्थितियों और कम वेतन जैसी मुश्किलों से जूझना पड़ता था और भोजन तथा घरेलू सामान की मंहगी कीमत उनके बस से बाहर थीं। उन्होंने निर्णय लिया कि अपने सीमित संसाधनों को इकट्ठा कर और एक साथ काम करके वे आधारभूत सामग्री काफी कम कीमतों पर जुटा सकते थे। शुरू में चार ही चीजें बिक्री के लिए थीं- आटा, जौ का आटा, चीनी और मक्खन। पायनियर्स ने निर्णय लिया कि अब खरीददारों से इज्जत, ईमानदारी और खुलेपन से पेश आने का वक्त आ गया था और यह भी कि वे अपनी खरीददारी से होने वाले फायदे में हिस्सा पाएं और उन्हें जनतांत्रिक तरीके से व्यवसाय में अपनी बात रखने का अवसर मिले। दुकान का हर ग्राहक सदस्य बन जाता था और व्यवसाय में उसकी हिस्सेदारी हो जाती थी। शुरू में यह सहकारी दुकान हफ्ते में दो दिन खुली रहती थी, लेकिन तीन महीने में इसका व्यापार इतना बढ़ गया था कि यह हफ्ते में पाच दिन खुलने लगी। जिन आदर्शों पर यह आरम्भिक सहकारी संस्था काम कर रही थी, वे आज भी सभी सहकारी संगठनों की नींव है। इन सिद्धांतों को संशोधित किया गया और आधुनिक बनाया जाता रहा है, लेकिन मूल रूप से वे अभी भी वही हैं जो 1844 में थे।

भारत में सहकारी आंदोलन को आंरभ हुये 12 दशक हो चुके हैं। इन वर्षों में यह आंदोलन विश्व का सबसे बड़ा सहकारी आंदोलन बन गया है। भारत में इसका आरंभ 1904 में **फेड्रिक निकल्सन** द्वारा सहकारी ऋण समिति की स्थापना किये जाने के साथ हुआ था। ऋण क्षेत्र से आरंभ हुआ यह आंदोलन आवास, उपभोक्ता वस्तुओं के उचित मूल्य पर विपणन, विधायन क्षेत्रों और कृषि में उन्नत तरीकों को अपनाने, चकबंदी, क्रय-विक्रय इत्यादि क्षेत्रों में विस्तारित हो चुका है।

भारत में आयोजन के कर्णधारों ने सहकारिता को ग्रामीण क्षेत्र विशेषकर दलितों के विकास की कुंजी के रूप में माना था। समतामूलक, आत्मनिर्भर और न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की नींव ग्रामीण स्वशासन, शिक्षा और आपसी सहयोग पर आधारित शोषण रहित सहकारिता पर

ही रखी जा सकती है। सहकारिता की स्थापना लोकतांत्रिक आधार पर की गयी थी और इसके अंतर्गत निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के गुणों को समन्वित करने का प्रयास किया गया था। पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत कहा गया था,- सहकारिता, आपसी सहयोग की प्रेरणा और सिद्धांतों के संस्थानीकरण को प्रदर्शित करती है। इसके अंतर्गत व्यक्ति की स्वतंत्रता और अवसर को वृहत-स्तरीय संगठन और प्रबंध के लाभों के साथ सम्मिश्रित किया जा सकता है। देश की वर्तमान परिस्थितियों में, वांछित सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के लिए सहकारिता सुविधाजनक साधन है।

एक अनुमान के अनुसार, देश में 6 लाख सहकारी समितियां सक्रिय हैं, अरबों लोगों को रोजगार मिल रहा है। ये समितियां अधिकांश समाज में काम कर रही हैं, लेकिन कृषि, उर्वरक और दूध उत्पादन में उनकी भागीदारी सबसे अधिक है। अब बैंकिंग क्षेत्र में सहकारी समितियों की संख्या बढ़ रही है लेकिन देश के सहकारी आन्दोलन कई विसंगतियों के जाल में फंस गए हैं। 1904 में, अंग्रेजों ने भारत में सहकारी समितियों की एक निश्चित परिभाषा बनाई। कानून बनाने के बाद, इस क्षेत्र में कई पंजीकृत संगठन काम करने आए। सहकारी समिति की स्थापना करके, सरकार ने इसे तेजी से बढ़ाने की कोशिश की है। सरकार के प्रयासों ने सहकारी समितियों की संख्या में वृद्धि की, लेकिन सहयोग के बुनियादी तत्त्व धीरे-धीरे समाप्त हुए।

1.3 भारत में सहकारिता का विकास

विधिवत सहकारी संगठनों के चलन में आने से पहले भी भारत के कई भागों में सहकारिता की अवधारणा और इस पर आधारित गतिविधियां प्रचलन में थीं। ग्रामीण समुदायों द्वारा सामूहिक रूप से बनाए जाने वाले जलाशय या वन, जिन्हें जलराई तथा बनराई कहा जाता था, आम थे। इसी प्रकार ऐसे भी उदाहरण हैं, जहां कोई समूह संसाधनों को एकत्रित करते थे, जैसे कि अनाज का भण्डार बनाया जाता था, जिसमें से अगली फसल के पहले आवश्यकता पड़ने पर उधार लिया जा सकता था या फिर नियमित अंतराल पर सदस्यों से किश्त लेकर जरूरतमंद सदस्य को नकद उधार देना, जैसा कि मद्रास प्रेसिडेन्सी में चिट फण्ड ट्रावनकोर में कुरी या कोल्हापुर में बीसी आदि। इसी प्रकार कोल्हापुर में 'फण्ड' व्यवस्था थी, जिसमें किसान जलाशय बनाकर पानी के बराबरी से बंटवारे की व्यवस्था करते थे, साथ ही फसल की कटाई और मण्डी तक अनाज पहुंचाने की भी। एक व्यवस्था 'लाना' भी थी, जिसमें किसान मिलकर जुताई-बुआई का वार्षिक समझौता करते थे तथा श्रम और बैलों की संख्या के हिसाब से सदस्यों के बीच उपज का बंटवारा होता था। ये सहकारिता के उदाहरण थे।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में कृषकों को संस्थागत वित्त न दिए जाने से उत्पन्न कठिन परिस्थितियों के कारण कष्ट और असंतोष बढ़ता जा रहा था। 1880 के अकाल आयोग और बीस वर्ष बाद 1901 के आयोग ने भारतीय कृषकों के ऋणग्रस्त होने की बात कही, जिसकी वजह से कई बार उनकी जमीन सूदखोरों के कब्जे में चली जाती थी। डेक्कन के दंगों और बढ़ते असंतोष के कारण सरकार को कुछ पहल करनी पड़ी, लेकिन वैधानिक उपायों से स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

कृषि बैंकों का प्रस्ताव सर्वप्रथम 1858 में और फिर 1881 में जस्टिस् एम0जी0 रानाडे के सहयोग से मि0 विलियम बेडरबर्न ने रखा, जो अहमदनगर जिले के न्यायाधीश थे। मार्च, 1892 में मि0 फ्रेडरिक निकल्सन को मद्रास प्रेसिडेंसी के गर्वनर द्वारा इस प्रेसिडेंसी में कृषी या भूमि बैंको की स्थापना की संभावना देखने हेतु नियुक्त किया गया। इन्होंने अपनी रिपोर्ट दो खण्डों में 1895 तथा 1897 में प्रस्तुत किया।

1901 में दुर्भिक्ष आयोग ने सांझी साख संगठनों की स्थापना द्वारा ग्रामीण कृषि बैंकों की स्थापना का सुझाव दिया और इस दिशा में उत्तर पश्चिम प्रान्त और अवध की सरकारों द्वारा कदम उठाए गए। लोगों के समूह को एकत्रित करने के पीछे विचार यह था कि इनमें नई और स्वैच्छिक महत्वपूर्ण साख बन सकेगी, जिसकी वजह से ये समूह गारंटी प्रस्तुत कर सकेंगे और ऋणदाताओं को भी व्यक्ति की बजाए समूह को ऋण देना कम जोखिम भरा लगेगा। आयोग ने कृषि बैंकों के आदर्श/सूत्र भी सुझाए।

भारत में सहकारिता का आरंभ ब्रिटिश-राज के समय में हुआ था। 1901 में सहकारी समितियों के संगठन और उनकी सफलता की संभावनाओं की पड़ताल के लिए ऐडवर्ड ला की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई थी। ऐडवर्ड ला समिति की सिफारिशों को आधार बना कर सहकारी साख अधिनियम, 1904पारित किया गया परंतुशीघ्र ही इसकी कमियां उजागर होने लगीं और 1912 में नया अधिनियम पारित किया गया। 1904 के अधिनियम में प्राथमिक सहकारी समितियों की सहायता के लिए किसी केंद्रीय संस्था की स्थापना नहीं की गई थी। जिसके कारण यह विधान ग्रामीण क्षेत्र की बढती आवश्यकताओं को सहकारिता आन्दोलन के माध्यम से पूरा करने में असफल रहा। 1919 में सहकारिता को केंद्रीय सूची से हटा कर प्रांतीय सूची में स्थानांतरित कर दिया गया ताकि राज्य क्षेत्रीय वातावरण और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार सहकारी आंदोलन को आगे बढ़ा सकें। सहकारी आंदोलन के विकास में **1935 में भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना** एक महत्वपूर्ण

पड़ाव था। द्वितीय विश्व युद्ध के काल में जहां किसानों की आर्थिक स्थिति में, प्राथमिक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि के कारण सुधार हुआ वहीं सहकारिता आंदोलन को भी बल मिला। इस काल में, सहकारिता समितियों की संख्या, सदस्य संख्या, पूंजी एवं संचित राशि में तीव्र वृद्धि हुई। सहकारिता आंदोलन आरंभ के साठ वर्ष में अधिक सफल नहीं रहा। किंतु बाद के काल में सरकार एवं भारतीय रिजर्व बैंक के सहयोग से इस आंदोलन को बल प्राप्त हुआ।

1.4 सहकारिता की अवधारणा

सहकारी समिति व्यक्तियों की एक ऐसी स्वायत्त संस्था है जो संयुक्त स्वामित्व वाले और लोकतांत्रिक आधार पर नियंत्रित उद्यम के जरिए अपनी समान्य, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्वेच्छा से एकजुट होते हैं। सम्पूर्ण विश्व भर में, 100 मिलियन से अधिक महिला एवं पुरुष सहकारी कार्मिकों तथा 800 मिलियन से अधिक व्यक्तिगत सदस्यों ने छोटे पैमाने से लेकर कई मिलियन डॉलर के व्यवसायों तक अपनी पहुँच बनाई है। सहकारिताएं आत्म-सहायता, स्व- उत्तरदायित्व, लोकतंत्र, समानता, समता और एकजुटता के मूल्यों पर आधारित हैं। अपने संस्थापकों की परंपरा का अनुसरण करते हुए सहकारिता के सदस्य ईमानदारी, खुलापन, सामाजिक उत्तरदायित्व और परहित चिंतन जैसे नैतिक मूल्यों का भी अनुसरण करते हैं.

1.5 सहकारिता आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य

सहकारिता आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य कृषकों, ग्रामीण कारीगरों, भूमिहीन मजदूरों एवं समुदाय के कमजोर तथा पिछड़े वर्गों (न्यन आय वाले व्यक्तियों, अर्ध्द रोजगार तथा बेरोजगार) को रोजगार, साख तथा उपयुक्त प्रौधोगिकी प्रदान कर एक अच्छा उत्पादक बनाना है। लेकिन ग्रामीण विकास का लक्ष्य न केवल उत्पादक बढ़ाना है अपितु सभी वर्गों को पूर्ण रोजगार तथा उनमें विकास प्रक्रिया का न्यायसंगत आबंटन करना है। भारत जैसे विकासशील देश में जहां मानव शक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण श्रोत है और जिसका एक भारी अंश समाज का कमजोर वर्गहै, ग्रामीण विकास किसी भी आर्थिक विकास की सार्थक प्रक्रिया के लिए व्यापक महत्व का होता है। सहकारिता एक लोकतान्त्रिक आन्दोलन है जो मात्र अपने सदस्यों द्वारा प्रदर्शित गतिशीलता और निर्देश केवल एक सुयोग्य नेतृत्व में ही कारगर हो सकता है जिसके अभाव में आन्दोलन समस्त उपलब्धियों तथा असफलताओं पर उसके नेतृत्व के स्वरूप और किस्म की छाप होती है जो बदले में आन्दोलन के सामान्य जन का प्रतिबिम्ब होती है।

1.6 सहकारिता के सिद्धांत

सहकारी सिद्धांत वे मार्गदर्शिकाएँ हैं जिनके द्वारा सहकारिताएं अपने मूल्यों को व्यवहार में लाती हैं।

पहला सिद्धांत : स्वैच्छिक और खुली सदस्यता

सहकारिता समितियाँ ऐसे स्वैच्छिक संगठन हैं जो सभी लोगों के लिए खुले हैं जो उनकी सेवाओं का उपयोग करने में समर्थ हैं और लैंगिक, सामाजिक, जातीय, राजनीतिक या धर्म के आधार पर भेदभाव किये बगैर सदस्यता के उत्तरदायित्वों को स्वीकार करने के लिए तैयार है।

दूसरा सिद्धांत : प्रजातांत्रिक सदस्य-नियंत्रण

सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों द्वारा नियंत्रित प्रजातांत्रिक संगठन हैं जो उनकी नीतियाँ निर्धारित करने और निर्णय लेने में सक्रिय तौर पर भाग लेते हैं। चुने गये प्रतिनिधियों के रूप में कार्यरत पुरूष तथा महिलाएं अपने सदस्यों के प्रति जवाबदेह होते हैं। प्राथमिक सहकारी समितियों में सदस्यों के मतदान करने के समान अधिकार होते हैं। (एक सदस्य, एक मत) और दूसरे स्तरों पर भी सहकारी समितियाँ प्रजातांत्रिक तरीके से आयोजित की जाती हैं।

तीसरा सिद्धांत : सदस्य की आर्थिक भागीदारी

सदस्य समान रूप में अंशदान करते हैं और अपनी सहकारी समिति की पूंजी पर प्रजातांत्रिक तरीके से नियंत्रण रखते हैं। कम से कम इस पूंजी का एक हिस्सा आमतौर पर सहकारी समिति की सांझी सम्पत्ति होती है। सदस्यता की शर्त के रूप में अंशदान की गई पूंजी पर सदस्यों को आमतौर पर समिति प्रतिकर, यदि कोई हो मिलता है। सदस्य अधिकोषण पूंजी की निम्नलिखित किसी एक या सभी प्रयोजनों के लिए आवंटित करते हैं सम्भवतः आरक्षित निधियां स्थापित करके जिनका कम से कम एक भाग अभिभाज्य होगा, सहकारी समिति के साथ उनके लेन-देनों के अनुपात में सदस्यों को लाभ पहुंचाकर और सदस्यों द्वारा अनुमोदित अन्य कार्यकलापों में सहायता देकर अपने सहकारी समिति का विकास करेगा

।

चौथा सिद्धांत : स्वायत्तता और स्वतंत्रता

सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों द्वारा नियंत्रित एवं स्वावलम्बी संस्थाएं होती हैं। यदि वे सरकार सहित अन्य संगठनों के साथ करार करती हैं अथवा बाहरी स्रोतों से पूंजी जुटाती हैं, तो वे ऐसा उन शर्तों पर करती है जिनसे उनके सदस्यों द्वारा प्रजातांत्रिक नियंत्रण सुनिश्चित होता हो और उनकी सहकारी स्वायत्तता भी बनी रहती हो।

पांचवा सिद्धांत : शिक्षा, प्रशिक्षण और सूचना

सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों, चुने गये प्रतिनिधियों, प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों को शिक्षा और प्रशिक्षण उपलब्ध कराती है। ताकि वे अपनी सहकारी समितियाँ के विकास में कारगर योगदान कर सके। वे आम जनता विशेषरूप से युवाओं और परामर्शी नेताओं को, सहकारिता के स्वरूप और लाभों के बारे में सूचना देती है।

छठा सिद्धांत : सहकारी समितियों में परस्पर सहयोग

सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों की सर्वाधिक कारगर ढंग से सेवा करती है और स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ढांचों के जरिए साथ-साथ काम करके सहकारिता आन्दोलन को सुदृढ़ बनाती है।

सातवां सिद्धांत : समुदाय के लिए निष्ठा

सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों द्वारा अनुमोदित नीतियों के द्वारा अपने समुदायों के स्थाई विकास के लिए कार्य करती हैं।

1.7 सहकारी समितियों के विकास की कानूनी रुपरेखा: क्रमिक विकास

भारत में सहकारिता का विकास, एक दृष्टि में

(1) सहकारी साख समिति अधिनियम, **1904** - आरंभिक स्थापना

(2) सहकारी समिति अधिनियम, **1912**

(3) सहकारिता पर मैक्लेगन समिति, **1914**

(4) भारत सरकार अधिनियम, **1919**

(5) बहु-ईकाई सहकारी समिति अधिनियम, **1942**

(6) सहकारी योजना समिति (**1945**)

(7) अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति (**1951**)

(8) **सहकारी कानून पर समिति, 1956**

(9) नाबार्ड अधिनियम, **1981**

(10) बहुराज्यीय सहकारी समिति अधिनियम, **1984**

(11) **सहकारी कानून के लोकतंत्रीकरण और सहकारिता में व्यवसायीकरण के प्रबंधन के लिए समिति, 1985**

(12) मॉडल सहकारी समिति अधिनियम, **1990**

(13) **समानांतर सहकारिता अधिनियम** (1995-2003)

(14) राष्ट्रीय सहकारिता नीति (**2002**)

(15) बहु-उद्देश्यीय राज्य सहकारी समिति अधिनियम, **2002**

(16) कम्पनी संशोधन अधिनियम, **2002**

(17) एन.सी.डी.सी संशोधन अधिनियम, **2002**

(18) **सहकारी** ऋण समितियों को पुनर्जीवित करने पर कार्यदल, **2004**

(19) **संविधान (97 वां संशोधन) अधिनियम, 2011**

(20) केन्द्र में सहकारिता मंत्रालय की स्थापना (2021)

भारत में सहकारी समितियों के विकास क्रम को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से दो भागों स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद में बाटकर अध्ययन किया जा सकता है-

1.8 स्वतंत्रता पूर्व सहकारिता आन्दोलन का विकास

सन् 1946 में सरदार बल्लभ भाई पटेल द्वारा प्रेरित तथा श्री मोरारजी देसाई और श्री त्रिभुवन सिंह पटेल के नेतृत्व में गुजरात के खेड़ा जिले के दुग्ध उत्पादक 15 दिन की हड़ताल पर चले गए। दुग्ध सप्लाई करने से मना करने पर, बंबई सरकार को एक निजी कंपनी पोलसन को दूध खरीदने का एकाधिकार प्रदान करने का आदेश वापस लेना पड़ा। जब दो प्राथमिक ग्राम दुग्ध उत्पादक समितियों का अक्तूबर, 1946 में पंजीकरण हुआ तब इतिहास का निर्माण हुआ। कुछ समय बाद 14 दिसम्बर, 1946 को खेड़ा जिला सहकारी दुग्ध उत्पादक संघ का अमूल के नाम से पंजीकरण हुआ।

सन् 1947 में रजिस्ट्रारों के सम्मेलन ने सिफारिश की कि केन्द्रीय बैंकों के माध्यम से प्राथमिक समितियों को अधिक सहायता प्रदान करने के लिए प्रांतीय सहकारी बैंकों का पुनर्गठन किया जाए। पहली बार ऋण को विपणन के साथ प्रभावी ढंग से जोड़ा गया और उदारतापूर्वक ऋण के रूप में सहायता प्रदान करने के लिए तथा बड़ी संख्या में गोदामों और प्रसंस्करण संयंत्रों को स्थापित करने के लिए सहायता देने पर विचार किया गया।

यहां सहकारी समितियों तथा बम्बई में कुछ विकास के बारे में उल्लेख करना उपयुक्त होगा, जिसने सहकारी क्षेत्र को काफी प्रभावित किया। बम्बई सरकार में श्री वैकुण्ठ भाई मेहता सहकारिता के मंत्री बने, इसके बाद प्रांत में सहकारी आन्दोलन शिक्षा कार्यक्रमों तथा शिक्षा निधि की स्थापना की सिफारिश की। सर मणिलाल नानावती की अध्यक्षता वाली कृषि ऋण संगठन समिति ने कृषि विकास में राजकीय सहायता और सहकारी ऋण समितियों को बहु-उद्देश्यीय सहकारी समितियों में बदलने की सिफारिश की। इसने त्रि-स्तरीय सहकारी ऋण बैंकिग व्यवस्था और कई अन्य प्रकार की सहायता देने की सिफारिश की। इसने त्रि-स्तरीय सहकारी ऋण बैंकिग व्यवस्था और कई अन्य प्रकार की सहायता देने की भी सिफारिश की।

1. प्रथम सहकारी अधिनियम - क्रेडिट कोपरेटिव सोसायटी एक्ट, 1904

केवल प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियों के संगठन के लिए। सहकारी समितियों को वैधानिक आधार प्रदान करने के लिए सरकार ने एडवर्ड लॉ कमेटी नियुक्त की जिसमें मि0 निकल्सन भी सदस्य थे। यह कमेटी स्थितियों को परख कर एक कार्य-व्यवस्था बनाने के लिए थी। इस समिति की अनुशंसाओं पर आधारित सहकारी समिति विधेयक 25 मार्च, 1904 को प्रकाश में लाया गया। जैसा कि नाम से जाहिर है सहकारी ऋण समिति अधिनियम केवल ऋण संबंधी सहकारी संगठनों तक सीमित था। 1911 तक 5300 समितियां बन चुकीं थीं, जिनमें 3 लाख से अधिक सदस्य थे। 1904 के अधिनियम के पहले 5-6 वर्षों में भारत में निबंधित हुई कुछ सहकारी समितियां इस प्रकार थीं: राजाहौली ग्रामीण बैंक, जोरहाट, जोरहाट कोआपरेटिव टाउन बैंक, चारीगांव ग्रामीण बैंक, जोरहाट, असम (1904), तिरूर प्राइमरी कृषि सहकारी बैंक लि0, तमिलनाडु (1904), एग्रीकल्चर सर्विस कोऑपरेटिव सोसायटी लि0, देवगांव, पिपरिया, मध्य प्रदेश (1905), बैंस कोऑपरेटिव थ्रिफ्ट एण्ड क्रेडिट सोसायटी लि0, पंजाब (1905), बिलीपद सर्विस कोऑपरेटिव सोसायटी लि0 उड़ीसा (1905), गर्वनमेंट ऑफ इण्डिया, सेक्रिटेरेट कोआपरेटिव थ्रिफ्ट एण्ड क्रेडिट सोसायटी (1905), कनिंगल वैश्य सेवा सहकारी बैंक लि0, कर्नाटक (1905), कसाबे ताड़वले कोऑपरेटिव मल्टीपरपस (बहुउद्देशीय) सोसायटी, महाराष्ट्र (1905), प्रीमियर अर्बन क्रेडिट सोसायटी ऑफ कलकत्ता, पश्चिम बंगाल (1905), चित्तूर कोऑपरेटिव टाउन बैंक, आंध्रा प्रदेश (1907), रोहिका यूनियन ऑफ कोऑपरेटिव क्रेडिट सोसायटी लि0, बिहार (1909), इस अधिनियम के अंतर्गत कई गैर-ऋण संबंधी पहलें भी हुईं, जैसे - मद्रास में ट्रिपलीकेन सोसायटी, जो एक दुकान चलाती थी, धारवाड़ और हुबली में बुनकर ऋण संस्थाएं जो सूत आदि को ऋण में देती थीं। इनका पंजीकरण अर्बन क्रेडिट सोसायटी (शहरी ऋण समितियां) के तौर पर हुआ था।

1904 के अधिनियम में समितियों की स्थापना, सदस्यता के लिए अर्हता, निबंधन, सदस्यों पर देयता, मुनाफे का निष्पादन सदस्यों का अंश और हित, समितियों के लाभ, सदस्यों पर दावे, लेखापरीक्षा, निरीक्षण और पूछताछ, समाप्ति, करों में छूट और नियम बनाने की शक्ति जैसे विषयों पर प्रावधान थे। क्रियात्मक तथा प्रबंधन से संबंधित विषयों को स्थानीय सरकार पर छोड़ दिया गया था ताकि वे सहकारी समितियों के नियम एवं

उप नियमों को आवश्यकतानुसार बनाएं। सहकारी समिति अधिनियम 1904 का ही प्रभाव था कि निबंधक की संस्था सामने आई, जो एक ऐसी आधिकारिक व्यवस्था थी जिसमें सही रूख एवं विशेष प्रशिक्षण वाले अधिकारी सहकारिता को बढ़ावा दें।

2. **सहकारी समिति अधिनियम, 1912 (कोपरेटिव सोसायटी एक्ट, 1912)**

अधिनियम के दायरे में गैर क्रेडिट और संघीय सहकारी समितियों को जोड़ा गया। सहकारी समितियां की संख्या में प्रत्याशा से कहीं अधिक विकास को देखते हुए सन् 1912 का सहकारी समिति अधिनियम आवश्यक हो गया था तथा अपने सदस्यों को ऋणेतर सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए सहकारी समितियों का गठन किया जा सकता था। इस अधिनियम के अंतर्गत सहकारी समितियों के संघ का भी प्रावधान किया गया था। इस अधिनियम से, ऋण के क्षेत्र में शहरी सहकारी बैंकों का परिवर्तन केन्द्रीय सहकारी बैंक के रूप् में हो गया, जिसके सदस्य प्राथमिक सहकारी समितियां तथा व्यक्ति थे। इसी प्रकार ऋणेतर गतिविधियों जैसे क्रय-विक्रय संघों, विक्री समितियों तथा गैर-कृषि क्षेत्रों में हथकरघा बुनकरों तथा अन्य दस्तकारों की समितियों का आयोजन सहकारिता के आधार पर किया गया था।

3. **सहकारिता पर मैक्लेगन समिति 1914**

बैंकिग संकट तथा प्रथम विश्व युद्ध दोनों ने सहकारी समितियों के विकास को प्रभावित किया। यद्यपि सहकारी समितियों के सदस्यों की जमा पूंजी की मात्रा काफी बढ़ गई थी, किन्तु युद्ध ने नकदी फसलों के निर्यात और मूल्यों को बुरी तरह प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप प्राथमिक कृषि समितियों की देनदारी काफी बढ़ गई थी। स्थिति का जायज़ा लेने के लिए अक्तूबर, 1914 में सर एडवर्ड मैक्लेगन की अध्यक्षता में स्थिति का अध्ययन करने और सहकारी समितियों के भविष्य के संबंध में सिफारिशें प्रस्तुत करने के लिए सरकार ने सहकारिता पर एक समिति नियुक्त की। समिति की सिफारिशों का विवरण जो मूलतः ऋण सहकारी समितियों से संबंध है, अनुलग्नक-3 में दिया गया है। इसने मुख्यतया अल्पावधि तथा मध्यावधि पूंजी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से त्रि-स्तरीय संरचना - आधार रूप में प्रत्येक राज्य में प्राथमिक स्तर पर सहकारी संस्था, मध्य स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक और सबसे ऊपर (शीर्ष पर) राज्य सहकारी बैंक स्थापित करने की सिफारिश की। इन समितियों के सहकारी चरित्र, प्रशिक्षण तथा सदस्य शिक्षा तथा रजिस्ट्रार एवं उसके स्टाफ से प्रशिक्षण पर काफी बल दिया।

सन् 1912 के अधिनियम के बाद, पहली सहकारी आवास समिति 1914 में मद्रास सहकारी संघ, 1918 में बम्बई केन्द्रीय सहकारिता संस्थान तथा बंगाल, बिहार, उड़ीसा, पंजाब आदि में इसी प्रकार की समितियां स्थापित की गई। उपभोक्ता सहकारी समितियों तथा बुनकर सहकारी समितियों के अलावा अन्य गैर-कृषि सहकारी ऋण समितियों का निष्पादन अच्छा रहा और इस अवधि में उनकी संख्या और परिचालन में वृद्धि हुई।

4. **भारत सहकार अधिनियम 1919**

सहकार एक प्रांतीय विषय बना। सन् 1919 में सुधार अधिनियम पारित करने के साथ-साथ, सहकारिता का विषय प्रांतों को स्थानांतरित कर दिया गया। सन् 1925 का पहला प्रांतीय अधिनियम बम्बई सहकारी समिति अधिनियम के द्वारा एक व्यक्ति एक मत के सिद्धांत की शुरूआत हुई।

कृषि ऋण की स्थिति चिन्ता का विषय थी तथा विभिन्न समितियों ने विभिन्न प्रांतों में सहकारिता क्षेत्र का पुनरीक्षण किया और अन्य बातों के साथ-साथ भूमि बंधक बैंक की स्थापना की सिफारिश किया। कृषि तथा गैर कृषि क्षेत्रों में समितियों का गठन किया गया किन्तु निजी विक्रय एजेंसियों तथा संचालक मण्डल की अनुभवहीनता के कारण अधिकतर समितियों को प्रचालन संबंधी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। इसने शिक्षा तथा प्रशिक्षण के लिए सहकारी समितियों और संघों को मजबूत बनाने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस समय का महत्वपूर्ण विकास अखिल भारतीय सहकारी समिति संघ 1929 की स्थापना था।

सन् 1934 में भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना से कृषि ऋण के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हुई। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 ने रिजर्व बैंक के अंतर्गत कृषि ऋण विभाग की आवश्यकता पर बल दिया। चूंकि सहकारी समितयों को ग्रामीण विकास का माध्यम बनना था, इसलिए सन् 1935 में लोकप्रिय ढंग से चुनी गई सरकारों की स्थापना के साथ, ऐसे कार्यक्रम तैयार किए गए जिसमें ग्रामीण ऋणग्रस्तता को प्राथमिकता दी गई। सन् 1937 में नियुक्त मेहता समिति ने बहु-उद्देश्यीय सहकारी समितियों के रूप में सहकारी ऋण समितियों के पुनर्गठनकी सिफारिश की।

दूसरे विश्व युद्ध में कृषि उत्पादों के मूल्यों में वृद्धि हुई, जिसके कारण किसानों को अधिक लाभ मिलने के कारण सहकारी समितियों की देनदारी में कमी आई। घरेलू उपभोग तथा कच्चे माल की कमी का मुकाबला करने के लिए सरकार ने उत्पादकों के सामान की खरीदारी तथा

राशन व्यवस्था की शुरूआत की, जिसके लिए सहकारी समितियों का उपयोग करने का निर्णय लिया गया। इससे बहु-उद्देश्यीय सहकारी समितियों के विकास को बल मिला।

सन् 1939-1945 के दौरान शहरी ऋण संरचना के विकास को बल मिला। कई समितियों ने बैंकिग क्रियाकलापों की शुरूआत की और समय के साथ-साथ उनके आकार, प्रचालन और गतिविधियों में महत्वपूर्ण बहुमुखी विकास हुआ।

5. **बहु-ईकाई सहकारी समिति अधिनियम 1942 (बहु-इकाई कोपरेटिव सोसायटी एक्ट,1942)**

उन समितियों के लिए जिनकी सदस्यता और संचालन को एक प्रांत / राज्य से आगे बढ़ाया जा सके। बाद में बहु-राज्य कॉप. सोसायटी एक्ट, 1984 ने इसकी जगह ली। एक से अधिक राज्यों में सदस्यता वाली सहकारी समितियों के विकस के साथ-साथ केन्द्र सरकार ने वेतन भोगी ऋण समितियों का प्रायोजन किया और ऐसी बहु-ईकाई तथा बहु-राज्यीय सहकारी समितियों के लिए सहकारी कानून की आवश्यकता महसूस की गई। तदनुसार 1942 में बहु-ईकाई सहकारी समिति अधिनियम पारित किया गया जिसने सहकारी समितियों के केन्द्रीय रजिस्ट्रार की शक्तियों को व्यावहारिक रूप से राज्य के रजिस्ट्रारों को दे दिया। जहां सहकारी एजेंसियां काफी मजूबत नहीं थीं, वहां सन् 1944 में गाडगिल समिति ने ऋण के अनिवार्य समायोजन तथा कृषि ऋण नियमों की स्थापना की सिफारिश की।

6. **सहकारी योजना समिति (1945)**

श्री आर.जी. सरैया की अध्यक्षता में सन् 1945 में सहकारी योजना समिति की स्थापना हुई। इस समिति ने सहकारी समितियों को आर्थिक आयोजन के लिए लोकतंत्रीकरण का सबसे उपयुक्त माध्यम माना और आर्थिक विकास के प्रत्येक क्षेत्र की परीक्षा की।

1.9 स्वातंत्र्योत्तर काल में सहकारिता आन्दोलन का विकास

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सहकारिता के विकास को बल मिला, योजना आयोग द्वारा निर्धारित विभिन्न योजनाओं में सहकारी समितियों को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई। पहली पंचवर्षीय योजना (1951-1956) में भारत में आर्थिक और राजनैतिक विकास के लिए पसंदीदा संगठनों के रूप में सहकारी समितियों और पंचायतों पर बल देने के औचित्य के रूप में सहकारी आन्दोलन की रूपरेखा तैयार की गई। सामुदायिक विकास के सभी पहलुओं को समेटने के लिए योजना ने संगठन की सहकारी पद्धति को अपनाने पर बल दिया। इसने शहरी सहकारी बैंकों, कामगारों की औद्योगिक सहकारी समितियों, उपभोक्ता सहकारी समितियों, आवास सहकारी समितियों, सहकारी प्रशिक्षण तथा शिक्षा के माध्यम से ज्ञान के प्रसार की व्यवस्था की और यह सिफारिश किया, कि प्रत्येक विभाग सहकारी समितियों के निर्माण की नीति का अनुसरण करे।

1. **अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति (1951)**

इस समय की महत्वपूर्ण पहल सरकार द्वारा गोरवाला समिति की नियुक्ति थी जो अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति के नाम से प्रसिद्ध है। समिति की नियुक्ति सन् 1951 में की गई और सन् 1954 में इसने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। प्रोफेसर ए.डी. गोरवाला के नेतृत्व में सहकारी समितियों की शेयर पूंजी और प्रबंधन में राज्य साझेदारी करने के लिए अग्रणी राज्य नीति में **'सहकार'** के समावेश के लिए सिफारिश की। इसने देखा कि देश के काफी बड़े भाग में सहकारी समितियों का प्रसार नहीं है तथा जिन क्षेत्रों में से समितियां हैं उनमें कृषि जनसंख्या का अधिकांश भाग इनकी सदस्यता से बाहर है। जहां इनकी सदस्यता है भी, वहां उनकी ऋण संबंधी आवश्यकताओं (75.2 प्रतिशत) की आपूर्ति अन्य स्त्रोतों से होती है। समिति ने ग्रामीण ऋण की समेकित व्यवस्था करने तथा उनके मण्डलों में सहकारी नामांकित सदस्यों की नियुक्ति की सिफारिश की। इस प्रकार उनके प्रबंधन में सहभागिता की शुरूआत हुई। समिति ने प्रशिक्षण के महत्व पर बल दिया।भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना भी एक प्रमुख सिफारिश थी।

सरकार तथा उनके चुने हुए प्रतिनिधियों ने आधारभूत उपागम तथा गोरवाला समिति की सिफारिशों को स्वीकार किया। केन्द्र सरकार ने इंपीरियल बैंक में बड़ा हिस्सा प्राप्त किया जिसे बाद में भारतीय स्टेट बैंक में परिवर्तित कर दिया गया। सहकारी ऋण समितियों के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया अधिनियम में संशोधन किया गया।

सन् 1953 में सहकारी समितियों के कार्मिकों के लिए आवश्यक प्रशिक्षण सुविधाओं की स्थापना करने के उद्देश्य से भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक ने संयुक्त रूप से केन्द्रीय समिति का गठन किया। अखिल भारतीय सहकारी संघ और राज्य सहकारी संघों को सहकारी समितियों के सदस्यों तथा पदाधिकारियों के प्रशिक्षण की जिम्मेदारी सौंपी गई।

2. **सहकारी कानून पर समिति, 1956:**

तत्कालीन खाद्य और कृषि मंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री एस.टी. राजा की अध्यक्षता में - राज्य सहकारी समिति अधिनियमों में संशोधन करते हुए सहकारी समितियों पर सरकार की पकड़ को और मजबूत किया गया। सन् 1956 में पटना में अखिल भारतीय सहकारी सम्मेलन हुआ। इसने सहकारी समितियों में राज्य की प्रतिभागिता और उनके निदेशक मण्डल में सरकारी प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को स्वीकार किया। यह स्वीकार किया गया कि ऐसे नामित सदस्यों की कुल संख्या निदेशकों की संख्या का एक तिहाई भाग या तीन, जो भी कम हो, होनी चाहिए। यह उन समितियों पर भी लागू होगा जिनमें सहकारी हिस्सा-पूंजी कुल पूंजी का 50 प्रतिशत से अधिक है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61) ने राष्ट्रीय नीति के केन्द्रीय उद्देश्य के रूप में योजनाबद्ध विकास के अंग के रूप में सहकारी क्षेत्र के निर्माण पर बल दिया। आर्थिक गतिविधि के संगठन के लिए प्रमुख आधार के रूप में सहकारी समितियों को सक्षम बनाने का लक्ष्य रखा गया। अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की सिफारिशों के आधार पर योजना ने सरकारी विकास कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की। यह कल्पना की गई कि गांव का प्रत्येक परिवार कम से कम एक सहकारी समिति का सदस्य होगा। कृषकों को बेहतर सेवाएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से ऋण तथा ऋणेत्तर समितियों को जोड़ने का लक्ष्य रखा गया। सहकारी समितियों में राज्य की विभिन्न स्तरों पर भागीदारी का मुख्य उद्देश्य, हस्तक्षेप या नियंत्रण करने की अपेक्षा, उनकी सहायता करना था। सहकारी समितियों ने राज्य की भागीदारी लागू करने के लिए योजना में दीर्घकालीन राष्ट्रीय कृषि ऋण प्रचालन निधि की स्थापना की सिफारिश की। इस अवधि में केन्द्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय सहकारिता विकास निधि की स्थापना की गई जिससे देश में ऋणेतर सहकारी समितियों की शेयर-पूंजी में हिस्सेदारी के लिए राज्य ऋण ले सकें।

सन् 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव ने औद्योगिक और कृषि उद्देश्यों के लिए और विकासशील सहकारी क्षेत्र के निर्माण के लिए सहकारी आधार पर आयोजित उद्यमों को राजकीय सहायता की आवश्यकता पर बल दिया।

सन् 1936 में श्री एस.टी. राजा की अध्यक्षता वाली सहकारी निधि पर बनाई गई समिति ने राज्य सरकारों के विचारार्थ माॅडल बिल की सिफारिश की। सहकारी क्षेत्र को प्रभावित करने वाला इस समय का महत्वपूर्ण विकास था राष्ट्रीय विकास परिषद का प्रस्ताव (1958)। सहकारिता नीति के प्रस्ताव ने इस बात पर बल दिया कि सहकारी समितियां ग्रामीण समुदाय के आधार पर प्राथमिक ईकाई के रूप में संगठित की जाएं और ग्राम सहकारी समिति तथा पंचायत के बीच गहरा समन्वय होना चाहिए। इस प्रस्ताव ने यह सिफारिशों के परिणामस्वरूप कई राज्य सरकारों ने अपने अधिनियमों में संशोधन किए।

दूसरी योजना में सहकारी विपणन और कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण को सहकारिता विकास की समेकित योजना का अंग माना गया। लगभग 1900 प्राथमिक विपणन समितियों की स्थापना की गई तथा सभी राज्यों में राज्य विपणन महासंघों तथा केन्द्र में राष्ट्रीय सहकारी विपणन महासंघ की स्थापना की गई। कृषकों को ऋण तथा अन्य निवेश प्रदान करते हुए तथा उनके बढ़े हुए उत्पादन का प्रसंस्करण करते हुए, कृषि सहकारी समितियों के साथ-साथ विपणन सहकारी संस्थाओं ने हरित क्रांति के प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-69) ने इस बात पर बल दिया कि आर्थिक जीवन विशेषकर कृषि, लघु सिंचाई, लघु उद्योग तथा प्रसंस्करण, विपणन, वितरण, ग्रामीण विद्युतीकरण, आवास तथा स्थानीय समुदायों के लिए आधारभूत सुविधाओं के विकास के क्षेत्र में सहकारी समितियां धीरे-धीरे विकास करें। यहां तक कि माध्यमिक और बड़े उद्योगों तथा यातायात की कई गतिविधियों को सहकारिता के आधार पर चलाया जाए।

साठ के दशक के मध्य के बाद विशषतया चीनी तथा कताई के क्षेत्र में कृषि प्रसंस्करण सहकारी समितियों की संख्या और अंशदान काफी बढ़ा, जिसका मुख्य आधार सहकारिता के क्षेत्र में बड़े पैमाने के उद्योगों को प्रोत्साहित करने और वित्तीय संस्थानों से दीर्घकालीन ऋण सहायता प्रदान करने की सरकार की नीति थी।

दूध में आनन्द के पैटर्न पर राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड की स्थापना से भारतीय डेयरी सहकारी आन्दोलन को गति मिली। बाद में, राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड ने खाद्य तेलों के क्षेत्र में भी प्रवेश किया।

सन् 1962 में भारत-चीन युद्ध के बाद, उपभोक्ता सहकारी संरचना और सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत बनाया गया। सरकार ने नीति के तौर पर उपभोक्ता या अन्य सहकारी समितियों को उचित दर की दुकानों के आवंटन को तरजीह देने का निर्णय किया तथा कई राज्यों ने उचित दर की नई दुकानों को केवल सहकारी समितियों को ही आवंटित किया।

शहरी सहकारी ऋण समितियों में लोगों की जमा पूंजी बढ़ने के साथ-साथ उन्हें भारतीय रिजर्व बैंक की जमा बीमा योजना के अंतर्गत बीमित

कराने की आवश्यकता महसूस की गइ। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 तथा बाद में बैंकिंग विनियमन अधिनियम 1949 के कुछ चुनिंदा प्रावधानों को 1 मार्च, 1966 से सहकारी बैंकों पर लागू किया गया ताकि उनके बैंकिंग व्यवसाय को विनियमित किया जा सके और जमा राशि पर बीमा कवर की सुविधा दी जा सके।

कुछ राष्ट्रीय संस्थान जो 1960 के दशक के बाद अस्तित्व में आए

केन्द्रीय भूमि बंधक बैंकों के माध्यम से सहकारी समितियों को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने के लिए भारत सरकार द्वारा सन् 1962 में कृषि पुनर्वित्ति निगम की स्थापना की गई।

संसद के अधिनियम द्वारा सांविधिक निकाय के रूप में सन् 1963 में राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम (रा.सह.वि.नि.) की स्थापना की गई। रा.सह.वि.नि. की स्थापना ने सहकारी विपणन तथा प्रसंस्करण समितियों का त्वरित विकास किया।

अक्तूबर 1964 में जब त्तकालीन प्रधान मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री आनन्द के दौरे पर आए तब दुग्ध सहकारी समितियों के द्वारा लाए गए सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन से प्रभावित होकर राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड को राष्ट्रीय स्तर के संगठन के रूप में स्थापित करने की उपयुक्तता के बारे में बात की, ताकि आनन्द पैटर्न की दुग्ध सहकारिता को पूरे देश में लागू किया जा सके।

इस अवधि में राष्ट्रीय सहकारी महासंघों की स्थापना और सन् 1967 में भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ का पुनर्गठन, पुणे में बैकुण्ठ मेहता राष्ट्रीय प्रबंध संस्थान की स्थापना जैसे कई महत्वपूर्ण संगठनात्मक विकास कार्य हुए। उपभोक्ता सहकारी समितियों का विकास भी इस अवधि की मुख्य उपलब्धि थी। साथ ही भूमि विकास बैंकों के विकास ने ग्रामीण इलैक्ट्रिक सहकारी समितियों और डेयरी, कुक्कुटपालन, मत्स्यपालन और श्रमिक सहकारी समितियों की स्थापना को गति प्रदान की।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) अल्पकालीन और मध्यकालीन सहकारी संरचना को व्यावहारिक बनाने के उद्देश्य से सहकारी समितियों के पुनर्गठन को प्राथमिकता प्रदान की। सहकारी समितियों को प्रबंधन सहायता और शेयर पूंजी में अंशदान, साथ ही केन्द्रीय सहकारी बैंकों के पुनर्वास के लिए आवश्यक प्रावधान किए गए। इसने छोटे कृषकों के पक्ष में नीतियों को निश्चित करने पर बल दिया।

सन् 1965 में मिर्धा समिति ने सहकारी समितियों की प्रामाणिकता निर्धारित करने के लिए कुछ मानक स्थिर किए और अप्रामाणिक समितियों को समाप्त करने का सुझाव दिया। इस समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप अधिकांश राज्यों में सहकारी कानूनों में संशोधन किए गए। इसने सहकारी समितियों के स्वायत्त तथा लोकतांत्रिक चरित्र को नष्ट कर दिया।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) ने देनदारी के उच्च स्तर पर ध्यान केन्द्रीत किया। सहकारिता विभाग की अपनी कार्य पद्धति में क्षेत्रीय असन्तुलनों को ठीक करने और सहकारी समितियों के गरीब तबके पर विशेष ध्यान दिए जाने पर बल दिया गया। सन् 1972 में योजना आयोग द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ दल की सिफारिशों के आधार पर सहकारी व्यवस्था के संरचनात्मक सुधार की कल्पना की गई। जैसाकि राष्ट्रीय कृषि आयोग ने कल्पना की थी, उसी प्रकार योजना ने कृषक सेवा सहकारी समितियों को स्थापित करने की सिफारिश की और सहकारी समितियों के व्यवसायिक प्रबंधन की आवश्यकता पर बल दिया।

छठी पंचवर्षीय योजना (1979-85) ने ग्रामीण गरीबों की आर्थिक स्थिति सुधारने की दिशा में व्यवस्थित सहकारी प्रयासों की आवश्यकता पर बल दिया। इस योजना के प्राथमिक कृषि ऋण समितियों को मजबूत और बहुउद्देश्यीय इकाईयों के रूप में पुनर्गठित करने के लिए उपायों की सिफारिश की। इसमें उपभोक्ता और विपणन सहकारी समितियों के संबंध को मजबूत करने का सुझाव दिया। सहकारी संघीय संगठनों की भूमिका का समेकन, डेयरी, मत्स्यपालन तथा लघु सिंचाई सहकारी समितियों के विकास को मजबूत बनाने, लघु और मध्यम स्तरीय सहकारी समितियों में जनशक्ति विकास आदि कुछ योजनाबद्ध कार्यक्रम थे।

1. नाबार्ड अधिनियम 1981

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण बैंक (नाबार्ड) अधिनियम सन् 1981 में पारित किया गया और नाबार्ड की स्थापना का उद्देश्य सहकारी बैंकों को पुनर्वित्त प्रदान करना और कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्र को वाणिज्यिक बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के संसाधनों को बढ़ाकर ऋण क्षमता को बढ़ाना था।

2. बहु राज्यीय सहकारी समिति अधिनियम 1984

वास्तविक बहु राज्यीय सहकारी समितियों के संगठन एवं निष्पादन की सुविधा के लिए और उनके प्रशासन तथा प्रबंधन में एकरूपता लाने के

लिए एक सर्वांगीण केन्द्रीय कानून लागू करने के उद्देश्य से बहु-राज्यीय सहकारी समिति अधिनियम 1984 अधिनियमित किया गया। इससे पहले लागू बहु-राज्यीय सहकारी समिति अधिनियम 1942 को रद्द कर दिया गया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-1990) ने इस तरफ इशारा किया कि यद्यपि ऋण के क्षेत्र में बहुमुखी विकास हुआ है किन्तु ऋणों की कम वसूली और ऋणों की काफी देनदारी चिन्ता का विषय है। अन्य बातों के साथ-साथ योजना ने बहु-उद्देश्यीय इकाईयों के रूप में प्राथमिक ऋण समितियों के विकास, विशेषकर कमजोर वर्गों को निवेश और सेवाओं को सुनिश्चित करने के लिए ऋण के प्रवाह को विस्तार देने के लिए नीतियों और प्रक्रियाओं के समायोजना के लिए पूर्वांचल, शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन को मजबूत बनाने और व्यावसायिक प्रबंधन को प्रोत्साहित करने की सिफारिश की।

3. सहकारी कानून के लोकतंत्रीकरण और सहकारिता में व्यवसायीकरण के प्रबंधन के लिए समिति, 1985

स्वायत्त सहकारी आन्दोलन और सहकारिता नियमों एवं सुधारों के प्रतिपादकों की बढ़ती हुई मांग को देखते हुए सरकार में 1985 में श्री के.एन. अर्द्धनारीश्वर के नेतृत्व में सहकारी प्रबंधन में लोकतंत्रीकरण और व्यवसायीकरण के लिए सहकारी कानून के संबंध में एक समिति का गठन किया। समिति ने राज्य सहकारी अधिनियमों में सहकारी समितियों के लोकतांत्रिक चरित्र और स्वायत्तता के विरूद्ध उन कानूनी प्रावधानों को हटाने और उन प्रावधानों को जोड़ने की सिफारिश की जो सहकारी समितियों में व्यवसायिक प्रबंधन के लिए लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को सक्रिय कर सकें।

4. माडल सहकारी समिति अधिनियम, 1990

समिति ने 1991 में एक मॉडल राज्य सहकारी समिति विधेयक का सुझाव दिया। विधेयक का मुख्य जोर सहकारी समितियों की कार्य प्रणाली में सदस्यों की स्वायत्ता एवं लोकतांत्रिक संस्थाओं का स्वामित्व, प्रबंधन और नियंत्रण सदस्यों दवारा किया जा सके।

सन् 1990 में ब्रह्मप्रकाश चौधरी की अध्यक्षता में योजना आयोग के द्वारा एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया गया जिसे सहकारी आन्दोलन के व्यापक आधार का पुनरीक्षण करने, भावी दिशाओं का सुझाव देने और आदर्श सहकारी अधिनियम को अंतिम रूप देने का काम सौंपा गया। समिति ने सन् 1991 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। सहकारिता राज्य का विषय होने तथा प्रत्येक राज्य में अपने सहकारिता संबंधी कानून होने तथा उसनके संबंधित राज्य तक सीमित सहकारी समितियों के सदस्यों पर लागू होने के कारण माडल सहकारी समिति अधिनियम के मसौदे को सभी राज्य सहकारों को विचार करने तथा राज्य स्तर पर लागू करने के लिए भेजा गया। सन् 1990 में अर्थव्यवस्था में सुधारों तथा सरकार द्वारा उदारीकृत आर्थिक नीतियों का अनुसरण करने के फलस्वरूप विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र सरकारों पर परिवर्तन लाने के लिए दबाव बढ़ाने लगा ताकि सहकारी समितियों को निजी क्षेत्र के साथ प्रतिस्पर्धा के लिए सक्षम बनाया जा सके। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) ने सहकारी आन्दोलन को अधिक स्वायत्तता देते हुए और लोकतंत्रीकरण करते हुए स्व-प्रबंधित, स्व-नियंत्रित और आत्म निर्भर व्यवस्था के रूप में विकसित किया जा सके। इसने आर्थिक क्रियाकलापों को सुधारने के लिए सहकारी समितियों की क्षमता बढ़ाने और छोटे किसानों, श्रमिकों, दस्तकारों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर पैदा करने और व्यवसायिक प्रबंधन के क्षेत्र में सहकारी समितियों के पदाधिकारियों को प्रशिक्षण देने की बात किया।

5. समानांतर सहकारिता अधिनियम

ब्रह्म प्रकाश चौधरी समिति की सिफारिशों के आधार पर नौ राज्यों अर्थात्; ए.पी., मध्य प्रदेश, बिहार, जम्मू-कश्मीर, ओडिशा, कर्नाटक, झारखंड, छत्तीसगढ़ और उत्तरांचल ने अब तक समानांतर सहकारिता अधिनियम को सुनिश्चित किया है, जिससे सहकारी समितियों के स्वायत्त और लोकतांत्रिक कामकाज पर बल दिया जा रहा है।

नवीं योजना (1997-2002) से योजना के अंग के रूप में सहकारी समितियों के बारे में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता। चूंकि सहकारिता राज्य का विषय है और माडल सहकारिता अधिनियम के आधार पर राज्य के मौजूदा कानूनों में संशोधन करने के संबंध में सहकारी समितियों के सदस्यों तथा सभ्य समाज ने सहकारी समितियों की आत्मनिर्भरता के लिए समानांतर सहकारी कानून को लागू करने के लिए कदम उठाए। आत्म निर्भर सहकारी समितियों की सामान्यतया परिभाषा इस रूप में की जाती है कि उन्होंने शेयर पूंजी अंशदान, ऋण तथा गारण्टी के रूप में सरकार से कोई सहायता प्राप्त न की हो। ये कानून मुख्यतया चैधरी ब्रह्मप्रकाश समिति की सिफारिशों पर आधारित थे। आंध्र प्रदेश (1995), मध्य प्रदेश (1999), बिहार (1996), जम्मू और कश्मीर (1999), उड़ीसा (2001), कर्नाटक (1997), झारखण्ड (1996), छत्तीसगढ़ (1999) और उत्तरांचल (2003) - नौ राज्यों में सहकारी समितियों का स्वायत्त और लोकतंत्रीकरण निष्पादन सुनिश्चित करने के उद्देश्य से समानांतर

सहकारी अधिनियम पारित किए गए।

6. राष्ट्रीय सहकारिता नीति (2002)

सन् 2002 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय सहकारिता नीति की घोषणा की। इस नीति का उद्देश्य देश में सहकारी समितियों का सर्वांगीण विकास करना था। नीति का उद्देश्य सहकारी समितियों के स्वायत्तता, आत्म निर्भर और लोकतांत्रिक ढंग से प्रबंधित समितियों का निष्पादन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सहयोग, प्रोत्साहन और सहायता प्रदान करना था, जो अपने सदस्यों के प्रति जवाबदेह हो और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान कर सकें।

सहकारिता के लिए राज्यों के मंत्रियों के सम्मेलन में प्रस्तुत सिफारिशों के आधार पर भारत सरकार ने सन् 2002 में राष्ट्रीय सहकारिता नीति के कार्यान्वयन के लिए योजना तैयार करने के लिए मंत्री स्तरीय कार्यदल का गठन किया गया। इस कार्यदल ने सुझाव दिया कि सभी राज्यों में समानांतर कानूनों के संविधान पर एक ही कानून लागू होना चाहिए। अन्य बातों के साथ-साथ इसने यह भी सिफारिश की गई कि सहकारी समितियों को राजनीति मुक्त करने के उद्देश्य से संसद सदस्यों का विधान सभा के सदस्यों को किसी भी सहकारी समिति में पदाधिकारी न बनाया जाए।

7. बहु-उद्देश्यीय राज्य सहकारी समिति अधिनियम 2002

चौधरी ब्रह्म प्रकाश समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए बहु-राज्य कोपरेटिव सोसायटी एक्ट, 1984 को बहुराज्य कोपरेटिव सोसायटी एक्ट, 2002 से बदल दिया गया। आदर्श सहकारी अधिनियम की भावना को ध्यान में रखते हुए सन् 1984 में पारित बहु-उद्देश्यीय राज्य सहकारी समिति अधिनियम में सन् 2002 में संशोधन किया गया। राज्यों के कानून जो पहले कानूनों के साथ-साथ प्रचलन में थे, उनके विपरीत बहु-उद्देश्यीय राज्य सहकारी समिति अधिनियम 2002 में सन् 1984 के पहले अधिनियम का स्थान ले लिया।

8. कम्पनी संशोधन अधिनियम 2002

डा. वाई. के. अलघ की अध्यक्षता वाली समिति ने कम्पनी अधिनियम 1956 में संशोधन करने का सुझाव दिया। समिति की सिफारिश पर संसद में निर्माता कम्पनी बिल (प्रोड्यूसर कम्पनी बिल) प्रस्तुत किया गया और 06 फरवरी, 2003 को यह कम्पनी अधिनियम 1956 में निर्माता कम्पनियां - खण्ड IXक (पार्ट IXए-प्रोड्यूसर कम्पनीज़ इन द कम्पनी एक्ट 1956) के रूप में कानून बना। परस्पर सहायता के सहकारी सिद्धांत के आधार पर इसने सहकारी उद्यमां के मौजूदा रूप के स्थान पर सांस्थानिक रूप का विकल्प प्रदान किया।

वाई.के. अलघ समिति की सिफारिशों के आधार पर कंपनी एक्ट, 1956 में एक नया अध्याय IX-A (उत्पादक कंपनी) जोड़ा गया। विधान सहकारी कंपनियों के रूप में व्यापार एवं वर्तमान में मौजूद पात्र सहकारी दुग्ध संघों के कंपनियों में रूपांतरण के समावेश के लिए बल देता है, जिससे सहकारी दर्शन-शास्त्र के अनूठे तत्वों का भी ध्यान रखा गया है।

9. एन.सी.डी.सी संशोधन अधिनियम 2002

ऋण देने के कार्यक्षेत्र को सुधारने और उनकी निधि व्यवस्था में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से एन.सी.डी.सी. अधिनियम का 2002 में संशोधन किया गया जिसमें अधिसूचित सेवाओं, पशुधन तथा औद्योगिक गतिविधियों को शामिल किया गया और उपयुक्त सुरक्षा के आधार पर सहकारी समितियों को वित्त-पोषण प्रदान किया गया।

10. सहकारी ऋण समितियों को पुनर्जीवित करने पर कार्यदल, 2004

ग्रामीण सहकारी ऋण की कमियों को सुधारने, ग्रामीण ऋण को तीन वर्षों में दोगुना करने और छोटे सीमांत किसानों को समितियों से प्राप्त होने वाली ऋण व्यवस्था को पर्याप्त रूप से बढ़ाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने सन् 2004 में ग्रामीण सहकारी ऋण समितियों को पुनर्जीवित करने के लिए कार्य योजना का सुझाव देने और इस प्रक्रिया में सुविधा प्रदान करने के आवश्यक उपाय सुझाने के लिए एक कार्यदल का गठन किया गया। प्रो0 ए. वैद्यनाथन की अध्यक्षता में कार्यदल ने सुझाव दिया कि किसी भी प्रकार की वित्तीय पुनर्रचना तबतक पुनर्जीवन नहीं दे पाएगी जबतक इस व्यवस्था की कमियों के मूल कारणों को दूर नहीं किया जाता और इसके लिए कानूनी उपायों की आवश्यकता होगी। अपने विचारणीय विषयों के अनुरूप कार्यदल की सिफारिशें मुख्यतया ऋण समितियों को पुनर्जीवित करने तक सीमित रहीं जिसके लिए इसने एक वित्तीय पैकेज का सुझाव दिया। वैद्यनाथन समिति ने एक आदर्श सहकारी कानून का भी सुझाव दिया जिसे राज्य सरकारें लागू कर सकती हैं। कार्यदल की सिफारिशें अब लागू की जा रही हैं। वैद्यनाथन समिति ने दीर्घकालीन सहकारी ऋण संरचना पर भी अपनी रिपोर्ट दी।

11. संविधान (97 वां संशोधन) अधिनियम – 2011

संविधान (97 वां संशोधन) अधिनियम, 2011 का मुख्य उद्देश्य सहकारिता की स्वायत्तता सुनिश्चित करना तथा राज्य एवं राजनीतिक हस्तक्षेप से उन्हें सुरक्षित करना था। इसके साथ ही इसमें सहकारी समितियों के कुशल संचालन के लिए में अधिक से अधिक प्रबंधकीय कौशल को लाने की भी परिकल्पना की गयी है। संविधान (97 वां संशोधन) अधिनियम, 2011 की मुख्य विशेषताएं सूचीबद्ध हैं:

- सहकारी समिति के निर्देशकों की **संख्या 21 से ज्यादा** नही होनी चाहिए।
- प्रत्येक सहकारी समिति के बोर्ड में एक सीट अनूसूचित जाति/अनूसूचित जनजाति के लिए एवं 2 सीट महिलाओं के लिए **आरक्षित** रखी जाए जिसमें वैयक्तिक सदस्य होंगें और इस प्रकार की श्रेणी/वर्ग के सदस्य होंगे।
- **व्यक्तियों के सह-विकल्प (विशेषज्ञ)** बोर्ड में 21 के अतिरिक्त 2 सदस्यों को जिन्हें बैंकिंग, प्रबंधन, वित्त के क्षेत्र में अनुभव हो अथवा किसी भी अन्य क्षेत्र जो समिति के दवारा किए जा रहे कार्यकलापों से संबंधित हो उसमें विशेषज्ञता हो को भी बोर्ड में सहयोजित किया जा सकता है। इन सहयोजित सदस्यों को सहकारी समिति के किसी भी चुनाव में मतदान करने या बोर्ड के पदाधिकारियों के रूप में निर्वाचित होने की पात्रता का अधिकार नहीं होगा।
- बोर्ड के निर्वाचित सदस्य एवं कार्यालय के अधिकारी का कार्यकाल 5 वर्ष से अधिक न हो।
- **अधिक्रमण (सुपरशेसन)** की अवधि 6 मास से अधिक न हो। सरकार द्वारा जहां किसी प्रकार की सरकारी शेयरहोल्डिंग, ऋण अथवा वित्तीय सहायता की गारंटी नहीं है, वहां कोई अधिक्रमण नही हो।
- सद्स्यों के लिए **सहकारी शिक्षण** और प्रशिक्षण।

2. केन्द्र में सहकारिता मंत्रालय की स्थापना (2021)

केंद्र सरकार द्वारा 'सहकार से समृद्धि' के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मंत्रिमंडल सचिवालय की राजपत्र अधिसूचना सं. 2516 दिनांक **6 जुलाई, 2021** के माध्यम से की गई। मंत्रालय देश में सहकारी आंदोलन को मजबूत करने के लिए एक अलग प्रशासनिक, कानूनी और नीतिगत ढांचा प्रदान करने के लिए जिम्मेदार है। इसका उद्देश्य सहकारी समितियों को एक सच्चे जन-आधारित आंदोलन के रूप में जमीनी स्तर तक पहुँचाना और सहकारी आधारित आर्थिक मॉडल विकसित करना है जहाँ प्रत्येक सदस्य जिम्मेदारी की भावना के साथ काम करता है। मंत्रालय की प्रमुख गतिविधियों में सहकारी समितियों के लिए 'ईज ऑफ डूइंग बिजनेस' के लिए प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करना और बहु-राज्य सहकारी समितियों के विकास को सक्षम करना शामिल है। यह मजबूत करने, पारदर्शिता लाने, आधुनिकीकरण, कंप्यूटरीकरण, प्रतिस्पर्धी सहकारी समितियों का निर्माण करने, ग्रामीण क्षेत्रों में हर वंचित के लिए विकास की पहुंच की चुनौती को पूरा करने के लिए लगातार काम करने और हर गांव को सहकारिता से जोड़ने, हर गांव को " सहकार से समृद्धि' और इसके माध्यम से देश को समृद्ध बनाने पर जोर देता है।

1.9 निष्कर्ष

भारत के संदर्भ में सहकारिता प्राचीन प्राचीन काल से प्रचलित था लेकिन इसकी वैज्ञानिक अवधारणा 19वीं सदी में प्रचलित हुई। वर्तमान समय में सहकारिता आंदोलन अधिकांश क्षेत्रों में कार्य कर रहा है उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण, बचत, निवेश आदि विभिन्न क्रियाकलापों के क्षेत्र में सहकारिता कार्य कर रही है भारत के संदर्भ में सहकारिता का क्रमिक विकास का एक विस्तृत एवं गौरवशाली इतिहास रहा है अधिकांश क्षेत्रों में सहकारिता अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल भी रही है तथा कुछ क्षेत्रों में इस क्षेत्र में असफलता भी प्राप्त हुई है। सहकारिता में असफलता प्राप्त करने के लिए कुछ प्रमुख उत्तरदाई कारकों का समाधान करके उन क्षेत्रों में भी इसे प्रभावशाली और उत्पादक बनाया जा सकता है अतः आवश्यकता इस बात की है कि इससे जुड़े लोगों को इसके नियमों सिद्धांतों से परिचित कराते हुए इससे जुड़े कानून का कठोरता के साथ पालन सुनिश्चित किया जाए तथा कानून का पालन न करने वाले व्यक्ति को दंडित करने का प्रावधान किया जाए क्योंकि बहुत से लोग अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए सहकारिता के नियमों का उल्लंघन करते हैं जिससे यह अपने उद्देश्य को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर पाती है।

1.10 बोध प्रश्न

- सहकारिता की अवधारणा को समझाइए।

- भारत में सरकारी आंदोलन की धीमी वृद्धि पर प्रकाश डालिए।
- भारत में सहकारिता के विकास के लिए सरकारी प्रयत्नों का वर्णन कीजिए।
- सहकारिता के प्रमुख उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
- सहकारिता के सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।
- भारत में सहकारिता के विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।
- भारत में सहकारिता के विकास की क्रमिक रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

1.11 संदर्भ ग्रंथसूची

- भारतीय अर्थव्यवस्था, मिश्रा एवं पुरी, 42वाँ एडिशन 2024, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- भारतीय अर्थव्यवस्था, दत्ता और सुंदरम, 56वाँ एडिशन 2024 एस. चंद्र पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- https://www.cooperation.gov.in/sites/default/files/2023-04/India-cooperative-movement-25-4-23.pdf
- https://socialwelfare.vikaspedia.in/viewcontent/social-welfare/92894092493f92f93e901-90f935902.
- https://www.vivacepanorama.com/co-operative-societies/
- *"वैकुंठ मेहता राष्ट्रीय सहकारी प्रबंध संस्थान". मूल से से 19 जुलाई 2022 को पुरालेखित।*
- *"राष्ट्रीय सहकारी प्रशिक्षण परिषद". मूल से से 19 जुलाई 2022 को पुरालेखित।*
- हलचल, ज़ेवियर समाज सेवा संस्थान, रांची, झारखंड।

इकाई-2 सहकारिता आंदोलन की संरचना (ढांचा)

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य (Objective)

2.2 प्रस्तावना (Introduction)

2.3 सहकारिता की अवधारणा

2.4 भारत में सहकारी समितियों के प्रकार

2.5 भारत में सहकारी समितियों का वर्गीकरण

2.4.1 साख एवं गैर साख समितियाँ

1.4.2 कृषि एवं गैर-कृषि सहकारी ऋण समितियाँ

2.6 कृषि सहकारी ऋण समितियां और गैर कृषि सहकारी ऋण समितियां में अंतर

2.7 भारत में सहकारी आन्दोलन -एक नज़र

2.8 भारत की प्रमुख सहकारी संस्थाएँ

2.9 भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ

2.10 राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम की युवा सहकार उद्यम सहयोग एवं नवाचार योजना

2.11 ग्रामीण विकास में सहकारिता मंत्रालय की भूमिका

2.12 सहकारिता को मज़बूत करने के लिये सरकार के प्रयास

2.13 सहकारी समितियों के समक्ष चुनौतियाँ

2.14 सरकारी समितियां की समस्याओं से दूर करने के उपाय

2.15 निष्कर्ष

2.16 बोध प्रश्न

2.17 संदर्भ ग्रंथसूची

2.1 उद्देश्य (Objective)

इस अध्याय के अध्ययन के बाद छात्र यह समझ सकेंगे कि :

- भारत में सहकारी समितियां के प्रकारों को समझ सकेंगें।
- विश्व में प्रचलित सहकारी समितियां का वर्गीकरण कर सकेंगें।
- साख एवं गैर साख सरकारी समितियां का अंतर कर सकेंगें।
- कृषि एवं गैर कृषि साख सहकारी समितियां को समझ सकेंगें।
- कृषि एवं एवं गैर कृषि साख सहकारी समितियां में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

- भारत के विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए सहकारी आंदोलन की स्थिति को जान सकेंगे।
- भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भारतीय ग्रामीण विकास में सहकारिता मंत्रालय की भूमिका को समझ सकेंगे।
- सहकारी समितियां के समक्ष प्रमुख चुनौतियों को जान सकेंगे।
- सहकारी समितियां के विभिन्न समस्याओं को दूर करने के उपाय के बारे में जान सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी संगठन की सफलता उसके प्रशासनिक संरचना अर्थात ढांचे पर निर्भर करती है भारत में सहकारिता आंदोलन का ढांचा अत्यधिक सुदृढ़ है। उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण, वित्तीय व्यवस्था आदि अनेक क्षेत्रों में सहकारिता विद्यमान है। तथा सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। कुछ संस्थाएं अपने सदस्यों को उनके विभिन्न कार्यों के लिए साख की सुविधा उपलब्ध कराती हैं जैसे नाबार्ड, प्राथमिक सहकारी समितियां, जिला सहकारी समितियां और राज्य स्तरीय सहकारी समितियां। जबकि कुछ अन्य संस्थाएं वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन तथा विनिमय और वितरण में कार्यशील हैं। जोकि व्यक्तिगत लाभ की भावना से प्रेरित ना होकर सामूहिकता की भावना से प्रेरित होती हैं। सहकारी संस्थाएं अपने सभी सदस्यों के लाभ के उद्देश्य से कार्य करती हैं। सभी के कल्याण को बढ़ाने का प्रयास करती हैं। भारत में सहकारिता का गौरवशाली इतिहास रहा है। यह संस्थाएं लोकतांत्रिक प्रक्रिया के अनुसार समानता की भावना विकसित करते हुए अपने सदस्यों को निरंतर प्रगति के लिए अग्रसर करते हैं, जिससे इनका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। यह संस्थाएं ग्रामीण भारत में विकास के मुख्य आधार के रूप में कार्य करती हैं तथा जिसके पास पूंजी एवं धन की कमी होती है। उसे नाम मात्र के ब्याज दर पर ऋण सुविधा भी उपलब्ध कराती जिससे ग्रामीण क्षेत्र में आधारभूत संरचना का विकास होता है। और तीव्र एवं समावेशी विकास की कल्पना को बल प्राप्त होता है। यह समितियां (सहकारिता) अपने सभी सदस्यों के साथ मिलकर सभी के विकास के लिए कार्य करती हैं।

2.3 सहकारिता की अवधारणा

सहकारी समिति व्यक्तियों की एक ऐसी स्वायत्त संस्था है जो संयुक्त स्वामित्व वाले और लोकतांत्रिक आधार पर नियंत्रित उद्यम के जरिए अपनी समान्य, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्वेच्छा से एकजुट होते हैं। सम्पूर्ण विश्व भर में, 100 मिलियन से अधिक महिला एवं पुरुष सहकारी कार्मिकों तथा 800 मिलियन से अधिक व्यक्तिगत सदस्यों ने छोटे पैमाने से लेकर कई मिलियन डॉलर के व्यवसायों तक अपनी पहुँच बनाई है। सहकारिताएं आत्म-सहायता, स्व- उत्तरदायित्व, लोकतंत्र, समानता, समता और एकजुटता के मूल्यों पर आधारित हैं। अपने संस्थापकों की परंपरा का अनुसरण करते हुए सहकारिता के सदस्य ईमानदारी, खुलापन, सामाजिक उत्तरदायित्व और परहित चिंतन जैसे नैतिक मूल्यों का भी अनुसरण करते हैं।

सहकारी **समिति** एक **स्वैच्छिक सदस्य-स्वामित्व वाला संगठन है** जिसे सामान्य आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये बनाया गया है। सहकारी समितियाँ **स्व-सहायता, पारस्परिक सहायता** एवं **सामुदायिक कल्याण** पर बल देती हैं।

2.4. भारत में सहकारी समितियों के प्रकार

- **उपभोक्ता सहकारी समितियाँ:** बिचौलियों को हटाकर उत्पादकों से सीधे स्रोत प्राप्त करके उचित मूल्य पर सामान उपलब्ध कराती हैं। उदाहरणार्थ, केंद्रीय भंडारण।
- **उत्पादक सहकारी समितियाँ:** कच्चे माल और उपकरण सहित आवश्यक उत्पादन सामग्री की आपूर्ति करके छोटे उत्पादकों की सहायता करती हैं।
- **सहकारी विपणन समितियाँ:** छोटे उत्पादकों को उनके उत्पाद सामूहिक रूप से बेचने में सहायता करना, उदाहरणार्थ, **आनंद मिल्क यूनियन लिमिटेड (अमूल)।**

- **सहकारी ऋण समितियाँ:** बचत और ऋण जैसी वित्तीय सेवाएँ प्रदान करती हैं, जैसे, **शहरी सहकारी बैंक, ग्राम सेवा सहकारी समिति।**
- **सहकारी कृषि समितियाँ:** छोटे किसानों को बड़े पैमाने पर कृषि का लाभ दिलाने में सहायता करना, जैसे **लिफ्ट सिंचाई सहकारी समितियाँ, सहकारी समितियाँ और जल पंचायतें।**
- **आवास सहकारी समिति:** अपने सदस्यों के लिये भूमि अधिग्रहण और विकास करके लागत प्रभावी आवास विकल्प प्रदान करती है, उदाहरण के लिये **कर्मचारी आवास समितियाँ** और **मेट्रोपोलिटन आवास सहकारी समिति।**

सहकारी साख (नाबार्ड), सहकारी विपणन (नैफेड), खाद एवं प्रसंस्करण सहकारिता (कृभको, इफको), दुग्ध सहकारिता (अमूल), महिला सहकारिता (एनएफआईसी), आदिवासी सहकारिता (ट्राइफेड), खाद्य सहकारिता (फिश काफेड), श्रमिक सहकारिता (नेशनल फेडरेशन आफ लेबर को-आपरेटिव) और सहकारिता संगठन (एनसीडीसी तथा एनसीयूआई), भारत में सहकारिता की सफलता की गाथा दर्ज करवा चुके हैं। सहकारी समितियों के उत्थान के लिए उनमें समयबद्धता, पारदर्शिता, व्यवहारशीलता तथा सहभागिता का समावेश होना आवश्यक है। गांवों और किसानों के विकास के सपने को साकार करने के लिए 11वीं पंचवर्षीय योजना में सहकारिता को अधिक महत्व दिया जाएगा।

2.5 भारत में सहकारी समितियों का वर्गीकरण

भारत में अनेक क्षेत्र में सहकारी समितियां क्रियाशील हैं जिनका वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता है- (A)साख एवं गैर साख समितियाँ

(B) कृषि एवं गैर कृषि साख समितियाँ

2.5 (A) साख एवं गैर साख समितियाँ

सहकारी समितियों के दो मुख्य प्रकार साख (क्रेडिट) और गैर-साख सहकारी समितियां हैं। साख (क्रेडिट) सहकारी समितियां अपने सदस्यों को ऋण प्रदान करने के उद्देश्य से स्थापित की जाती हैं, जबकि गैर-साख सहकारी समितियां ऋण प्रदान करने के बजाय अन्य गतिविधियों में संलग्न होती हैं, जैसे कि उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री या आवास सुविधा प्राप्त करना आदि।

1. साख (क्रेडिट) सहकारी समितियाँ

साख सहकारी समितियों का मुख्य उद्देश्य ऋण प्रदान करना होता है। यह अपने सदस्यों को उनके व्यावसायिक विकास के लिए सदस्यों को ऋण प्रदान करना, जमा स्वीकार करना, और वित्तीय सेवाएँ प्रदान करना आदि कार्य करती हैं उदाहरणार्थ: प्राथमिक कृषि ऋण समिति (PACS), जिला (केंद्रीय) सहकारी बैंक (DCCB), राज्य सहकारी बैंक (StCB)।

2. गैर-साख सहकारी समितियाँ

गैर-साख समितियों का मुख्य उद्देश्य ऋण प्रदान करने के बजाय अन्य गतिविधियों में संलग्न होती हैं। इनका मुख्य कार्य उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री, आवास की सुविधा, औद्योगिक उत्पाद का उत्पादन आदि होता है। उदाहरणार्थ: उपभोक्ता सहकारी समिति, आवास सहकारी समिति, औद्योगिक सहकारी समिति। इन दो प्रकार की सहकारी समितियों के बीच मुख्य अंतर उनके उद्देश्य और गतिविधियों में है। ऋण सहकारी समितियां ऋण प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित करती हैं, जबकि गैर-ऋण सहकारी समितियां ऋण प्रदान करने के बजाय अन्य गतिविधियों में संलग्न होती हैं।

2.5 (B) कृषि एवं गैर कृषि साख समितियाँ

कृषि सहकारी ऋण समिति (Agricultural Credit Cooperative Society) और गैर-कृषि सहकारी ऋण समिति (Non-Agricultural Credit Cooperative Society) दोनों ही सहकारी समितियाँ हैं जो अपने सदस्यों को ऋण प्रदान करती हैं, लेकिन उनकी कार्यप्रणाली और ऋण के प्रकार अलग-अलग होते हैं। कृषि सहकारी ऋण समितियाँ मुख्यतः किसानों को कृषि संबंधी गतिविधियों के लिए ऋण देती हैं, जबकि गैर-कृषि सहकारी ऋण समितियाँ कृषि क्षेत्र से बाहर के लोगों को विभिन्न प्रकार के ऋण प्रदान करती हैं।

2.6 कृषि सहकारी ऋण समिति (Agricultural Credit Cooperative Society):

कृषि साख सहकारी समिति (Agricultural Credit Cooperative Society) एक सहकारी संस्था है जो किसानों को साख (ऋण)

प्रदान करने के लिए स्थापित की जाती है। यह समिति मुख्य रूप से किसानों को कृषि के लिए आवश्यक संसाधनों जैसे बीज, खाद, और उपकरण खरीदने के लिए ऋण देती है। यह समिति किसानों को फसल की कटाई और बिक्री के लिए भी ऋण प्रदान कर सकती है। यह समिति किसानों को कृषि संबंधी गतिविधियों को बेहतर ढंग से करने में मदद करती है और उनकी आय बढ़ाने में भी योगदान देती है। कृषि सहकारी ऋण समितियाँ भारत में ग्रामीण स्तर पर किसानों को संस्थागत ऋण प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं। जैसे प्राथमिक कृषि ऋण समितियाँ (PACS) (Primary Agricultural Credit Societies) भी कृषि सहकारी ऋण समितियों का ही एक रूप हैं।

प्राथमिक कृषि ऋण समितियाँ

प्राथमिक कृषि ऋण समितियाँ (PACS) ग्राम स्तरीय सहकारी **ऋण समितियाँ** हैं जो **राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंकों (SCB)** की अध्यक्षता में त्रिस्तरीय सहकारी ऋण संरचना में अंतिम कड़ी के रूप में कार्य करती हैं। पहला **PACS 1904 में गठित किया गया था।** SCB से ऋण **ज़िला केंद्रीय सहकारी बैंकों (DCCB)** को हस्तांतरित किया जाता है, जो **ज़िला स्तर** पर काम करते हैं। DCCB PACS के साथ काम करते हैं, जो सीधे किसानों से निपटते हैं। PACS किसानों को विभिन्न कृषि संबंधी गतिविधियों के लिये **अल्पावधि एवं मध्यमावधि कृषि ऋण** उपलब्ध कराती हैं।

कृषि साख सहकारी समिति के मुख्य कार्य:

- **कृषि ऋण प्रदान करना:** सदस्य किसानों को उनके कृषि कार्यों के लिए ऋण प्रदान करना, जैसे कि बीज, खाद, कीटनाशक, सिंचाई उपकरण आदि की खरीद।
- **कृषि संबंधी वस्तुओं की आपूर्ति:** सदस्यों को कृषि संबंधी आवश्यक वस्तुएं जैसे बीज, खाद, कीटनाशक आदि उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना।
- **सदस्यों को प्रशिक्षण और मार्गदर्शन प्रदान करना:** किसानों को आधुनिक कृषि तकनीकों और उन्नत कृषि पद्धतियों के बारे में जानकारी प्रदान करना और उन्हें कृषि में बेहतर प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित करना।
- **कृषि उत्पादों की मार्केटिंग:** सदस्यों के कृषि उत्पादों को बाजार में उचित मूल्य पर बेचने में मदद करना।
- **सरकारी योजनाओं का क्रियान्वयन:** किसानों के लाभ के लिए सरकार द्वारा चलाए जाने वाले कृषि विकास योजनाओं का क्रियान्वयन करना।
- **ग्रामीण विकास में योगदान:** ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार करके ग्रामीण विकास में योगदान करना।
- **सहकारी आंदोलन को बढ़ावा देना:** सहकारी आंदोलन को बढ़ावा देकर ग्रामीण समुदाय को एक साथ लाने और उन्हें सशक्त बनाने में योगदान करना।
- **कृषि साख सहकारी समितियों का सुदृढ़ीकरण:** सरकार और हितधारक इन समितियों को मजबूत करके उनकी क्षमता, दक्षता और प्रभावशीलता को बढ़ाना चाहते हैं, जिससे किसानों को अधिक लाभ मिल सके और ग्रामीण समुदायों का विकास हो सके.

1.4.(B) 2. गैर-कृषि सहकारी ऋण समिति (Non-Agricultural Credit Cooperative Society)

गैर-कृषि सहकारी ऋण समितियां कृषि क्षेत्र से बाहर के लोगों को ऋण प्रदान करती है, जैसे कि छोटे व्यवसाय, शहरी लोग, या कर्मचारी। यह समिति अपने सदस्यों को विभिन्न प्रकार के ऋण प्रदान कर सकती है, जैसे कि व्यक्तिगत ऋण, व्यवसाय ऋण, या आवास ऋण। यह समिति शहरी सहकारी बैंकों और अन्य गैर-कृषि ऋण समितियों के साथ मिलकर गैर-कृषि ऋण की जरूरतों को पूरा करती है। गैर-कृषि ऋण समितियाँ शहरी क्षेत्रों में ऋण प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। गैर-कृषि ऋण समितियॉ शहरी सहकारी बैंक और गैर-कृषि ऋण सहकारी समितियां गैर-कृषि ऋण की जरूरतों को पूरा करती हैं। राज्य में शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र ने बैंकिंग क्षेत्र में जबरदस्त प्रगति हासिल की है और देश में तीसरा स्थान हासिल किया है। शहरी सहकारी बैंकों के अलावा, गैर-कृषि ऋण सहकारी समितियां और कर्मचारी ऋण सहकारी समितियां भी काम कर रही हैं और ऋण देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारत में वर्ष 2021 तक 4505 गैर कृषि ऋण सहकारी समितियाँ क्रियाशील है। जिनकी कुल-1,435 शाखाएं कार्य कर रही हैं। इन बैंकों

के कुल सदस्य 49.09 लाख सदस्य हैं। इनकी जमा पूंजी 1,14,799.76 करोड़ है। इन बैंकों के द्वारा ऋण/अग्रिम राशि 2,22,482.82 करोड़ का ऋण वितरित किया गया है।

शहरी सहकारी बैंक

यह शहरी सहकारी बैंक और गैर कृषि ऋण सहकारी समितियां जरूरतमंद सदस्यों की जरूरत के अनुसार लघु और मध्यम उद्योगों, गृह निर्माण और अन्य उपभोग ऋणों को ऋण दे रही हैं। यह शहरी बैंक और गैर कृषि ऋण सहकारी समितियां स्वयं विकसित हैं और सरकार की वित्तीय सहायता पर निर्भर नहीं हैं।शहरी सहकारी बैंकों की गतिविधियों का प्रतिनिधित्व करना तथा राज्य सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक के साथ समन्वय करना, ताकि उनकी बैंकिंग गतिविधियों में एकरूपता को बढ़ावा मिले। इन बैंकों के विकास और हितों की रक्षा के लिए काम करना तथा उनका प्रतिनिधित्व करना। इन बैंकों की तकनीकी और व्यावहारिक समस्याओं से संबंधित समस्याओं पर चर्चा करने के लिए साझा मंच प्रदान करने का कार्य भी यह बैंक करते हैं।

भारत में वर्ष 2021 तक 262 शहरी सहकारी बैंक क्रियाशील है। जिनकी कुल-1,145 शाखाएं कार्य कर रही हैं। जिसमें से कुल 24 महिला सहकारी बैंक हैं। इन बैंकों के कुल सदस्य 25.55 लाख सदस्य हैं। इनकी शेयर पूंजी 1,59,334.42 करोड़ तथा कार्यशील पूंजी 50,161.42 करोड़ है। इन बैंकों के द्वारा 28,112.45 करोड़ का ऋण वितरित किया गया है।

कृषि सहकारी ऋण समितियां और गैर कृषि सहकारी ऋण समितियां में अंतर:-

क्रम संख्या	अंतर का आधार	कृषि सहकारी ऋण समिति (Agricultural Credit Cooperative Society)	गैर-कृषि सहकारी ऋण समिति (Non-Agricultural Credit Cooperative Society)
1	ऋण का उद्देश्य	कृषि संबंधी गतिविधियाँ	कृषि क्षेत्र से बाहर की गतिविधियाँ
2	ऋण का प्रकार	कृषि ऋण	व्यक्तिगत ऋण, व्यवसाय ऋण, आवास ऋण, आदि
3	सदस्यों का प्रकार	किसान	किसान और गैर-किसान
4	कार्यक्षेत्र	ग्रामीण क्षेत्र	शहरी क्षेत्र
5	उदाहरण:	कृषि सहकारी ऋण समिति का उदाहरण है: प्राथमिक कृषि ऋण समिति (PACS)।	गैर-कृषि सहकारी ऋण समिति का उदाहरण है: शहरी सहकारी बैंक।

1.7. भारत में सहकारी आन्दोलन -एक नज़र

सहकारी समितियां आज 99 प्रतिशत भारतीय गांवों को और देश में 71 प्रतिशत ग्रामीण घरों के सभी क्षेत्रों तक फैली हुई हैं। भारतीय राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में उनके प्रतिशत योगदान को निम्न सारणी के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है

S NO	Cooperative share in the Economy	Percentage Contribution
1	कृषि ऋण वितरण	18 %
2	उर्वरक वितरित	36 %
3	उर्वरक उत्पादन	25 %
4	चीनी उत्पादन	50 %
5	स्पिनलीग	10 %
6	कुल उत्पादन के लिए दूध प्रोक्योर्मेंट	8 %
7	यार्न उत्पादन	22 %
8	हथकरघा	54 %

9	मछुआरा सहकारिता	21 %
10	भंडारण सुविधाएं (ग्राम स्तरीय पीएसीएस)	64 %

2.8. भारत की प्रमुख सहकारी संस्थाएँ

भारत में सहकारिता आन्दोलन का एक लम्बा एवं विस्तृत इतिहास है। लगभग 100 वर्ष से भी अधिक की अवधि के दौरान आन्दोलन ने विविध प्रकार के कार्य किए हैं तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक बदलाव में अहम भूमिका निभाई है। आज यह आन्दोलन चीनी, दुग्ध, ऋण एवं उर्वरक आदि महत्वपूर्ण क्षेत्रों में महान शक्ति के रूप में उभरकर सामने आया है। आज अनेकों सहकारी ब्रांड केवल भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी घर-घर प्रचलित हो गए हैं।

- भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ
- नेफेड-विपणन सहकारी संस्थाओं की शीर्ष संस्था है।
- इफको और कृभको जैसी सहकारी संस्थाओं ने उत्पादन में किसानों की सेवा में उत्कृष्टता के नये रिकॉर्ड स्थापित किये हैं।
- चीनी उत्पादन में सहकारी चीनी मिलों का उल्लेखनीय योगदान रहा है।
- सहकारी आवास आन्दोलन-राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम

2.9 भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ

भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ समूचे सहकारी आंदोलन का प्रतिनिधित्व करने वाला शीर्ष सहकारी संगठन है। इसका उद्भव 1929 में अखिल भारतीय सहकारी संस्थान के रूप में और अखिल भारतीय सहकारी संस्थानों के एसोसिएशन एवं भारतीय प्रांतीय सहकारी बैंक एसोसिएशन के साथ विलय के माध्यम से पुनः भारतीय सहकारी संघ के रूप में संगठित हुआ और तत्पश्चात् सन् 1961 में भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ के रूप में परिवर्तित किया गया। भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ ने एक लम्बी यात्रा तय की और तब से अब देश में सहकारी आंदोलन की एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में उभरा है। देश के भारतीय सहकारी आंदोलन का शीर्ष संगठन होने के नाते, भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ सहकारी क्षेत्र को 21वीं शताब्दी में सक्रियता एवं गतिशीलता से ले जाने के लिए वचनबद्ध है। भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ का यह उददेश रहा है कि देश में सहकारिता की आवाज बुलंद हो।

भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ के उद्देश्य

संघ के उद्देश्य "भारत में सहकारी आंदोलन को उन्नतिशील व विकासशील बनाना, लोगों को बुनियादी सहकारी सिद्धांतो के आधार पर सहकारी विचारों के उद्बोधक के रूप में सहकारिता के क्षेत्र को सुदृढ़ करना एवं विचार हेतु अपेक्षित प्रयत्न करने के सम्बन्ध में शिक्षित करना, उनका मार्गदर्शन करना तथा उनको सहायता प्रदान करना है'। इस प्रधान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संघ स्वयं तथा अन्य सहकारी संस्थाओं के सहयोग से निम्नलिखित कार्य करता हैः

- सहकारी नीति संबंधी विचार व्यक्त करना तथा राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सहकारी आंदोलन के अधिकृत प्रतिनिधि की भूमिका का निर्वाह करना।
- सहकारी शिक्षण/प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन तथा सहकारी पद्धतियों के सिद्धातों को प्रभावी बनाना।
- प्रमुख सहकारी समस्याओं के समाधान संबंधी शोध एवं अन्वेषण कार्यो का संचालन, संगठन, सहायता तथा संयोजन।
- सहकारी साहित्य जिसमें दृश्य-श्रव्य तथा अन्य सहायक साधन जैसे सहकारी फिल्म, फिल्म-स्ट्रिप्स आदि सम्मिलित है, का निर्माण एवं प्रकाशन।
- सहकारी क्षेत्र की उपलब्धियों, पत्रिकाओं, विवरणिकाओं, प्रपत्रों, पुस्तकों में प्रकाशन तथा फिल्मों, प्रसारणों एवं टीवी आदि के माध्यम से सहकारी आंदोलन के लिए विकासानुरूप वातावरण प्रस्तुत करना।

- सूचना एवं पुस्तकालय की व्यवस्था।
- राष्ट्रीय सहकारी कांग्रेस तथा अन्य सहकारी सम्मेलनों, बैठकों, परिगोष्ठियों एवं प्रदर्शनियों का आयोजन तथा इनका संचालन करना।
- अंतराष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरों पर संघ की ओर से सम्मेलनों में भाग लेने वालेप्रतिनिधियों, पर्यवेक्षकों एवं शिष्ट मण्डलों का चयन।
- सहकारी संस्थाओं के विकास में सहायता प्रदान करना, सदस्य संस्थाओं की कठिनाईयों एवं समस्याओं के समाधान में उनको सहायता करना तथा कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में सहयोग देना, और देश में सहकारी आंदोलन के लोकतांत्रिक ढ़ाचे की सुरक्षा करना।
- प्रख्यात सहकारी बंधुओं को सम्मान प्रदान करना।
- सहकारिता विकास में सम्मिलित आईसीए यूएनओ, एफएओ, आईएलओ, यूएनडीपी एवं अन्य अंतर्राष्ट्रीय एजेन्सीयों के सक्रिय सहयोग के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सहकारी संबंधों को प्रोत्साहित करना।
- भारतीय सहकारी आंदोलन के लाभार्थ नोडल एजेंसी के रूप में कार्यरत एवं महत्वपूर्ण सूचनाओं को दस्तावेज़ द्वारा प्रसारित कर सहकारी रूप से अंतर्राष्ट्रीय विपणन में सहयोग एवं प्रोन्नत करना, और
- सहकारी समितियों के लिए परामर्श सेवाएं प्रदान।

2.10. राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी) की युवा सहकार उद्यम सहयोग एवं नवाचार योजना

केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री ने राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी) की युवा सहकार उद्यम सहयोग एवं नवाचार योजना नामक एक युवा अनुकूल योजना का शुभारंभ किया। इस योजना को युवाओं की आवश्यकताओं एवं महत्वकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए सहकारी व्यवसाय उपक्रमों की ओर ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से एनसीडीसी ने तैयार किया है। उत्तर पूर्वी क्षेत्र, महत्वाकांक्षी जिलों और महिलाओं/अजा/अजजा/दिव्यांग सदस्यों के स्वामित्व वाली सहकारी समितियों के लिए यह एक विशेष पहल है।

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी) योजना के शुभारंभ का मुख्य उद्देश्य सहकारी समितियों में युवा उद्यमियों को प्रोत्साहित करना है। केन्द्र सरकार स्टार्ट अप योजना को लगातार प्रोत्साहित कर रही है। यह योजना व्यवसाय, गैर-पारम्परिक व्यवसाय के उभरते अवसरों को सरल बनाने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। निजी एवं कॉरपोरेट क्षेत्र तथा स्टार्ट अप हब के द्वारा अनुकूल वातावरण का लाभ उठाने लिए युवाओं को उत्साहित किया जा रहा है। नई योजना का शुभारंभ सहकारिता क्षेत्र में नवाचार को प्रोत्साहित करेगा।

यह योजना एनसीडीसी द्वारा सृजित 1000 करोड़ रुपये के 'सहकारिता स्टार्ट अप एवं नवाचार निधि (सीएसआईएफ) से लिंक्ड होगी। यह पूर्वोत्तर क्षेत्रों, महत्वाकांक्षी जिलों तथा महिलाओं अथवा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातिव दिव्यांग सदस्यों की सहकारिताओं हेतु युवा अनुकूल पहलों में शामिल होगी। इन विशेष श्रेणियों के लिए वित्त पोषण परियोजना लागत का 80% तक होगा अन्य के लिए यह 70% होगा। जिन प्रोजेक्ट की लागत 3 करोड़ तक है उनके प्रोत्साहन के लिए योजना में ब्याज दर प्रचलित टर्म लोन पर लागू ब्याज दर से 2% कम होगी, साथ ही मूलधन के भुगतान पर 2 साल का अधिस्थगन दिया जायेगा। योजना का लाभ लेने हेतु कम से कम एक वर्ष से संचालित सभी प्रकार की सहकारी समितियां पात्र हैं।

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी) योजना का क्रियान्वयन आज के युवाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम बनाने के लिए किया गया। एनसीडीसी सहकारिता की दुनिया में अति महत्वपूर्ण वित्तीय संस्था है जिसने वर्ष 2022 तक देश के किसानों की आय दुगुनी करने के मिशन सहकार-22 की शुरूआात की है।

एनसीडीसी सहकारी क्षेत्र हेतु शीर्ष वित्तीय तथा विकासात्मक संस्थान के रूप में कार्यरत एकमात्र सांविधिक संगठन है। यह कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों से जुड़े विविध कृषि क्षेत्रों में सहकारिताओं को सहयोग प्रदान करता है। यह एक आईएसओ: 9001:2015 अनुपालक संगठन है तथा प्रतिस्पर्धात्मक वित्त पोषण से संबद्ध है। 2014-2018 (13 नवंबर तक) के दौरान एनसीडीसी द्वारा 63702.61 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता में निर्गत की गयी है, जो 2010-14 के दौरान निर्गत 19850.6 करोड़ रुपये से 220% अधिक है।

1.11. ग्रामीण विकास में सहकारिता मंत्रालय की भूमिका

- प्रत्येक गाँव को सहकारी समितियों से जोड़ने के लिये **सहकार से समृद्धि** अभियान शुरू किया गया।

- प्राथमिक कृषि ऋण समितियों (PACS) के लिये **आदर्श उपनियम,** ताकि प्रशासन में सुधार हो और समावेशिता बढ़े।
- 63,000 **PACS** को आधुनिक बनाने और **NABARD** के साथ जोड़ने के लिये 2,516 करोड़ रुपए की परियोजना के माध्यम से **PACS का कम्प्यूटरीकरण।**
- **डेयरी, मत्स्य पालन** और **अनाज भंडारण** जैसे विभिन्न कार्यों के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में नए **बहुउद्देशीय PACS की स्थापना।**

1.12. सहकारिता को मज़बूत करने के लिये सरकार के प्रयास

- **विकेंद्रीकृत अनाज भंडारण योजना:** अपव्यय और परिवहन लागत को कम करने के लिये PACS स्तर पर गोदामों और कृषि-बुनियादी ढाँचे की स्थापना।
- **कृषक उत्पादक संगठनों (FPO) का गठन:** बेहतर बाज़ार संपर्क के साथ किसानों को सशक्त बनाना।
- **PM भारतीय जन औषधि केंद्र**: **जन औषधि केंद्रों** के माध्यम से सस्ती दवाएँ उपलब्ध कराने के लिये PACS का उपयोग किया जा रहा है।
- **PM-कुसुम अभिसरण:** PACS सदस्यों को सिंचाई के लिये **सौर पंप** अपनाने में सक्षम बनाना, सतत् कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देना।
- **वित्तीय समावेशन के लिये सहकारिताएँ: शहरी और ग्रामीण सहकारी बैंक** जैसी सहकारी संस्थाएँ किफायती ऋण उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, विशेष रूप से किसानों और छोटे उद्यमियों को, जो मुख्यधारा की बैंकिंग सेवाओं से वंचित हैं।
- **महिलाओं और हाशिये पर पड़े समुदायों का सशक्तिकरण:** महिला सहकारी समितियाँ और ग्रामीण सहकारी समितियाँ आर्थिक अवसर पैदा करने और वंचित क्षेत्रों में जीवन स्तर में सुधार लाने पर ध्यान केंद्रित करती हैं।

भारत में सहकारिता के उदाहरण

- **HOPCOMS (बागवानी उत्पादकों की सहकारी विपणन और प्रसंस्करण सोसायटी):** HOPCOMS, कृषि उत्पादों के प्रत्यक्ष विपणन के लिये वर्ष 1965 में स्थापित एक किसान सोसायटी है। इसका मुख्यालय बंगलूरू में है।
- **लिज्जत पापड़ (श्री महिला गृह उद्योग लिज्जत पापड़):** पापड़ उत्पादन के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाने वाली एक प्रेरक महिला सहकारी संस्था
- **इंडियन कॉफी हाउस:** यह भारत में एक रेस्तराँ शृंखला है जिसे कई श्रमिक सहकारी समितियों द्वारा चलाया जाता है। इस शृंखला की शुरुआत कॉफी सेस कमेटी द्वारा की गई थी, जिसका पहला आउटलेट - तब 'इंडिया कॉफी हाउस' नाम से - 1936 में चर्चगेट, बॉम्बे में खोला गया था। इसे इंडियन कॉफी बोर्ड द्वारा संचालित किया जाता था।

1.13. सहकारी समितियों के समक्ष चुनौतियाँ

- **शासन संबंधी चुनौतियाँ:** सहकारी समितियाँ पारदर्शिता, जवाबदेही और लोकतांत्रिक निर्णय लेने की प्रक्रियाओं की कमी की चुनौतियों से जूझती हैं।
- **वित्तीय संसाधनों तक सीमित पहुँच:** कई सहकारी समितियों, विशेषकर हाशिये पर पड़े समुदायों की सेवा करने वाली समितियों को वित्तीय संसाधनों तक पहुँचने में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उनके पास प्रायः पारंपरिक वित्तीय संस्थाओं द्वारा अपेक्षित **संपार्श्विक या औपचारिक दस्तावेज़ का अभाव** होता है, जिससे ऋण प्राप्त करना कठिन हो जाता है।
- **सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ और बहिष्कार:** सहकारी समितियों को अक्सर **समावेशिता की कमी, संरचनात्मक असमानताओं के अस्तित्व** आदि से संबंधित मुद्दों का सामना करना पड़ता है।

- **अवसंरचना संबंधी बाधाएँ:** अवसंरचना संबंधी बाधाएँ और **कनेक्टिविटी की कमी** उनकी दक्षता और प्रभावशीलता को प्रभावित करती है, जिससे पहुँच सीमित हो जाती है।
- **तकनीकी और प्रबंधकीय क्षमताओं का अभाव:** प्रशिक्षण और कौशल विकास पहलों का अभाव एक और चुनौती है, जो मानव संसाधनों को पंगु बना देती है।
- **कम जागरूकता और भागीदारी:** संभावित सदस्यों के बीच सहकारी मॉडल और इसके लाभों के बारे में जागरूकता की कमी **उनकी भागीदारी को सीमित** करती है।
- **राजनीतिक हस्तक्षेप:** सहकारी समितियों के कामकाज में राजनीतिक हस्तक्षेप उनकी स्वायत्तता को कमज़ोर करता है और सदस्यों के हितों को प्रभावी ढंग से पूरा करने की उनकी क्षमता को प्रभावित करता है।

1.14. सरकारी समितियां की समस्याओं से दूर करने के उपाय

- **बुनियादी ढाँचे का विकास:** मूल्य शृंखलाओं को मज़बूत करने और सहकारी उत्पादों के लिये बाज़ार पहुँच बढ़ाने के लिये **गोदामों, शीत भंडारण सुविधाओं और प्रसंस्करण इकाइयों** जैसे बुनियादी ढाँचे के विकास में अधिक निवेश की आवश्यकता है।
- **नवप्रवर्तन केंद्र के रूप में सहकारिताएँ:** सहकारिताओं की धारणा को मात्र पारंपरिक और ग्रामीण से हटाकर **प्रयोग और नवप्रवर्तन के केंद्र** के रूप में परिवर्तित करना।
- **सहकारी नेतृत्व वाली पर्यटन पहल:** ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी संचालित पारिस्थितिकी पर्यटन और समुदाय आधारित पर्यटन पहलों का विकास करना, जिससे यात्रियों को **स्थानीय संस्कृति, परंपराओं और आजीविका का अनुभव** करने का अवसर मिल सके।
- **अन्य सहकारी समितियों के साथ सहयोग:** वित्तीय सहकारी समितियाँ **संसाधनों, विशेषज्ञता** और **सर्वोत्तम प्रथाओं** को साझा करने के लिये **क्रेडिट यूनियनों** सहित अन्य सहकारी समितियों के साथ सहयोग कर सकती हैं। इससे कार्यकुशलता में सुधार और लागत कम करने में मदद मिल सकती है।
- **सेवाओं का विस्तार:** वित्तीय सहकारी समितियाँ पारंपरिक बचत और ऋण से आगे बढ़कर निवेश उत्पादों, बीमा और वित्तीय शिक्षा को शामिल करने के लिये अपनी सेवाओं का विस्तार कर सकती हैं।

1.15. निष्कर्ष

भारत का सहकारिता आंदोलन देश की **समावेशी विकास** रणनीति का आधार है। **वित्तीय समावेशन, सामाजिक-आर्थिक सशक्तीकरण** और **ग्रामीण विकास को** बढ़ावा देने के माध्यम से सहकारी समितियों ने असमानताओं को कम करने एवं स्थायी आजीविका को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में सहकारी समितियां का संपूर्ण ढांचा प्रजातांत्रिक है जिसमें सदस्यों को अपने विकास के लिए समान अवसर प्राप्त होते हैं वह अपने विभिन्न कार्यों के लिए आवश्यक आधारभूत संरचना के निर्माण के लिए ऋण सुविधा एवं अन्य सुविधाएं प्राप्त करते हैं। जिससे वह अपना विकास करते हुए समाज में योगदान के लिए सक्रिय भागीदारी का निर्वहन करने में समर्थ हो सके हैं। सहकारिता का मूल मंत्र एकजुटता के द्वारा सभी सदस्यों का विकास करना है। अतः सहकारिता अपने इस उद्देश्य को प्राप्त करने की दिशा में निरंतर प्रयत्नशील है। तथा काफी हद तक सफलता प्राप्त कर चुकी है। यदि इसके मार्ग में आने वाली प्रमुख समस्याओं एवं चुनौतियां का निराकरण कर दिया जाए तो यह तीव्र एवं समावेशी ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

1.16. बोध प्रश्न

- भारत में सहकारी संस्थाओं का वर्गीकरण कीजिए?
- साख एवं गैर साख सरकारी समितियों में अंतर स्पष्ट कीजिए ?
- कृषि एवं गैर कृषि साख सहकारी समितियों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए?

- कृषि एवं एवं गैर कृषि साख सहकारी समितियों के ग्रामीण विकास में भूमिका को स्पष्ट कीजिए?
- भारत के विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए सहकारी आंदोलन पर एक निबंध लिखिए ?
- भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ के उद्देश्य एवं कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिए?
- भारतीय ग्रामीण विकास में सहकारिता मंत्रालय की भूमिका पर प्रकाश डालिए ?
- सहकारी समितियां के समक्ष प्रमुख चुनौतियों को रेखांकित कीजिए?
- सहकारी समितियां के विभिन्न समस्याओं को दूर करने के लिए सुझाव दीजिए?
- ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत संरचना के विकास में सहकारी संस्थाएं किस प्रकार सहायक हैं?
- सहकारिता आंदोलन किस प्रकार समाज में आर्थिक समानता को विकसित कर सकती है?
- युवाओं को उद्यमशील बनाने में राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम की भूमिका को स्पष्ट कीजिए?

1.17. संदर्भ ग्रंथसूची

- भारतीय अर्थव्यवस्था, मिश्रा एवं पुरी, 42वाँ एडिशन 2024, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- भारतीय अर्थव्यवस्था, दत्ता और सुंदरम, 56वाँ एडिशन 2024 एस. चंद्र पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- https://www.cooperation.gov.in/sites/default/files/2023-04/India-cooperative-movement-25-4-23.pdf
- https://socialwelfare.vikaspedia.in/viewcontent/social-welfare/92894092493f92f93e901-90f935902.
- https://www.vivacepanorama.com/co-operative-societies/
- *"वैकुंठ मेहता राष्ट्रीय सहकारी प्रबंध संस्थान". मूल से से 19 जुलाई 2022 को पुरालेखित। अभिगमन तिथि: 19 जुलाई 2022.*
- *"राष्ट्रीय सहकारी प्रशिक्षण परिषद". मूल से से 19 जुलाई 2022 को पुरालेखित।. अभिगमन तिथि: 19 जुलाई 2022.*
- हलचल, ज़ेवियर समाज सेवा संस्थान, रांची, झारखंड।

इकाई-3 भारत में सहकारिता आन्दोलन की असफलता के कारण

इकाई की रुपरेखा

4.1. भूमिका: सहकारिता आंदोलन का उद्देश्य और वर्तमान स्थिति

4.2. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: 1904 अधिनियम से लेकर पंचवर्षीय योजनाओं तक

4.3. प्रारंभिक लक्ष्य और सीमाएँ

4.4. राजनीतिक हस्तक्षेप और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का हनन

4.5. प्रशासनिक और प्रबंधनगत कमियाँ

4.6. वित्तीय अपारदर्शिता और भ्रष्टाचार

4.7. सामाजिक अवरोध: जातीय भेदभाव और महिला भागीदारी

4.8. जनसहभागिता की कमी

4.9. तकनीकी और डिजिटल अपार्याप्तता

4.10. सरकार और वित्तीय संस्थानों से तालमेल की कमी

4.11. नीति और विधिक ढाँचे की जटिलता

4.12. सहकारिता के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पक्ष की उपेक्षा

4.13. निष्कर्ष

4.14. बोध आधारित प्रश्न

4.15. सन्दर्भ सूची

3.1 उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन से विद्यार्थी:

- भारत में सहकारिता आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
- आंदोलन की असफलता के बहुआयामी कारणों (राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, तकनीकी) का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सहकारी समितियों की संरचना, कार्यप्रणाली और चुनौतियों को पहचान सकेंगे।
- सुधारात्मक उपायों और नीति-सुझावों की समझ विकसित कर सकेंगे।
- सहकारिता के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पक्षों की भूमिका को समझ सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

सहकारिता आंदोलन भारत की स्वतंत्रता के पहले से ही ग्रामीण और कृषि विकास के एक सशक्त माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया गया था। इस आंदोलन का उद्देश्य था – किसानों, श्रमिकों और कमजोर वर्गों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना, उनके लिए संसाधनों की पहुँच को सुलभ बनाना और उत्पादन, विपणन, ऋण तथा सेवाओं में समावेशी भागीदारी सुनिश्चित करना। लेकिन लगभग एक सदी से अधिक समय बीतने के बावजूद, यह आंदोलन अपने लक्ष्यों को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर पाया। यह विश्लेषणात्मक लेख भारत में सहकारिता आंदोलन की असफलता

के प्रमुख कारणों, उनकी प्रकृति, ऐतिहासिक व सामाजिक पृष्ठभूमि तथा समाधानात्मक सुझावों पर केंद्रित है।

3.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: 1904 अधिनियम से लेकर पंचवर्षीय योजनाओं तक

1904 में ब्रिटिश सरकार द्वारा कोऑपरेटिव सोसाइटी एक्ट पारित किया गया था। स्वतंत्रता के बाद इसे और बल मिला और इसे पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास का प्रमुख साधन माना गया। इसमें वित्तीय सहकारिता (क्रेडिट सोसाइटी), विपणन, उपभोक्ता और उत्पादन आधारित सहकारिताओं को बढ़ावा दिया गया। 1951-2001 के बीच सहकारी संस्थाओं की संख्या और सदस्यता दोनों में बड़ी वृद्धि हुई। फिर भी आंदोलन की प्रभावशीलता सीमित रही।

- **प्रारंभिक चरण:** भारत में आधुनिक सहकारिता आंदोलन की शुरुआत 19वीं सदी के अंत में किसानों को साहूकारों के शोषण से बचाने के लिए हुई थी।
- **सहकारी साख समितियां अधिनियम, 1904:** इस अधिनियम को सहकारिता आंदोलन की औपचारिक शुरुआत माना जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य किसानों को कम ब्याज दरों पर ऋण उपलब्ध कराना था।
- **सहकारी समितियां अधिनियम, 1912:** इस अधिनियम ने 1904 के अधिनियम की कमियों को दूर किया और साख के अलावा अन्य प्रकार की सहकारी समितियों के गठन की अनुमति दी।
- **प्रांतीय विषय:** 1919 के सुधार अधिनियम के बाद सहकारिता को प्रांतीय सरकारों को हस्तांतरित कर दिया गया, जिससे राज्यों को अपने सहकारी कानून बनाने की शक्ति मिली।
- **स्वतंत्रता के बाद:** पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान सहकारिता को ग्रामीण विकास और कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान मिला। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने "सहकारिता से देश को झकझोरने" (to convulse the country with cooperation) का विचार दिया।
- **97वां संविधान संशोधन, 2011:** इस संशोधन ने सहकारी समितियों को संवैधानिक दर्जा दिया। इसने "सहकारी समिति बनाने का अधिकार" को मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 19(1)(c)) बना दिया और सहकारी समितियों के प्रोत्साहन के लिए एक नया अनुच्छेद (43B) जोड़ा।
- **सहकारिता मंत्रालय:** जुलाई 2021 में भारत सरकार द्वारा सहकारिता को और मजबूत करने के लिए एक अलग **सहकारिता मंत्रालय** का गठन किया गया।

सहकारी आंदोलन की उपलब्धियाँ

सहकारी आंदोलन ने कई क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है:

- **कृषि क्षेत्र: अमूल** जैसी सहकारी समितियों ने दुग्ध उत्पादन में क्रांति ला दी, जिससे भारत दुनिया का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक बन गया। **इफको (IFFCO)** और **कृभको (KRIBHCO)** ने उर्वरक उत्पादन और वितरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।
- **वित्तीय समावेशन:** सहकारी बैंक और प्राथमिक कृषि ऋण समितियां (PACS) छोटे किसानों और ग्रामीण आबादी को वित्तीय सेवाएं प्रदान करती हैं, जो पारंपरिक बैंकिंग तक नहीं पहुंच पाते हैं।
- **ग्रामीण विकास:** सहकारी समितियां रोजगार के अवसर पैदा करती हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक असमानता को कम करने में मदद करती हैं।

भारत में सहकारी आंदोलन की उत्पत्ति:

- **आंदोलन का कारण:** भारत में सहकारी आंदोलन का जन्म 19वीं शताब्दी की अंतिम तिमाही में व्याप्त संकट और उथल-पुथल से हुआ था।
  - **औद्योगिक क्रांति** (Industrial Revolution) ने ग्रामोद्योगों को खत्म कर दिया जिससे लोग कृषि करने के लिये मजबूर हुए और यह रोज़गार एवं आजीविका का एकमात्र साधन थी।
  - परिणामी उप-विभाजन और जोतों के विखंडन ने कृषि को गैर-लाभकारी बना दिया था।

- अन्य कारक जैसे- भू-राजस्व संग्रह की कठोरता, वर्षा की अनिश्चितता, कम फसल उत्पादन आदि ने किसानों को साहूकारों के पास जाने के लिये मजबूर किया।
- साहूकारों ने या तो फसल को औने-पौने दाम पर खरीदकर या बहुत अधिक ब्याज दर वसूल कर पैसे उधार दिये।
- इन सभी कारकों ने एक वैकल्पिक माध्यम से सस्ते ऋण के प्रावधान की आवश्यकता पर बल दिया।

- **भारत में अनौपचारिक सहकारिता:** भारत के कई हिस्सों में कानून पारित होने से औपचारिक सहकारी ढाँचे के अस्तित्व में आने के परिणामस्वरूप पहले भी सहयोग और सहकारी गतिविधियों की अवधारणा प्रचलित थी।
  - उनमें से कुछ को देवराय या वानराय, चिट फंड, कुरी, भिशी, फड़ आदि नामों से जाना जाता था।
  - मद्रास प्रेसीडेंसी में 'निधि' या पारस्परिक-ऋण संघों को संगठित किया गया था।
  - पंजाब में सह-साझेदारों के लाभ के लिये गाँव की सामान्य भूमि को नियंत्रित करने हेतु वर्ष 1891 में सहकारी तर्ज पर एक सोसायटी शुरू की गई थी।
  - ये सभी प्रयास विशुद्ध रूप से स्वैच्छिक और गैर-सरकारी थे।
  - इस दिशा में पहला आधिकारिक कदम तब उठाया गया जब **सर विलियम वेडरबर्न** (Sir William Wedderburn) ने **दक्कन के विद्रोह** के बाद ग्रामीण ऋणग्रस्तता के विरुद्ध उपाय के रूप में कृषि बैंकों की स्थापना का प्रस्ताव दिया।

वर्तमान स्थिति और आंकड़े

- **विशाल नेटवर्क:** भारत का सहकारी आंदोलन दुनिया में सबसे बड़ा है। देश में लगभग 8.5 लाख से अधिक सहकारी समितियाँ हैं, जिनकी सदस्यता 290 मिलियन से अधिक है।
- **ग्रामीण पहुंच:** सहकारी समितियां लगभग 98% भारतीय गाँवों तक पहुँच चुकी हैं।
- **प्रमुख क्षेत्र:** सहकारिता आंदोलन कई क्षेत्रों में सक्रिय है:
  - **कृषि ऋण: प्राथमिक कृषि ऋण समितियाँ (PACS)** किसानों को अल्पकालिक और मध्यकालिक ऋण प्रदान करती हैं।
  - **डेयरी: अमूल (Gujarat Co-operative Milk Marketing Federation Ltd.)** जैसी सहकारी समितियां दुनिया में सबसे सफल डेयरी सहकारी समितियों में से हैं, जिन्होंने "श्वेत क्रांति" में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
  - **चीनी:** भारत में चीनी उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा सहकारी मिलों द्वारा नियंत्रित होता है।
  - **उर्वरक: इफको (IFFCO)** और **कृभको (KRIBHCO)** जैसी सहकारी समितियां उर्वरक उत्पादन और वितरण में अग्रणी हैं।
  - **विपणन: नेफेड (NAFED)** कृषि उत्पादों के विपणन के लिए एक शीर्ष सहकारी संस्था है।
  - **अन्य:** आवास, हथकरघा, मत्स्य पालन और उपभोक्ता क्षेत्रों में भी सहकारी समितियां सक्रिय हैं।
- **प्रमुख संस्थाएँ:**
  - **अमूल (AMUL):** दुनिया की सबसे बड़ी दूध सहकारी समिति।
  - **इफको (IFFCO):** दुनिया की सबसे बड़ी उर्वरक सहकारी समिति।
  - **नेफेड (NAFED):** राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ।
  - **कृभको (KRIBHCO):** कृषक भारती सहकारी लिमिटेड।

3.4 प्रारम्भिक लक्ष्य एवं सीमाएँ

सहकारी आंदोलन का प्रारंभिक चरण (1904-11)

भारत में पहला सहकारी अधिनियम:

- भारतीय अकाल आयोग (वर्ष 1901) ने सरकार को भारत में सहकारी समितियों की शुरुआत को लेकर रिपोर्ट करने हेतु सर एडवर्ड लॉ (Sir Edward Law) की अध्यक्षता में एक समिति गठित करने के लिये प्रेरित किया।
- वर्ष 1903 में समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा वर्ष 1904 में पहला सहकारी ऋण समिति अधिनियम (Cooperative Credit Societies Act) पारित किया गया।
- **अधिनियम की मुख्य विशेषताएं**
  - एक ही गाँव या कस्बे में रहने वाले या एक ही वर्ग या जनजाति से संबंधित कोई भी दस व्यक्ति सहकारी ऋण समिति का निर्माण कर सकते हैं।
  - कुल सदस्यता (80%) के बहुमत के आधार पर समाजों को ग्रामीण और शहरी या कृषक या गैर-कृषक के रूप में वर्गीकृत किया गया था।
  - ग्रामीण समाज को लाभ वितरित करने की अनुमति नहीं थी, लेकिन शहरी समाजों के मामले में शुद्ध लाभ का 25% आरक्षित निधि में दिये जाने के बाद लाभ वितरित किया जा सकता था।
- **अधिनियम की कमियां:**
  - इस अधिनियम ने गैर-ऋण समितियों को कोई कानूनी सुरक्षा प्रदान नहीं की।
  - इसने कृषि कार्यों के वित्तपोषण हेतु शहरी बचत जुटाने का भी कोई प्रावधान नहीं किया था।
  - शहरी और ग्रामीण में समाजों का वर्गीकरण मनमाना, अवैज्ञानिक और अत्यधिक असुविधाजनक पाया गया।
  - 1904 के अधिनियम के कई प्रावधान आंदोलन के आगे प्रसार में बाधक बने।

3.5 राजनीतिक हस्तक्षेप और संरचनात्मक विफलता

(क) स्थानीय राजनीति का प्रभुत्व: सहकारी समितियाँ अक्सर स्थानीय नेताओं और प्रभावशाली जातीय गुटों के नियंत्रण में आ गईं। इसका परिणाम यह हुआ कि समितियाँ आम किसानों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के बजाय सत्ता की राजनीति का उपकरण बन गईं।

(ख) लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का हनन: कई समितियों में चुनाव वर्षों तक नहीं हुए। मनोनीत सदस्य अथवा कार्यकारी अधिकारियों ने शासन किया, जिससे पारदर्शिता और जवाबदेही समाप्त हो गई।

(ग) राजनैतिक लाभ के लिए ऋण माफी: कई बार सरकारों ने चुनावी लाभ के लिए सहकारी ऋण माफी की घोषणाएँ कीं, जिससे समितियों की वित्तीय अनुशासन प्रणाली बिगड़ गई।

3.6 प्रशासनिक और प्रबंधनगत कमियाँ

(क) प्रशिक्षण की कमी: ग्राम स्तर पर समितियों के प्रबंधक और कर्मचारी अक्सर बिना प्रशिक्षण के होते हैं। उन्हें सहकारिता कानून, वित्तीय प्रबंधन, लेखा प्रणाली आदि की पर्याप्त जानकारी नहीं होती।

(ख) मानव संसाधन में निवेश का अभाव: कर्मचारियों की नियुक्ति राजनीतिक प्रभाव से होती है और उनके लिए प्रोन्नति या मूल्यांकन की पारदर्शी व्यवस्था नहीं होती।

(ग) संचालन में गैर-पेशेवर रवैया: कई समितियों का संचालन 'सामाजिक सेवा' की भावना से होता है, लेकिन व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा में टिकने के लिए व्यवसायिक दृष्टिकोण आवश्यक होता है, जो नहीं अपनाया गया।

3.7 वित्तीय अपारदर्शिता और भ्रष्टाचार

(क) ऋण वितरण में पक्षपात: समितियों के अंदर अक्सर देखा गया है कि प्रभावशाली सदस्य स्वयं को या अपने समर्थकों को ऋण देते हैं, जबकि वास्तविक जरूरतमंद वंचित रह जाते हैं।

(ख) रिकॉर्ड-कीपिंग की खामियाँ: लेखा-पुस्तकों का रख-रखाव ठीक से नहीं किया जाता, जिससे लेखापरीक्षा में अनियमितताएँ सामने आती हैं।

(ग) धोखाधड़ी और घोटाले: NABARD और RBI की रिपोर्टों में कई सहकारी बैंकों में धोखाधड़ी और घोटालों की पुष्टि की गई है। इससे आम जनता का भरोसा कम हुआ।

3.8 सामाजिक अवरोध और असमानता

(क) जातीय और वर्गीय भेदभाव: ग्रामीण भारत में सहकारिता समितियों पर उच्च जाति या संपन्न किसानों का प्रभुत्व देखा गया है। दलित, महिलाएँ और पिछड़े वर्ग इसमें प्रभावी भूमिका नहीं निभा सके।

(ख) महिलाओं की सीमित भागीदारी: कई जगहों पर महिलाएँ समिति की सदस्य तो होती हैं, परंतु निर्णय प्रक्रिया में उनकी भागीदारी नगण्य होती है। उनके नाम पर खाते खोलकर पुरुष ही निर्णय लेते हैं।

3.9 जनसहभागिता की कमी

(क) स्वामित्व की भावना का अभाव: किसानों और सदस्यों में यह भावना नहीं है कि समिति उनकी अपनी है। वे उसे सरकार की एक इकाई मानते हैं। यह मानसिक दूरी सक्रिय भागीदारी में बाधक बनती है।

(ख) सदस्यता तो बढ़ी, पर सक्रियता नहीं: सरकारी योजनाओं के कारण लोगों ने सदस्यता तो ली, परंतु समिति की बैठकों, निर्णय प्रक्रिया और निगरानी में वे भाग नहीं लेते।

7. तकनीकी और डिजिटल अपर्याप्तता

(क) IT और MIS प्रणाली की कमी: अधिकांश समितियाँ अभी भी कागजी प्रक्रिया पर निर्भर हैं। डिजिटल रिकॉर्डिंग, ऑनलाइन ऋण प्रक्रिया, ट्रैकिंग प्रणाली जैसी तकनीकों का अभाव है।

(ख) डेटा-आधारित निर्णय नहीं: अक्सर नीतियाँ बिना ठोस आँकड़ों और अनुसंधान के बनाई जाती हैं। इससे योजनाएँ यथार्थ से कटी रहती हैं।

3.10 वित्तीय संस्थानों और सरकार से तालमेल की कमी

(क) बैंकिंग प्रणाली की अलग पहचान: बड़े बैंक और वित्तीय संस्थान सहकारी संस्थाओं को कमज़ोर मानते हैं, जिससे उन्हें सहयोग और ऋण मिलना कठिन होता है।

(ख) सरकारी योजनाओं में प्राथमिकता का अभाव: MNREGA, FPO, PM-KISAN जैसी योजनाओं में सहकारी समितियों की भूमिका न्यूनतम रहती है। इन्हें विकास का मुख्य एजेंट नहीं माना गया।

3.11 नीति और विधिक ढाँचे की जटिलता

(क) विभिन्न राज्यों में भिन्न कानून: सहकारी समितियाँ राज्य सूची का विषय होने के कारण हर राज्य का अपना अलग अधिनियम होता है। इससे अखिल भारतीय स्तर पर एकीकृत नीति नहीं बन पाती।

(ख) बहुस्तरीय निगरानी का अभाव: कई समितियों की लेखा परीक्षा और निगरानी सालों तक नहीं होती। इसके कारण भ्रष्टाचार पनपता है।

3.12 सहकारिता आंदोलन के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष की उपेक्षा

(क) सहकारिता के सिद्धांतों की अवहेलना: स्वैच्छिकता, लोकतंत्र, समानता, पारदर्शिता जैसे मूलभूत सिद्धांतों का पालन न होने से आंदोलन अपनी आत्मा खो बैठा।

(ख) मानसिक परिवर्तन की कमी: सहकारिता केवल एक संगठनात्मक ढांचा नहीं, बल्कि एक सामूहिक सोच है। जब तक सामूहिकता की भावना विकसित नहीं होगी, आंदोलन सतही रहेगा।

असफलता के निवारण के उपाय

इन समस्याओं को दूर करने और सहकारिता आंदोलन को मजबूत बनाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं:

- **अधिक स्वायत्तता और कम सरकारी हस्तक्षेप:** सहकारी समितियों को अधिक स्वायत्तता दी जानी चाहिए। सरकार को केवल नियामक की भूमिका निभानी चाहिए, न कि संचालक की। इसके लिए सहकारी कानूनों में संशोधन किया जा सकता है ताकि समितियां अपने नियमों और नीतियों को स्वयं बना सकें।
- **पेशेवर और प्रशिक्षित प्रबंधन:** समितियों में पेशेवर, योग्य और प्रशिक्षित कर्मचारियों को नियुक्त किया जाना चाहिए। इसके अलावा, सदस्यों और पदाधिकारियों के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए, जिससे वे आधुनिक प्रबंधन तकनीकों को सीख सकें।
- **राजनीतिक प्रभाव से मुक्ति:** सहकारी समितियों के चुनाव को राजनीतिक प्रभाव से मुक्त रखने के लिए सख्त नियम बनाए जाने चाहिए। चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता लाई जानी चाहिए और राजनेताओं के पदों पर बैठने पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए।
- **वित्तीय सुदृढ़ता को बढ़ावा:** समितियों को अपनी पूंजी बढ़ाने के लिए अभिनव तरीके अपनाने चाहिए। वे शेयर जारी कर सकती हैं या अन्य वित्तीय संस्थानों के साथ साझेदारी कर सकती हैं। सरकार को उन्हें पूंजी बाजार तक पहुंच प्रदान करने में मदद करनी चाहिए।
- **सदस्यों की शिक्षा और सहभागिता:** सहकारिता के सिद्धांतों और लाभों के बारे में सदस्यों को शिक्षित करने के लिए जागरूकता अभियान चलाए जाने चाहिए। सदस्यों को निर्णयों और नीतियों में शामिल करके उनकी सहभागिता को बढ़ाया जा सकता है।
- **उचित ऋण वितरण प्रणाली:** ऋण वितरण की प्रक्रिया को पारदर्शी और निष्पक्ष बनाया जाना चाहिए। इसके लिए सख्त मानदंड और समय पर वसूली के नियम बनाए जाने चाहिए। इससे समितियों की वित्तीय स्थिति में सुधार होगा।
- **प्रौद्योगिकी का उपयोग:** सहकारी समितियों को आधुनिक तकनीक (जैसे, **डिजिटलीकरण**, मोबाइल बैंकिंग, और डेटा एनालिटिक्स) को अपनाना चाहिए। इससे पारदर्शिता बढ़ेगी, लागत कम होगी और वे बेहतर सेवाएं प्रदान कर पाएंगी।
- **एक मजबूत ऑडिट प्रणाली:** समय-समय पर बाहरी और निष्पक्ष ऑडिट की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि समितियों की वित्तीय स्थिति की सही जानकारी मिल सके और भ्रष्टाचार को रोका जा सके।

3.13 निष्कर्ष

भारत में सहकारिता आंदोलन की असफलता का कारण केवल एक या दो कारकों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक बहुआयामी संकट है — जिसमें प्रशासनिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सभी घटक सम्मिलित हैं। आंदोलन की पुनर्संरचना और पुनर्जीवन के लिए जरूरी है:

- सहकारिता शिक्षा और प्रशिक्षण को बढ़ावा देना
- पारदर्शी और तकनीक-आधारित प्रणाली लागू करना

- महिला और कमजोर वर्गों की प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करना
- राजनीतिक हस्तक्षेप को न्यूनतम कर समिति की स्वायत्तता बनाए रखना
- सहकारिता को सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन का प्रमुख साधन बनाना

यदि इन सुधारों को ईमानदारी से लागू किया जाए, तो सहकारिता आंदोलन न केवल ग्रामीण भारत को सशक्त बना सकता है, बल्कि यह भारत को सामाजिक और आर्थिक रूप से अधिक न्यायपूर्ण राष्ट्र की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

3.14 बोध आधारित प्रश्न -

1. भारत में सहकारिता आंदोलन की शुरुआत कब और क्यों हुई?
2. सहकारी समितियों में राजनीतिक हस्तक्षेप का क्या प्रभाव पड़ा?
3. सहकारी समितियों में महिलाओं की भागीदारी क्यों सीमित रही?
4. तकनीकी अपार्याप्तता से सहकारी समितियों को क्या नुकसान हुआ?
5. सहकारिता आंदोलन को पुनर्जीवित करने के लिए कौन-से सुधार आवश्यक हैं?

3.15 संदर्भ (References):

1. भारतीय सहकारिता मंत्रालय रिपोर्ट, 2023
2. राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC) डेटा रिपोर्ट 2022
3. NABARD स्टेट ऑफ कोऑपरेटिव बैंक्स रिपोर्ट, 2021
4. नीति आयोग की सहकारिता नीति समीक्षा, 2022
5. 'भारतीय सहकारी आंदोलन: एक ऐतिहासिक विश्लेषण' – डॉ. एच.एस. यादव
6. 'Rural Cooperatives in India: Issues and Reforms' – Planning Commission Paper, 2009

इकाई-4 खण्ड स्तरीय योजनाएं: भूदान व ग्रामदान योजना (सामुदायिक विकास के सन्दर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

4.1. उद्देश्य

4.2. प्रस्तावना

4.3. भूदान आंदोलन (1951)

4.4. ग्रामदान योजना (1952)

4.5. सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

4.6. विफलता के कारण

4.7. वर्तमान प्रासंगिकता

4.8. निष्कर्ष

4.9. बोध आधारित प्रश्न

4.10. सन्दर्भ सूची

1.1 उद्देश्य (Learning Objectives) -

- भूदान और ग्रामदान आंदोलनों की उत्पत्ति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना
- इन योजनाओं के सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को पहचानना
- भूदान और ग्रामदान की कार्यप्रणाली और प्रमुख उपलब्धियों का विश्लेषण करना
- इन योजनाओं की सीमाओं और विफलताओं को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखना
- वर्तमान संदर्भ में इन योजनाओं की प्रासंगिकता को समझना
- सामुदायिक विकास की अवधारणा को व्यावहारिक उदाहरणों के माध्यम से समझना

4.2 प्रस्तावना

जब भारत 1947 में स्वतंत्र हुआ, तो उसके सामने सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक पुनर्निर्माण और विकास के लिए कई रास्ते या मॉडल थे। वे थे गांधीवादी मार्ग, नेहरूवादी मार्ग (समाजवाद), साम्यवाद (राज्य), और पूंजीवाद (बाजार)। आधिकारिक तौर पर, नेहरूवादी मार्ग, जिसमें केंद्रीय योजना शामिल थी, को चुना गया और पहली पंचवर्षीय योजना 1951-52 में शुरू की गई। सामुदायिक विकास कार्यक्रम (सीडीपी) और पंचायत राज (पीआर) के साथ इस दृष्टिकोण का 1991 तक पालन किया गया। लगभग 40 वर्षों तक इस मार्ग का अनुसरण करने के बाद, अधिकारियों ने महसूस किया कि उपर्युक्त नेहरूवादी दृष्टिकोण ने अच्छा प्रदर्शन नहीं किया है, और, इसलिए, उन्होंने संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम की नई आर्थिक नीति, और बाजारीकरण, उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के स्थिरीकरण कार्यक्रम की शुरुआत की। दूसरे शब्दों में, प्राधिकारियों ने 1991 में बाजार मॉडल को अपनाया। केंद्रीकृत (केंद्रीय योजना) और विकेन्द्रीकृत (सीडीपी और पीआर) दृष्टिकोणों को एक साथ अपनाना नीति निर्माताओं की भ्रमित सोच को दर्शाता है; वे यह समझने में विफल रहे कि इस तरह के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण दोनों की विफलता सुनिश्चित करेंगे।

1951 से लेकर आज तक, सत्ताधारी वर्ग ने गांधीवादी मार्ग को अस्वीकार किया है। इसके बावजूद, ऐसे दयालु सामाजिक कार्यकर्ता भी रहे हैं जिन्होंने राष्ट्र को गांधीवादी मार्ग पर ले जाने का प्रयास किया है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि 1951 और 1952 में, जब केंद्रीय योजना राज्य द्वारा लागू की गई थी, भारत के लोगों ने, राज्य की सहायता के बिना, भूदान और ग्रामदान (बी-जी) आंदोलनों के रूप में गांधीवादी मार्ग अपनाया

था।

- भारत सरकार 19वीं सदी के भूमि अधिग्रहण अधिनियम को नए अधिनियम से बदलने की प्रक्रिया में है।
- भारत मुख्यतः एक कृषि प्रधान देश (कृषि-प्रधान देश) और गाँवों का देश (ग्राम-प्रधान देश) है।
- प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक काल में सभी देशों में भूमि की उपलब्धता, नियंत्रण, अधिग्रहण और कब्ज़ा विवादास्पद मुद्दे रहे हैं। समय के साथ, राज्य, निगमों, व्यापार और उद्योग की भूमि-उपयोग नीति को लेकर लोगों में बेचैनी बढ़ती गई है।
- यह अब व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि मानव जाति पारिस्थितिक और कृषि संकट के परिणामस्वरूप अस्तित्व के संकट का सामना कर रही है। कृषि संकट से संबंधित कई मुद्दे और पहलू हैं: भूमि की गुणवत्ता को बनाए रखना ऐसा ही एक मुद्दा है। इतिहास हमें बताता है कि अतीत में, जिन सभ्यताओं ने अपनी भूमि का उचित उपयोग नहीं किया, वे नष्ट हो गईं। अन्य मुद्दे भी हैं जैसे गरीब किसान, ज़मींदारी उन्मूलन जैसे कृषि सुधार, कृषि उत्पादन की उच्च लागत, कृषि उत्पादों की कीमतों पर किसानों का नियंत्रण न होना, खाद्य असुरक्षा, विशेष आर्थिक क्षेत्रों (एसईजेड) का निर्माण, कृषि भूमि को गैर-कृषि भूमि में बदलना, सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की औद्योगिक परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण, भूख और कुपोषण से होने वाली मौतें, बड़े पैमाने पर किसानों द्वारा आत्महत्याएं, व्यापक भूमिहीनता आदि।

1. पृष्ठभूमि

स्वतंत्र भारत में भूमिहीन किसान, सीमांत कृषक व खेत मजदूरों की दशा दयनीय थी। भूमि सुधारों (जमींदारी उन्मूलन, सीलिंग एक्ट) की सरकारी योजनाएँ अपेक्षित सफलता नहीं पा सकीं। ग्राम स्वराज के गांधीवादी विचारों से प्रेरित होकर विनोबा भावे ने "स्वैच्छिक दान" पर आधारित आंदोलन प्रारंभ किया।

4.3 भूदान आंदोलन (1951)

परिभाषा: 'भूदान' का तात्पर्य है – भू-स्वामियों द्वारा अपनी भूमि का कुछ भाग भूमिहीनों को स्वेच्छा से दान करना।

विनोबा के अनुसार, भूदान का कार्य क्रांति, त्याग और आराधना का कार्य था। यह जीवन परिवर्तन और हृदयों को जोड़ने का कार्य था। इसका उद्देश्य भूमि के प्रति भ्रामक आसक्ति को कम करना था। भूदान और अन्य दैनिक दान या "दान" समाज में संतुलन और सद्भाव बनाए रखते थे। भूदान का कार्य धर्म चक्र - या धर्म (धर्म चक्र परिवर्तम) को घुमाने या परिक्रमण करने का कार्य था। भूदान का उद्देश्य क्रांति से बचना नहीं था, बल्कि देश को हिंसक क्रांति से बचाना था, बल्कि भारत में अहिंसक क्रांति लाना था। देश में शांति और सुख-शांति भूमि समस्या के समाधान पर निर्भर थी, और यह निश्चित था कि इस समस्या का समाधान कानूनी तरीकों या हिंसक हत्याओं से नहीं हो सकता था। इस समस्या के समाधान का सर्वोत्तम तरीका प्रेम और करुणा था। भूदान ने यह मार्ग प्रदान किया; इसमें तीन गुना परिवर्तन लाने की क्षमता थी और है: हृदय परिवर्तन, जीवन-शैली में परिवर्तन और समाज में परिवर्तन। यह समझना ज़रूरी है कि अंततः, भूदान पूर्ण समर्पण या पूर्ण बलिदान का पहला चरण है। भूदान हमें सिखाता है कि पूर्ण आत्म-बलिदान ही सर्वोदय या सभी का कल्याण ला सकता है। भूदान आंदोलन में औद्योगिक श्रमिक आंदोलन भी शामिल है; अंततः, भूदान के पूर्ण निष्ठापूर्वक अभ्यास से औद्योगिक श्रमिकों की भी बेड़ियाँ टूट जाएँगी या उनकी दासता समाप्त हो जाएगी।

भूदान आंदोलन की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें

- हमें प्रकृति के प्रति सही दृष्टिकोण रखना चाहिए।
- भूमि और उत्पादन के अन्य कारकों का स्वामित्व केवल ईश्वर का हो सकता है; कोई भी मनुष्य उनका स्वामी या मालिक नहीं हो सकता।
- समाज में शांति और सद्भाव के लिए समानता आवश्यक है।
- किसी भी समाज में रोटी का श्रम या शारीरिक श्रम महत्वपूर्ण है।

- यज्ञ का समय-उपयुक्त या सामयिक अर्थ मानवजाति को उसकी गतिविधियों में मार्गदर्शन प्रदान करे।
- हमें क्रांति का सही अर्थ और मार्ग अपनाना चाहिए।
- मानवजाति को विज्ञान और अध्यात्म के एकीकरण की अत्यंत आवश्यकता है।
- लोगों के बीच एकता और एकीकरण के लिए कार्य करना आवश्यक है।
- जन-आश्रित और जन-समर्थित समाज सेवा का सभी दिशाओं में प्रसार होना चाहिए।
- समय के साथ प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक समाज में वैराग्य का भाव विकसित होना चाहिए।
- पदयात्रा क्रांति के लिए परिवहन का सर्वोत्तम और सार्वभौमिक साधन है।
- जनभाषा क्रांति के लिए संचार का सर्वोत्तम माध्यम है।

उद्देश्य:

- भूमि का न्यायपूर्ण वितरण
- ग्रामीण गरीबी व असमानता समाप्त करना
- समाज में सह-अस्तित्व की भावना विकसित करना

प्रमुख विशेषताएँ:

- स्वैच्छिक दान पर आधारित – कोई कानूनी बाध्यता नहीं।
- सर्वधर्म समभाव – सभी जातियों व वर्गों को समान अवसर।
- ग्राम-आधारित पुनर्निर्माण – ग्राम पंचायत द्वारा भूमि का वितरण।

विनोबा भावे की पदयात्रा:

- 1951 में तेलंगाना से आरंभ।
- 13 वर्षों में 58,00,000 एकड़ भूमि दान में मिली।
- अनेक प्रांतों में ग्रामवासियों व जमींदारों ने भूमि दान दी।

उपलब्धियाँ:

- भूमिहीनों को कृषि हेतु भूमि।
- वर्ग-जाति संबंधों में सुधार।
- ग्रामीण समाज में परस्पर सहयोग बढ़ा।

सीमाएँ:

- दान की भूमि कई बार उपजाऊ नहीं थी।
- सरकारी पंजीकरण की कमी।

- वितरण में पंचायतों की पक्षपातपूर्ण भूमिका।
- सीमांत कृषकों की भी भूमि चली गई, जिससे उनकी गरीबी बढ़ी।

4.4 ग्रामदान योजना (1952)

ग्राम का अर्थ है राजस्व गाँव, "पड़ा" या "टोला"। ग्रामदान का अर्थ गाँव को गाँव के अंदर या बाहर किसी संस्था, व्यक्ति, संस्था या संगठन को दान देना नहीं है। ग्रामदान का अर्थ है गाँव को दान या उसके लिए बलिदान। इसमें ग्रामीणों द्वारा, पूरी तरह से अपनी इच्छा से, अपनी भूमि और अन्य संपत्ति गाँव को देने का गंभीर संकल्प या व्रत शामिल है। उदाहरण के लिए, राजा द्वारा किसी व्यक्ति को राजा के प्रति उसकी सेवा के सम्मान में दिए गए गाँव (गाँवों) के दान को ग्रामदान नहीं कहा जा सकता। ग्रामदान, भूदान का एक पूर्ण विकसित या उन्नत (या व्यापक से व्यापक) दृष्टिकोण है। भूदान और ग्रामदान (भ-ग) में, "दान" एक बार का कार्य नहीं हो सकता; यह एक सतत और बार-बार होने वाला कार्य हो सकता है, और इसलिए, एक सतत "भगदान" (एक भाग का दान) या "दंडहार" अर्थात "दान की धारा" होती है। बार-बार "दान" की संभावना का यह विचार "भूदान गंगा" नामक शब्द में परिलक्षित होता है, जिसका इस संदर्भ में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है।

पहला ग्रामदान 24 मई, 1952 को भारत में उत्तर प्रदेश के मंगरोठ गाँव में हुआ था, जब मंगरोठ के सभी ग्राम स्वामियों ने विनोबा भावे की सभा में उपस्थित होकर सर्वसम्मति से घोषणा की कि उन्होंने अपनी पूरी ज़मीन भूदान में दान करने का निर्णय लिया है। इस निर्णय ने संपत्ति के निजी स्वामित्व के स्वैच्छिक उन्मूलन और उसे समुदाय या समग्र रूप से गाँव में निहित करने का संकेत दिया।

ग्रामदान के पर्यायवाची शब्द हैं: ग्रामस्वराज, सर्वोदय, रामराजा, लोकनीति (जनता की राजनीति), लोकशक्ति (जनता की शक्ति या सामर्थ्य), लोकसत्ता (जनता की शक्ति), और ग्राम गणराज्य। ग्रामदान का उद्देश्य संसाधनों का समतापूर्ण बँटवारा और आध्यात्मिक विकास है। ग्रामदान का प्रारंभिक उद्देश्य यह था कि गाँव में कोई भी व्यक्ति भूमिहीन न रहे। इसका दूसरा उद्देश्य यह था कि गाँव में किसी को भी व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से भूमि का स्वामित्व-अधिकार न हो। गाँव की भूमि "सबै भूमि गोपालकी" (सारी भूमि गोपाल या ईश्वर की है) की भावना से सभी की है। यह एक अहिंसक क्रांतिकारी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करेगा, लोगों की आंतरिक शक्ति का निर्माण करेगा और लोगों को सशक्त बनाएगा। यह एक दिव्य दृष्टि और मिशन है; यह केवल एक कार्यक्रम या आंदोलन नहीं है, इसका लक्ष्य उत्थान है।

आदर्श ग्रामदानी सामाजिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में इस प्रकार बताया जा सकता है:

- गाँव आर्थिक रूप से स्वतंत्र होंगे और इन गाँवों का भौतिक जीवन बेहतर होगा।
- लोगों में प्रेम बढ़ेगा और परिणामस्वरूप, वे "आनंदी" बनेंगे।
- लोग आसक्ति से उत्तरोत्तर मुक्त होते जाएँगे।
- गाँव या गाँवों का समूह या गाँवों का समुदाय आत्मनिर्भर, स्वावलंबी या आत्म-निर्भर बनेगा। आत्मनिर्भरता स्वतंत्रता की पूर्व शर्त है।
- गाँव के उत्पादन के साधन और गाँव की संपत्ति गाँव के नियंत्रण में होगी।
- गाँव की सभी शैक्षिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना गाँव की ज़िम्मेदारी होगी।
- ग्रामीणों को व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता प्राप्त होगी। जातिवाद नहीं होगा और सभी को सभी क्षेत्रों में समान अवसर प्राप्त होंगे।
- गाँव की सुरक्षा या संरक्षण पूरे गाँव की ज़िम्मेदारी होगी; इस उद्देश्य के लिए कोई अलग या विशेष "वर्ण" (जैसे अतीत में क्षत्रिय वर्ण) नहीं होगा।
- गाँव के विवादों का समाधान अहिंसा और सत्याग्रह के माध्यम से किया जाएगा।

परिभाषा:

'ग्रामदान' योजना में गाँव के सभी भूमि स्वामी अपनी सम्पूर्ण भूमि ग्राम समुदाय को सौंप देते हैं, जिसे पंचायत द्वारा सभी गाँववासियों में आवश्यकता अनुसार वितरित किया जाता है।

उद्देश्य:

- संपूर्ण गाँव का सामूहिक स्वामित्व
- ग्राम स्वराज की स्थापना
- व्यक्तिगत स्वार्थ समाप्त कर सामूहिक हित साधन

मुख्य तत्त्व:

- संपत्ति का सामूहिक स्वामित्व
- आय की समानता – ग्राम स्तर पर जरूरत के हिसाब से भूमि वितरण।
- सामूहिक खेती (Cooperative Farming)
- नव-समाज निर्माण

प्रमुख उपलब्धियाँ:

- 1969 तक 4890 ग्रामों ने ग्रामदान स्वीकार किया।
- ग्राम स्वराज की दिशा में प्रयोग।
- सामाजिक एकता में वृद्धि।

प्रमुख समस्याएँ:

- मवासियों में जागरूकता की कमी।
- सामूहिक खेती की तकनीकी व वित्तीय बाधाएँ।
- कुछ राज्यों में सरकारी समर्थन का अभाव।
- व्यावसायिक दृष्टि से अव्यवहारिक–किसान निजी स्वामित्व छोड़ने को राजी नहीं।

4. भूदान व ग्रामदान: तुलनात्मक विश्लेषण

बिंदु भूदान ग्रामदान आधार स्वैच्छिक भूमि दान सम्पूर्ण ग्राम की भूमि का सामूहिक दान उद्देश्य भूमिहीनों को भूमि प्रदान सामूहिक स्वामित्व, ग्राम स्वराज कार्यान्वयन व्यक्तिगत स्तर पर सामूहिक निर्णय द्वारा कठिनाइयाँ अनुपजाऊ भूमि, असंगठित वितरण सामूहिक खेती में तकनीकी व मानसिक बाधा सफलता सीमित रूप से अपेक्षित सफलता नहीं

भूदान और ग्रामदान की प्रगति और प्रदर्शन

इस संदर्भ में किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुंचने के रास्ते में एक गंभीर कठिनाई विश्वसनीय आंकड़ों की अनुपलब्धता है। इस मामले पर हमारे पास उपलब्ध कुछ जानकारी नीचे तालिका 1 में प्रस्तुत की गई है। यह हमें (क) भूदान में लोगों द्वारा दान की गई एकड़ भूमि के बारे में बताती है। (ख) भूदान के माध्यम से भूमिहीनों को वितरित की गई एकड़ भूमि की संख्या। (ग) भूमि के दाताओं की संख्या, (घ) ग्रामदानी गांवों की संख्या, (ङ) प्राधिकारियों के पास पंजीकृत ग्रामदानों की संख्या, (च) भूदान और ग्रामदान पर जानकारी का राज्यवार वितरण। जानकारी 1951-1984 की अवधि से संबंधित है। 1951 और 1984 के बीच लगभग 53 लाख एकड़ का भूदान हुआ। इस दान की गई भूमि का एक हिस्सा विवादित भूमि थी, एक अन्य भाग को दाताओं ने वापस ले लिया यदि हम कुल दान की गई भूमि में से 11 लाख एकड़ ऐसी "बेकार" भूमि घटा दें, तब भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि भूदान के परिणामस्वरूप 42 लाख एकड़ अच्छी, कृषि योग्य और निर्विवाद भूमि का दान हुआ। इस (42 लाख एकड़) भूमि में से लगभग 25 लाख एकड़ भूमि वास्तव में भूदान के माध्यम से भारत में भूमिहीन लोगों को वितरित की गई है। इस उपलब्धि की तुलना में, विभिन्न राज्यों में भूमि हदबंदी अधिनियम केवल 9.93 लाख एकड़ भूमि को पुनर्वितरण के लिए उपलब्ध करा सके, जिसमें से भारत में केवल 7.5 लाख एकड़ भूमि ही वास्तव में भूमिहीन लोगों को वितरित की गई। तालिका 1 यह भी दर्शाती है कि भूदान

आंदोलन के माध्यम से लगभग 5.83 लाख लोगों को भूमि प्राप्त हुई।

भूदान का एक उद्देश्य यह था कि भारत में एक भी भूमिहीन व्यक्ति न रहे। यदि यह साकार होता, तो अनुमानतः लगभग पाँच करोड़ एकड़ भूमि पुनर्वितरण के लिए उपलब्ध हो जाती। इस प्रकार, भूदान आवश्यक 5.0 करोड़ एकड़ भूमि की तुलना में केवल 0.25 करोड़ एकड़ भूमि का ही पुनर्वितरण कर सका। दूसरे शब्दों में, भूदान ने पुनर्वितरण के लिए आवश्यक भूमि का केवल 10 प्रतिशत (50 लाख एकड़) ही प्राप्त किया, और वास्तव में आवश्यक भूमि का केवल 5 प्रतिशत (25 लाख एकड़) ही पुनर्वितरित किया।

इसी प्रकार, तालिका 1 दर्शाती है कि 38464 गाँवों ने ग्रामदान घोषित किया, जिनमें से केवल 3103 ग्रामदान सरकार के पास पंजीकृत थे। यदि हम मान लें कि 1985 के आसपास भारत में लगभग 6 लाख गाँव थे, तो 1984 तक इनमें से केवल 6.33 प्रतिशत गाँव ही ग्रामदानी गाँव बन पाए थे।

State	Land Received	Land Distributed	Number of Receivers	Number of Gramadana Received	Number of Gramadana Registered
Andhra Pradesh	195,510	99,530	32,312	4181	1
Assam	877	877	851	2200	285
Orissa	13,53,440	778,238	-	-	1309
Karnataka	20,000	8000	-	-	-
Kerala	-	-	-	-	-
Gujarat	103,530	50,984	10,270	1119	-
Jammu-Kashmir	121	121	-	-	-
Tamilnadu	24,375	22837	16,000	1962	243
Punjab	5138	1026	233	-	-
Haryana	2074	2043	553	-	-
Bihar	21,17,756	5,90,496	4,33,754	2,581	1,046
West Bengal	16000	9000	-	-	-
Himachal	4000	2400	-	-	-
Madhya Pradesh	410,151	238,629	59,805	-	-
Maharashtra	110,000	79,990	15,546	500	19
Rajasthan	546,965	142,699	14,124	195	195
Uttar Pradesh	436,054	417,621	-	25,726	5
Total	5346,021	24,44,491	5,83,448	38,464	3103

Table 1: The State of Bhoodana Gramadana in 1984: (Land in acres)

4.5. भूदान-ग्रामदान के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

सामाजिक प्रभाव:

- वर्ग संघर्ष में कमी।
- जातीय विषमता में आंशिक कमी।
- ग्रामीण समाज में नैतिक चेतना का संचार।

आर्थिक प्रभाव:

- भूमिहीनों के लिए कृषि अवसर।
- कृषि उत्पादन में आंशिक वृद्धि।
- सामूहिक खेती के प्रयास (परन्तु असफल)।

राजनैतिक प्रभाव:

- पंचायतों की भूमिका में वृद्धि।
- गांधीवादी विचारधारा का विस्तार।

4.6. योजनाओं की विफलता के कारण

- भूमि के रिकॉर्ड का अभाव।
- वितरण प्रक्रिया में पक्षपात।
- दान की भूमि का कम मूल्य।
- स्थानीय नेताओं व अधिकारियों की उदासीनता।
- ग्रामीणों में सामूहिक चेतना व विश्वास की कमी।

राज्य की भूमिका

- सरकार द्वारा भूदान कानून बने (1954) – भूमि पंजीकरण व वितरण हेतु।
- भूमि विकास योजनाओं से जुड़ाव।
- किंतु वास्तविक क्रियान्वयन में ढीलापन रहा।

4.7. प्रासंगिकता: वर्तमान परिप्रेक्ष्य

- भूमिहीनता की समस्या अभी भी यथावत – बिहार, झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ में।
- सहकारी खेती, SHGs, FPOs में ग्रामदान की भावना दिखाई देती है।
- नवाचार: "Land Banks", "Cluster Farming" योजनाएँ।

- NITI Aayog द्वारा 'Land Leasing Policy' प्रस्ताव।

9. विशेषज्ञ मत एवं रिपोर्ट

- Second Five Year Plan (1956-61) – भूदान की सराहना।
- K.N. Raj Report (1962) – भूदान-ग्रामदान में सरकारी सहयोग अपर्याप्त।
- 2nd ARC Report (2007) – भूमि सुधारों हेतु भू-अधिकारों के स्पष्ट रिकॉर्ड की आवश्यकता।

10. समकालीन उदाहरण

- छत्तीसगढ़ में सामूहिक खेती का प्रयोग (2018-19)।
- पश्चिम बंगाल भूमि सुधार कार्यक्रम ("Operation Barga")।
- उत्तर प्रदेश: पंचायत भूमि पट्टे कार्यक्रम।

11. आलोचनाएँ

- आंदोलन व्यक्तिवादी था, संस्थागत नहीं।
- ग्राम समाज में असमानता गहराई।
- ग्रामीण मनोवृत्ति में सामूहिक चेतना का अभाव।
- राज्य नीति से इसका कोई दीर्घकालीन जुड़ाव नहीं रहा।

12. सुधार हेतु सुझाव

- भूमि रिकॉर्ड का डिजिटलीकरण (DILRMP)।
- Co-operative Farming को तकनीकी सहायता।
- SHGs, FPOs द्वारा सामूहिकता को बढ़ावा।
- पंचायतों की क्षमता वृद्धि।
- ग्राम स्वराज मॉडल में नयी तकनीकें – सौर ऊर्जा, जल संरक्षण।

4.8. निष्कर्ष

भूदान और ग्रामदान भारतीय ग्रामीण समाज में आत्मनिर्भरता, समता व सहयोग की अद्भुत प्रयोगशाला थे। हालांकि ये योजनाएँ सीमित सफल रहीं, फिर भी इनके मूल विचार आज भी प्रासंगिक हैं। वर्तमान भूमि सुधारों, सहकारी खेती, FPO नीति, व डिजिटल भूमि प्रबंधन में इन सिद्धांतों का प्रयोग संभव है। "ग्राम स्वराज" का सपना केवल आंदोलन या योजनाओं से नहीं, बल्कि निरंतर प्रयास, तकनीक व नवाचार से ही साकार हो सकता है।

4.9 बोध आधारित प्रश्न

- भूदान आंदोलन का मुख्य उद्देश्य क्या था?
- ग्रामदान योजना का क्या अर्थ है?
- भूदान आंदोलन की प्रमुख उपलब्धि क्या रही?
- ग्रामदान योजना की एक प्रमुख समस्या क्या थी?
- वर्तमान में भूदान-ग्रामदान की कौन-सी भावना जीवित है?

4.10 संदर्भ सूची

- वी. के. पुरी एवं एस. के. मिश्र ; भारतीय अर्थव्यवस्था, पर्यावरण तथा विकास, हिमालया पब्लिकेशन ISBN: 978-93-5840-147-
- ऋतु शुक्ला (असि, प्रो., राजकीय महाविद्यालय, तिलहर, शाहजहाँपुर(); पर्यावरण संरक्षण-एक दार्शनिक
- अध्ययन, ISSN: 2395-6011
- रमेश सिंह ; भारतीय अर्थव्यवस्था, धारणीयता एवं जलवायु परिवर्तन, मैग्रा हिल पब्लिकेशन ISBN : 978-93-5316-6308-0
- लाल एवं लाल ; भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण और विशलेषण, शुभम पब्लिकेशन
- Dr. Priyanka Kumari; बिनोबा भावे और भूदान आन्दोलन ,International Journal of Research in Social Sciences, 2019, Vol-9, ISSN-2249-2496
- Dr. Pratima Kumari; सर्वोदय के साधन: भूदान आन्दोलन, International Journal of Applied Research, 2017, ISSN-2394-7500
- Devkanta Sharma; Movimento Bhoodan: A Critical Study of Contribution of Vinoba Bhave, Social Research Foundation, 2023, ISSN-2321-290X
- शर्मा , रामगोपाल आचार्य विनोबा भावे प्रभात प्रकाशन ,2013
- Dr. Krishan Singh; A Study on bhoodan and gramdan movement in india, Intenational Journal of Humanities and Social Science Research, 2023, Vol 9, Page no. 85-87, ISSN-2455-2070
- Ragvendra Nath Mishra; Bhoodan Movement in India: An Economic Assesment. New Delhi: S.Chand & Co., 1972.
- T. K. Oommen; Charisma, Stability and Change: An Analysis of Bhoodan-Gramdan Movement in India. New Delhi: Thomson Press, 1972.
- T. P. Singh Varanasi; Bhoodan and Gramdan in Orissa: A Social Scientist's Analysis. Serva Seva Singh Prakashan, 1973, 146
- Bhave, Vinoba, "Sahitya", Vol. 16, Paramdham Prakashan, Pavanar, Wardha, 1996 (Hindi).
- Bhave, Vinoba, "Bhoodana: Vichar-Darshan", Maitri (Bhoodan Yajna Visheshank), August-September 1995 (Hindi).
- Bhave, Vinoba, "Sulabha Gramadana", Sarva Seva Sangh Prakashan, Rajghat, Varanasi, 1965 (Hindi).

- Bhole, L. M., "The Role of Co-operatives in Socio-economic Development in India" in Bhole, L. M., Unemployment, Inequality, Entrepreneurship, and Other Collected Papers, Vol. 4., Amani International Publishers, Kiel, 2007.
- Bhole, L. M., "Gramaswaraj: Twenty-First Century Imperative", in Bhole, L. M., Collected Papers on Gandhian Thought, Vol. 3, Amani International Publishers, Kiel, 2007.
- Cholkar, Parag, "Gramaswaraj Ki Gramasabha Aur Aaj ka Panchayat Raj", Maitri, March- April 2001 (Hindi).
- Cholkar, Parag, "Bhoodan Aarohan: Ek Romharshak Pravas", Samyayoga Sadhana, April 16,2001 (Marathi).
- Das, Sarvanarayan, "Bhoodana Andolanki Safalta", Maitree, August-September 1995, p. 221 (Hindi).
- Jayprakash, Narayan, "Sarva Ki Kranti", Maitri, March-April 2001 (Hindi).
- Nargolkar, Vasant, "The Creed of Saint Vinoba", Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, 1963.
- Shah, Kanti, "Bhoodan Yagna: Ek Samiksha", Samyayoga Sadhana, April 16,2001 (Marathi).
- Shah, Kanti, "Eka Aarohanchi Romharshak Katha", Samyayoga Sadhana, April 1, 1998 (Marathi).
- https://dlrar.assam.gov.in
- https://www.mkgandhi.org
- https://planningcommission.nic.in
- https://www.rgics.org
- https://mkgandhi-sarvodaya.org
- https://www.pib.gov.in
- https://indiaculture,gov.in
- https://www.jstor.org

खण्ड–3

कृषि विकास के तकनीकि पहलू, कृषि विपणन एवं ग्रामीण साख

इकाई-1 - हरित क्रांति एवं उसका विस्तार तथा हरित क्रांति के प्रभाव : आय एवं उत्पाद

इकाई की रुपरेखा

1.1. उद्देश्य
1.2. प्रस्तावना
1.3. हरित क्रांति का अर्थ
1.4. हरित क्रांति की शुरुआत
1.5. कारण और कारक:
1.6. वैज्ञानिक अनुसंधान
1.7. सरकारी नीतियाँ
1.8. मूल्य नीति
1.9. लक्षित क्षेत्र और फसलें
1.10. निष्कर्ष
1.11. बोध आधारित प्रश्न
1.12. सन्दर्भ सूची

1.1 उद्देश्य

- इस अध्याय के अध्ययन के बाद, आप निम्नलिखित को समझने में सक्षम होंगे:
- हरित क्रांति की ऐतिहासिक आवश्यकता: आप समझ पाएंगे कि स्वतंत्रता के बाद भारत में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए हरित क्रांति क्यों आवश्यक थी।
- हरित क्रांति की परिभाषा और घटक: आप हरित क्रांति की अवधारणा, इसके प्रमुख घटकों (HYV बीज, उर्वरक, सिंचाई) और उनके उपयोग को समझ पाएंगे।
- प्रमुख व्यक्तित्व और नीतियाँ: आप भारत और विश्व में हरित क्रांति से जुड़े प्रमुख व्यक्तियों (डॉ. नॉर्मन बोरलॉग, डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन) और सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों को जान पाएंगे।
- कृषि पर प्रभाव: आप कृषि उत्पादन में हुई वृद्धि और भारतीय कृषि के पारंपरिक स्वरूप से आधुनिक स्वरूप में परिवर्तन के दूरगामी सामाजिक और आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण कर पाएंगे।

1.2 प्रस्तावना

20वीं सदी के मध्य में, जब भारत नव-स्वतंत्र हुआ था, देश के सामने एक गंभीर चुनौती थी - बढ़ती जनसंख्या के लिए पर्याप्त भोजन का उत्पादन करना। बार-बार पड़ने वाले अकाल और खाद्यान्न की कमी ने देश की खाद्य सुरक्षा पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न लगा दिया था। ऐसे में, कृषि उत्पादन में क्रांतिकारी बदलाव लाने की आवश्यकता महसूस हुई, और इसी आवश्यकता से 'हरित क्रांति' का जन्म हुआ।

हरित क्रांति एक ऐसा आंदोलन था जिसने आधुनिक कृषि तकनीकों, उच्च उपज वाली किस्मों के बीजों (HYV Seeds), रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और बेहतर सिंचाई सुविधाओं के उपयोग के माध्यम से कृषि उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि की। इसका मुख्य उद्देश्य भारत को खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बनाना और भुखमरी व गरीबी को कम करना था। इसने भारतीय कृषि के पारंपरिक स्वरूप को आधुनिक, बाजार-उन्मुख

कृषि में बदल दिया, जिसके दूरगामी सामाजिक और आर्थिक प्रभाव पड़े।

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा पिछले कुछ वर्षों में कम हुआ है और आज भी कुछ कृषि उत्पादों की उत्पादकता अमेरिका और चीन जैसे देशों की तुलना में कम है। फिर भी, भारतीय कृषि क्षेत्र में विकास के अपने गौरव के क्षण रहे हैं। हरित क्रांति (कृषि वैज्ञानिकों के अग्रणी कार्य और किसानों के प्रयासों, जिसे लोकप्रिय रूप से "हरित क्रांति" के रूप में जाना जाता है, ने 1960 में कृषि क्षेत्र में एक बड़ी सफलता हासिल करने में मदद की थी) स्वतंत्र भारत की प्रमुख सफलता की कहानी रही है। हरित क्रांति से पहले जो देश अक्सर अकाल और भोजन की पुरानी कमी से त्रस्त था, आज उसे अधिशेष का सामना करना पड़ रहा है। आजादी के समय लगभग 55 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन से, अब हम लगभग 260 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ा रहे हैं। विकसित देशों के विपरीत, कृषि अभी भी हमारे देश की रीढ़ बनी हुई है।

कृषि क्षेत्र का महत्व:

कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था में केंद्रीय स्थान रखता है, जिसमें तीन महत्वपूर्ण क्षेत्र शामिल हैं (1) समावेशी विकास को बढ़ावा देना, (2) ग्रामीण आय को बढ़ाना और (3) खाद्य सुरक्षा को बनाए रखना। यह सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 14% हिस्सा है और देश की आधी आबादी को आय के मुख्य स्रोत के रूप में निर्यात और सहायता प्रदान करता है। 2011 की जनगणना के अनुसार, कृषि कृषकों और कृषि मजदूरों की कुल संख्या 2001 में 234 मिलियन से बढ़कर 2011 में 263 मिलियन हो गई। कुल निर्यात में कृषि-निर्यात का हिस्सा 2012-13 में 13.08% से बढ़कर 2013-14 में 14.17% (268,000 करोड़ रुपये) हो गया, जो एक रिकॉर्ड स्तर है।

1.3 भारत में हरित क्रांति की शुरुआत

भारत में हरित क्रांति की शुरुआत 1960 के दशक के मध्य में, विशेष रूप से 1965-68 के दौरान हुई। यह एक ऐसे समय में हुई जब देश को गंभीर खाद्य संकट का सामना करना पड़ रहा था। 1960 के दशक के मध्य में लगातार दो सूखे (1965 और 1966) पड़े, जिससे खाद्यान्न उत्पादन में भारी गिरावट आई और भारत को बड़े पैमाने पर खाद्यान्न आयात करना पड़ा, खासकर संयुक्त राज्य अमेरिका से (PL-480 कार्यक्रम के तहत)।

इस संकट से निपटने और देश को खाद्य आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने के लिए सरकार ने कुछ निर्णायक कदम उठाए:

1. **वैज्ञानिक अनुसंधान और उन्नत बीजों का परिचय:**
    - अमेरिकी कृषि वैज्ञानिक डॉ. नॉर्मन बोरलॉग, जिन्हें विश्व में हरित क्रांति का जनक माना जाता है, ने मेक्सिको में उच्च उपज वाली गेहूँ की किस्में विकसित की थीं। भारत ने इन किस्मों को अपनाया।
    - इसी तरह, चावल की उच्च उपज वाली किस्में (जैसे IR-8) फिलीपींस स्थित अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (IRRI) से लाई गईं।
    - भारत में, कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन ने इन किस्मों को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाने और उन्हें लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसके लिए उन्हें 'भारतीय हरित क्रांति का जनक' कहा जाता है।
2. **सरकारी नीतियां और संस्थागत समर्थन:**
    - तत्कालीन प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री और बाद में इंदिरा गांधी की सरकारों ने हरित क्रांति को सफल बनाने के लिए मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति दिखाई।
    - सरकार ने किसानों को उच्च उपज वाले बीज, रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक खरीदने के लिए सब्सिडी प्रदान की।
    - सिंचाई सुविधाओं के विस्तार पर जोर दिया गया, जिसके तहत नहरों, बांधों और ट्यूबवेलों का तेजी से निर्माण किया गया।
    - किसानों को कृषि ऋण आसानी से उपलब्ध कराने के लिए बैंकों और सहकारी समितियों को प्रोत्साहित किया गया।
    - न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) की नीति लागू की गई ताकि किसानों को उनकी उपज का लाभकारी मूल्य मिल सके और वे नई तकनीकों को अपनाने के लिए प्रेरित हों।

- कृषि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों को मजबूत किया गया ताकि नई तकनीकों और बीजों का विकास जारी रह सके।

3. **लक्षित क्षेत्र और फसलें:**

   - हरित क्रांति का पहला चरण मुख्य रूप से उन क्षेत्रों पर केंद्रित था जहाँ सिंचाई की सुविधा पहले से अच्छी थी और किसान आर्थिक रूप से मजबूत थे। इनमें पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश प्रमुख थे।
   - शुरुआत में, इसका ध्यान मुख्य रूप से गेहूँ और चावल जैसी प्रमुख खाद्यान्न फसलों पर था, क्योंकि ये भारत की खाद्य सुरक्षा के लिए सबसे महत्वपूर्ण थीं।

इन प्रयासों के परिणामस्वरूप, भारतीय कृषि में एक बड़ा परिवर्तन आया, जिससे देश को खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता की ओर एक महत्वपूर्ण कदम उठाने में मदद मिली।

1.4 कृषि में ऐतिहासिक वृद्धि के रुझान:

स्वतंत्रता के बाद छह दशकों की अवधि के दौरान भारतीय कृषि ने विकास प्रदर्शन में व्यापक बदलाव देखे हैं। भारत में खेती की निर्वाह प्रकृति और मानसून और अन्य जलवायु मापदंडों पर इस क्षेत्र की भारी निर्भरता के कारण यह परिवर्तनशीलता विशेष रूप से स्पष्ट थी। नियोजित विकास की शुरुआत के बाद के शुरुआती वर्षों में, यह हरित क्रांति प्रौद्योगिकियां थीं जिन्होंने लगभग तीन दशकों तक इस क्षेत्र में विकास को बढ़ावा दिया। पिछली सदी के बाद के वर्षों में हरित क्रांति का प्रभाव धीरे-धीरे कम हो गया। नब्बे के दशक की शुरुआत में शुरू किए गए आर्थिक सुधारों ने कृषि क्षेत्र पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला, मुख्य रूप से अर्थव्यवस्था को बाहरी प्रतिस्पर्धा के लिए खोलने, व्यापार के उदारीकरण और इनपुट और अन्य उप-क्षेत्रों के विनियमन के कारण। (अंतर-वर्ष उतार-चढ़ाव के कारण संरचनात्मक ब्रेक या धर्मनिरपेक्ष त्वरण आदि की पहचान करने में कठिनाइयों को दूर करने और विभिन्न चरणों में क्षेत्र पर प्रौद्योगिकियों और नीतियों में बड़े बदलावों के प्रभावों को पकड़ने के लिए, दशकीय प्रवृत्ति विकास दरों पर आधारित विश्लेषण किया गया था। जीडीपी-कृषि श्रृंखला (1950-51 से 2010-11) को अचानक मौसम के बदलावों और अन्य झटकों के प्रभावों को दूर करने के लिए 2-वर्षीय चलती औसत लेकर पहले सुचारू किया गया था। इसके अलावा, प्रवृत्ति विकास दरों का अनुमान सुचारू किए गए डेटा में सेमी-लॉग ट्रेंड फिट करके लगाया गया था)। विकास के पांच अलग-अलग चरणों की पहचान की गई:

(i) **चरण I**: हरित क्रांति से पहले की अवधि (1950-51 से 1967-68)

(ii) **चरण II:** हरित क्रांति की शुरुआत की अवधि (1968-69 से 1985-86)

(iii) **चरण III**: व्यापक प्रसार की अवधि (1986-87 से 1996-97)

(iv) **चरण IV**: सुधार के बाद की अवधि (1997-98 से 2005-06)

(v) **चरण V:** सुधार की अवधि (2006-07 से 2009-10/2010-11)

हरित क्रांति से पहले की अवधि (1950-51 से 1967-68) में कृषि की जीडीपी में भारी गिरावट देखी गई थी, जिसमें 1950-51 और 1967-68 के बीच दशकीय विकास दर 2.78 प्रतिशत से गिरकर 1.06 प्रतिशत पर आ गई थी। हरित क्रांति की शुरुआत 1966 में हुई थी और बेहतर तकनीक और संस्थागत सुधारों को अपनाने के प्रभाव 1968-69 से दिखने लगे थे। इसके बाद की अवधि को हरित क्रांति के शुरुआती दौर के रूप में वर्गीकृत किया जाता है और कृषि की जीडीपी में वृद्धि में स्पष्ट उलटफेर देखा गया था। 1985-86 के अंत तक दशकीय विकास दर 3 प्रतिशत के करीब पहुंच गई थी। प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रसार की अवधि में इस क्षेत्र में एक दशक से अधिक समय तक निरंतर विकास हुआ, जो 1996-97 में चरम पर पहुंच गया। विकास में मंदी 1997-98 से शुरू हुई और वर्ष 2005-06 तक कृषि क्षेत्र में मंदी का स्पष्ट संकेत दिखाई दिया। इस मंदी को व्यापक रूप से कृषि से संसाधनों को अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में स्थानांतरित करने के परिणाम के रूप में माना जाता है। हालांकि, पिछले कुछ वर्षों में विकास में उल्लेखनीय सुधार देखा गया है जिसने दशकीय विकास दर को 3 प्रतिशत से ऊपर पहुंचा दिया है। संक्षेप में, विकास श्रृंखला सुधारों के बाद की अवधि में कृषि क्षेत्र में तेज मंदी और पिछले पांच वर्षों में स्पष्ट बदलाव को दर्शाती है, जो कि 11वीं पंचवर्षीय योजना अवधि भी है।

(विभिन्न अध्ययनों ने विकास के चरणों को थोड़ा अलग तरीके से वर्गीकृत किया है, जैसे कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन संस्थान

(आईएसईसी) के एलुमलाई कन्नन और सुजाता सुंदरम द्वारा किया गया एक अन्य अध्ययन जिसका शीर्षक है "भारत के कृषि विकास में रुझानों का विश्लेषण" वर्किंग पेपर 276 चरणों को इस प्रकार वर्गीकृत करता है: प्रारंभिक हरित क्रांति (1967-68 से 1979-80), परिपक्व हरित क्रांति (1980-81 से 1989-90), प्रारंभिक आर्थिक सुधार (1990-91 से 1999 00) और आर्थिक सुधार (2000-01 से 2007-08)। अध्ययन में अंतर-वर्ष उतार-चढ़ाव को बराबर करने के लिए विभिन्न चर के तीन साल के औसत का उपयोग किया गया है (ऊपर इस्तेमाल किए गए दो साल के औसत के विपरीत) पेपर http://www.isec.ac.in पर देखा जा सकता है।)

हाल के रुझान, पहल और चुनौतियाँ

परिचालन योग्य जोतों का घटता आकार:

Trend Growth rates in GDP of various sub-sectors in India at 1999-00 prices, 1950-50 to 2010-11 (Per cent/year)

Phase	*All sectors*	*Agriculture and allied*	*Agriculture*	*Non-Agriculture*
Pre-Green Revolution	*3.71*	*2.00*	*1.97*	*5.42*
Green Revolution	*3.72*	*2.38*	*2.63*	*4.62*
Period of Wider Dissemination	*5.52*	*3.57*	*3.58*	*6.40*
Post-Reforms	*6.01*	*2.08*	*2.04*	*7.23*
Recovery	*8.24*	*2.62*	*2.55*	*9.47*

8.5 सभी परिचालन वर्गों (लघु एवं सीमांत, मध्यम एवं बड़े) के लिए जोतों का औसत आकार पिछले कुछ वर्षों में कम हुआ है और सभी वर्गों के लिए यह 1970-71 में 2.82 हेक्टेयर से घटकर 2010-11 (कृषि जनगणना 2010-11) में 1.15 हेक्टेयर रह गया है। पिछली कृषि जनगणना 2005-06 में जोतों का औसत आकार 1.23 हेक्टेयर था।

1.6 कृषि भूमि पर बढ़ता दबाव:

8.6 औद्योगीकरण, शहरीकरण, आवास और बुनियादी ढांचे की बढ़ती मांग कृषि भूमि को गैर-कृषि उपयोगों में बदलने के लिए मजबूर कर रही है; खेती के लिए उपलब्ध क्षेत्र के विस्तार की गुंजाइश सीमित है। यह कुल मिलाकर शुद्ध बोए गए क्षेत्र में कमी के रूप में परिलक्षित होता है, जो 1990-91 में 143 मिलियन हेक्टेयर से घटकर 2012-13 में 139.9 मिलियन हेक्टेयर रह गया। हालांकि, इसी अवधि के दौरान सकल फसल क्षेत्र में 6 मिलियन हेक्टेयर की वृद्धि हुई है, जो 186 मिलियन हेक्टेयर से बढ़कर 194 मिलियन हेक्टेयर हो गया है, क्योंकि फसल की सघनता 130 से 139 प्रतिशत तक बढ़ गई है।

कृषि का विविधीकरण और व्यावसायीकरण:

8.7 हरित क्रांति के बाद के परिदृश्य में, किसान कृषि की पारंपरिक निर्वाह प्रकृति से हटकर, बाजार पर नज़र रखते हुए अधिकाधिक फ़सलें उगा रहे हैं। गैर-लाभकारी या कम उपज वाली फ़सलों का स्थान गैर-खाद्य फ़सलों ने ले लिया है, जो अधिक लाभकारी मूल्य प्राप्त करती हैं और किसान तेज़ी से बागवानी, फूलों की खेती, रेशम उत्पादन, अंगूर की खेती, मधुमक्खी पालन और इसी तरह की अन्य गतिविधियों का सहारा ले रहे हैं। जिसके परिणामस्वरूप कुछ क्षेत्रों में खाद्य फ़सलों के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र में कमी आ रही है, विशेष रूप से मोटे अनाज के मामले में। स्वस्थ उत्पादों की माँग में वृद्धि के कारण जैविक खेती भी बढ़ रही है।

उच्च मूल्य वाली कृषि की ओर बदलाव:

8.8 पिछले दो दशकों में, ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में अनाज से हटकर उच्च मूल्य वाली कृषि वस्तुओं की ओर खपत पैटर्न में संरचनात्मक बदलाव देखा गया है। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में पशुधन उत्पादों और फलों और सब्जियों की अपेक्षाकृत मजबूत और बढ़ती घरेलू मांग और इन वस्तुओं के बढ़ते व्यापार ने कृषि में उच्च मूल्य वाली वस्तुओं के उत्पादन की ओर रुख को बढ़ावा दिया है। 2000 के दशक के दौरान, चावल, चीनी, समुद्री उत्पादों, चाय आदि के निर्यात के मूल्य में वृद्धि दर में गिरावट आई, जबकि उच्च मूल्य वाले निर्यात (फल और सब्जियां, फूलों की खेती, मांस, प्रसंस्कृत फलों के रस) में सालाना लगभग 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज में वृद्धि: वर्ष 2013-14 भारत में कृषि के लिए एक असाधारण रूप से अच्छा वर्ष था क्योंकि कई फसलों में रिकॉर्ड उत्पादन हुआ। उसके बाद के वर्ष यानी 2014-15 में अधिकांश फसलों (गन्ने जैसी कुछ फसलों को छोड़कर) में उत्पादन में गिरावट आई। 2013-14 के अंतिम अनुमानों के अनुसार, देश में चावल का कुल उत्पादन 106.6 मिलियन टन अनुमानित था जो एक नया रिकॉर्ड है। गेहूं का उत्पादन रिकॉर्ड 95.8 मिलियन टन अनुमानित था जो पहले से भी अधिक था। मोटे अनाज का उत्पादन 43.3 मिलियन टन अनुमानित था जो 2012-13 के दौरान उत्पादन से भी अधिक था। कुल खाद्यान्न उत्पादन 265 मिलियन टन अनुमानित है जो एक रिकॉर्ड है। यह पिछले वर्ष के उत्पादन से लगभग 8 मिलियन टन अधिक है। दलहनों और तिलहनों का कुल उत्पादन क्रमशः 19.25 मिलियन टन और 32.7 मिलियन टन के रिकॉर्ड स्तर पर अनुमानित है, जो 2012-13 के दौरान उनके उत्पादन स्तर की तुलना में 0.9 मिलियन टन और 1.8 मिलियन टन अधिक है। 2013-14 के दौरान गन्ने का उत्पादन 352 मिलियन टन अनुमानित है, जो 2012-13 के दौरान उसके 341 मिलियन टन उत्पादन की तुलना में लगभग 11 मिलियन टन अधिक है। कपास का उत्पादन 35.9 मिलियन गांठ (प्रत्येक 170 किलोग्राम) अनुमानित है, जो 2012-13 के दौरान उसके 34.2 मिलियन गांठ उत्पादन की तुलना में लगभग 1.7 मिलियन गांठ अधिक है।

Crop	Area(000 Hectares)			Production ('000 Tonnes)			Yield (Kg./Hectare)		
	2012-13	2013-14	2014-15*	2012-13	2013-14	2014-15*	2012-13	2013-14	2014-15*
Rice	42753.9	44136.0	43855.3	105231.6	106645.5	104798.5	2461	2416	2390
Wheat	30003.3	30473.2	30969.1	93506.5	95849.8	88938.4	3117	3145	2872
Coarse Cereals	24764.6	25219.9	24148.6	40044.2	43294.9	41748.4	1617	1717	1729
Cereals	97521.9	99829.1	98973	238782.3	245790.3	235485	2448	2462	2379
Pulses	23256.8	25212.9	23098.0	18342.5	19252.9	17191.3	789	764	744
Foodgrains	120778.7	125042	122071.0	257124.7	265043.2	252676.5	2129	2120	2070
Total Nine Oilseeds	26484.4	28050.5	25726.4	30939.8	32749.4	26674.8	1168	1168	1037
Cotton@	11977.0	11960.0	13083.0	34220.0	35902.0	35475.0	486	510	461
Sugarcane	4998.9	4993.3	5143.6	341199.7	352141.8	359330.1	68254	70522	69859

@ thousand bales of 170 KGs each *** Fourth Advance Estimate**

11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान ज्वार, बाजरा, छोटे बाजरा, मूंगफली, रेपसीड और सरसों, सूरजमुखी और मेस्टा के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र में नकारात्मक वृद्धि देखी गई है, जबकि सभी प्रमुख फसलों की पैदावार में सकारात्मक वृद्धि दर्ज की गई है। गेहूं, बाजरा, मक्का, मोटे अनाज, चना, अरहर, कुल दालें, मूंगफली, तिल, सोयाबीन, कुल तिलहन और कपास के मामले में उत्पादन में प्रभावशाली वृद्धि दर (प्रति वर्ष 4

प्रतिशत से अधिक) देखी गई। गेहूं, बाजरा, मक्का, मूंगफली और कुल तिलहन के मामले में उत्पादन में वृद्धि मुख्य रूप से पैदावार में वृद्धि के कारण हुई है, जबकि चना, अरहर, कुल दालें, सोयाबीन और कपास के मामले में उत्पादन में वृद्धि क्षेत्र में विस्तार और उत्पादकता/उपज में वृद्धि दोनों के संयोजन से प्रेरित थी। उपज में वृद्धि दर के अवलोकन से पता चलता है कि अधिकांश फसलों ने 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 10वीं पंचवर्षीय योजना की तुलना में अधिक वृद्धि दर्ज की है। हालांकि, गन्ना, रेपसीड और सरसों, सोयाबीन और कपास ने 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 10वीं पंचवर्षीय योजना की तुलना में उपज में कम वृद्धि दर दर्ज की। गन्ना, रेपसीड और सरसों की उपज में वृद्धि से पता चलता है कि उनकी उपज स्थिर हो गई है और उनकी उत्पादकता के स्तर को बढ़ाने के लिए नए सिरे से शोध की आवश्यकता है।

All India Growth Rates of Area, Production and Yield of Principal Crops

Crops	Average Annual Growth (%)			Average Annual Growth (%)		
	10th Plan (2002-03 to 2006-07)			11th Plan (2007-08 to 2011-12)		
	Area	Production	Yield	Area	Production	Yield
Rice	-0.39	1.25	1.17	0.18	2.69	2.41
Wheat	1.30	1.11	-0.32	1.31	4.64	3.29
Coarse Cereals	-0.26	2.55	1.75	-1.59	5.68	7.27
Total Cereals	**0.07**	**1.21**	**0.74**	**-0.03**	**3.79**	**3.76**
Total Pulses	**1.31**	**2.66**	**0.65**	**1.36**	**4.28**	**2.78**
Sugarcane	3.98	4.90	0.66	0.04	0.99	0.87
Groundnut	-1.65	3.61	4.32	-0.86	15.82	13.91
Total 9 Oilseeds	**3.55**	**7.99**	**3.53**	**-0.07**	**5.54**	**5.32**
Cotton	**0.57**	**20.01**	**19.40**	**5.97**	**10.46**	**3.93**

1.7 शब्द एवं परिभाषाएँ :

- **फसलों के अंतर्गत** क्षेत्र: कुल फसल क्षेत्र से संबंधित आंकड़े या तो राज्यों/संघ शासित प्रदेशों से प्राप्त नवीनतम उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर अनुमानित हैं या राज्यों/संघ शासित प्रदेशों से प्राप्त अग्रिम/पूर्वानुमान अनुमानों पर आधारित हैं।
- **सकल फसल क्षेत्र:** यह किसी विशेष वर्ष में एक बार और/या एक से अधिक बार बोए गए कुल क्षेत्र को दर्शाता है, यानी क्षेत्र की गणना उतनी बार की जाती है जितनी बार वर्ष में बोई गई है। इस कुल क्षेत्र को कुल फसल क्षेत्र या कुल बोया गया क्षेत्र भी कहा जाता है।
- **एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र:** यह उन क्षेत्रों को दर्शाता है जिन पर कृषि वर्ष के दौरान एक से अधिक बार फसलें उगाई गई हैं। यह सकल फसल क्षेत्र से बोए गए शुद्ध क्षेत्र को घटाकर प्राप्त किया जाता है।
- **सिंचित क्षेत्र:** सिंचित क्षेत्र से संबंधित इस अध्याय में उपयोग किए गए आंकड़े या तो राज्यों/संघ शासित प्रदेशों से प्राप्त नवीनतम उपलब्ध वर्ष के आंकड़ों के आधार पर अनुमानित हैं या कृषि जनगणना से अनुमानित/लिया गया है। यह माना जाता है कि यह क्षेत्र खेती के लिए नहरों (सरकारी और निजी), टैंकों, नलकूपों, अन्य कुओं और अन्य स्रोतों जैसे स्रोतों के माध्यम से सिंचित है। इसे दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है: (ए) शुद्ध सिंचित क्षेत्र: यह किसी विशेष फसल के लिए वर्ष में एक बार किसी भी स्रोत के माध्यम से सिंचित क्षेत्र है। (बी) कुल शुद्ध असिंचित क्षेत्र: यह शुद्ध बोए गए क्षेत्र से शुद्ध सिंचित क्षेत्र को घटाने पर प्राप्त क्षेत्र है।
- **सकल सिंचित क्षेत्र:** यह फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल है, जो वर्ष में एक बार और/या एक से अधिक बार सिंचित होता है। इसे वर्ष में जितनी बार फसल उगाई और सिंचित किया जाता है, उतनी बार गिना जाता है।
- **कुल/सकल असिंचित क्षेत्र:** यह सकल बोए गए क्षेत्र से सकल सिंचित क्षेत्र को घटाने पर प्राप्त होने वाला क्षेत्र है।
- **फसलों की औसत उपज:** प्रमुख फसलों की प्रति हेक्टेयर औसत उपज प्रत्येक फसल के अंतर्गत संबंधित कुल क्षेत्र द्वारा कुल उत्पादन को विभाजित करके प्राप्त की गई है। अखिल भारतीय और राज्य औसत उपज प्रति हेक्टेयर आम तौर पर क्षेत्र और उत्पादन के आंकड़ों के आधार पर सैकड़ों तक की गणना की गई है। चाय, रबर और छोटी फसलों के मामले में, औसत उपज की गणना क्षेत्र और उत्पादन के आंकड़ों के आधार पर इकाई स्थान तक की गई है। कॉफी के मामले में प्रति हेक्टेयर उपज बुवाई या तोड़े गए क्षेत्र से

संबंधित होती है और रबर के मामले में टैप किए गए क्षेत्र से संबंधित होती है।

1.8 बोध आधारित प्रश्न –

- विश्व में हरित क्रांति का जनक किसे माना जाता है?
- भारत में हरित क्रांति की शुरुआत किस दशक में हुई थी?
- हरित क्रांति से पहले भारत को किस देश से खाद्यान्न आयात करना पड़ता था?
- भारत में हरित क्रांति का जनक किसे कहा जाता है?
- हरित क्रांति का मुख्य उद्देश्य क्या था?
- भारत में हरित क्रांति के लिए शुरू में किन दो प्रमुख फसलों पर ध्यान केंद्रित किया गया?
- सरकार ने किसानों को नई तकनीकों को अपनाने के लिए प्रेरित करने के लिए कौन सी नीति लागू की थी?
- हरित क्रांति का पहला चरण मुख्य रूप से भारत के किन क्षेत्रों पर केंद्रित था?

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची/उपयोगी पुस्तकें

- The State of Indian Agriculture 2012-13, Department of Agriculture & Cooperation, Ministry of Agriculture, Government of India.
- Historical and Spatial Trends in Agriculture: Growth Analysis at National and State level in India- Ramesh Chand and Shinoj Parappurathu, National Centre for Agricultural Economics and Policy Research, New Delhi
- Emerging Trends in Indian Agriculture: A Review Singh Rajvir, Shahi Sudhir Kumar, Mishra D.J. and Mishra U.K. Research Journal of Recent Sciences, Vol. 2(ISC-2012), 36-38 (2013)
- High-Value Agriculture in India: Past Trends and Future Prospects- Vijay Paul Sharma and Dinesh Jain, Indian Institute of Management, Ahemdabad
- Annual Report 2014-15, Department of Agriculture & Cooperation, Ministry of Agriculture & Farmers Welfare.
- Datt and Sundram, R., (2018), India Economy, 55" Edition, Suttam Chand &Sons.
- Mishra, S. K., and Puri, V. K., (2018), 30th Edition, Indian Economy Himalaya Publishing House
- Sen, A.K. (1962). "An Aspect of Indian Agriculture", EW, Feb. 1962.
- Saini, GR. (1971), "Holding Size, Productivity and Some Related Aspects of Indian Agriculture". June, 15.
- Rudra, A. (1968), "Farm Size and Yield Per acre", EPW, July 1968. 4. Rao, C.H.H. (1975) Technological Change and Distribution of Gains in Indian Agriculture, Delhi. Mac Millan & Co. 16.
- Heady, E.O. and Sircar P.K. (1983), "Size Productivity and Returns to Scale" Agricultural situation in India, June 1983

इकाई-2 कृषि विपणन एवं ग्रामीण साख, RIDF, NABARD, RRBs

इकाई की रुपरेखा

उद्देश्य

2.1. प्रस्तावना

2.2. कृषि विपणन की अवधारणा

2.3. विपणन प्रणाली का दायरा

2.4. कृषि विपणन का महत्व

2.5. विपणन की समस्याएँ

2.6. सुधारात्मक प्रयास

2.7. ग्रामीण साख की अवधारणा

2.8. साख के स्रोत

2.9. समस्याएँ और चुनौतियाँ

2.10. सुधारात्मक पहल

2.11. निष्कर्ष

2.12. बोध आधारित प्रश्न

2.13. सन्दर्भ सूची

2.1 उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन से शिक्षार्थी:

- कृषि विपणन की अवधारणा, कार्यप्रणाली और महत्व को समझ पाएंगे।
- ग्रामीण साख की आवश्यकता, स्रोतों और समस्याओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- कृषि विपणन की चुनौतियों और सुधारों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- ग्रामीण ऋण प्रणाली की संरचना और सरकारी प्रयासों को समझेंगे।
- कृषि विकास में विपणन और साख की भूमिका को समग्र रूप से देख सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, जिसमें एक बड़ी आबादी की आजीविका निहित है। कृषि उत्पादन की सफलता न केवल अच्छी फसल पर निर्भर करती है, बल्कि उसके कुशल विपणन और किसानों तक पर्याप्त साख (ऋण) की उपलब्धता पर भी निर्भर करती है।

इस अध्याय में कृषि विपणन की अवधारणा, इसकी समस्याओं और सुधारों पर चर्चा की जाएगी। साथ ही, ग्रामीण साख के महत्व, स्रोतों, समस्याओं और उसे बेहतर बनाने के प्रयासों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा।

कृषि और विपणन, दो शब्द मिलकर कृषि विपणन शब्द बनाते हैं। कृषि, अपने व्यापक अर्थ में, मानव लाभ के लिए प्राकृतिक संसाधनों के अधिकतम उपयोग के उद्देश्य से की जाने वाली गतिविधियों को संदर्भित करती है, जिसमें सभी प्राथमिक उत्पादन गतिविधियाँ शामिल हैं। हालाँकि, इसका सबसे अधिक प्रयोग फसलों और पशुधन की खेती और/या पालन-पोषण की प्रक्रिया के लिए किया जाता है।

"विपणन" शब्द उन गतिविधियों के समूह को संदर्भित करता है जो उत्पादों को उत्पादन बिंदु से उपभोग बिंदु तक पहुँचाने में शामिल होती हैं। इसमें वे सभी गतिविधियाँ शामिल हैं जो स्वामित्व के समय, स्थान, रूप और उपयोगिता के विकास में योगदान करती हैं।

थॉमसन के अनुसार, कृषि विपणन में कृषि-उत्पादित वस्तुओं, कच्चे माल और वस्त्र जैसे व्युत्पन्न उत्पादों को खेतों से अंतिम ग्राहकों तक पहुँचाने में शामिल सभी गतिविधियाँ और संगठन शामिल हैं, साथ ही ऐसे कार्यों का किसानों, बिचौलियों और उपभोक्ताओं पर पड़ने वाले प्रभाव भी शामिल हैं। इस परिभाषा में कृषि के इनपुट पक्ष को शामिल नहीं किया गया है।

2.3 कृषि विपणन

किसानों द्वारा कृषि इनपुट और कृषि उत्पादों को खेतों से उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में शामिल सभी गतिविधियों, एजेंसियों और नीतियों का अध्ययन है। कृषि विपणन प्रणाली कृषि और गैर-कृषि क्षेत्रों के बीच एक कड़ी का काम करती है। इसमें प्रसंस्करण कंपनियों को कृषि कच्चे माल की आपूर्ति का आयोजन, कृषि आदानों और कच्चे माल की माँग का निर्धारण, और कृषि उत्पादों और आदानों के लिए विपणन नीतियाँ स्थापित करना शामिल है।

2.4 कृषि विपणन का दायरा और विषयवस्तु:

कृषि विपणन, अपने व्यापक अर्थ में, किसानों द्वारा उत्पादित कृषि उत्पादों की बिक्री के साथ-साथ इन कृषि उत्पादों के निर्माण में प्रयुक्त कृषि आदानों को भी संदर्भित करता है। परिणामस्वरूप, "कृषि विपणन" शब्द उत्पाद और आदान विपणन, दोनों को समाहित करता है।

उत्पाद विपणन का विषय सभ्यता के आरंभ से ही चला आ रहा है। तकनीकी प्रगति के बाद फसलों के बढ़ते विपणन योग्य अधिशेष के साथ, हाल के वर्षों में उत्पादन विपणन की भूमिका और अधिक स्पष्ट हो गई है। किसान बाजार में बिक्री के लिए उत्पाद बनाते हैं। खेती अब बाजार पर अधिक केंद्रित हो गई है। आदान विपणन अध्ययन का एक अपेक्षाकृत नया क्षेत्र है। पहले किसान स्थानीय बीजों और गोबर की खाद जैसे कृषि क्षेत्र के आदानों का उपयोग करते थे। ये आदान उन्हें आसानी से उपलब्ध थे; किसानों द्वारा फसल उत्पादन के लिए बाजार से आदानों की खरीद न्यूनतम थी। हाल के वर्षों में कृषि आदानों, जैसे उन्नत बीज, उर्वरक, कीटनाशक और कीटनाशक, कृषि मशीनरी, उपकरण और वित्तपोषण, का कृषि उत्पादों के उत्पादन में तेजी से महत्व बढ़ गया है। नई कृषि तकनीक आदानों पर प्रतिक्रिया करती है। कृषि विपणन के दायरे में उत्पाद और इनपुट विपणन को शामिल किया जाना चाहिए। इस पुस्तक में कृषि विपणन विषय पर सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों रूप से चर्चा की गई है। यह प्रणाली, इसकी कार्यप्रणाली और सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिए प्रस्तावित दृष्टिकोण या प्रक्रियाओं में किस प्रकार बदलाव किया जा सकता है, इसका वर्णन करती है।

कृषि विपणन के अंतर्गत विपणन कार्य, एजेंसियाँ, माध्यम, दक्षता और लागत, मूल्य प्रसार और बाज़ार एकीकरण, उत्पादक अधिशेष, सरकारी नीति और अनुसंधान, प्रशिक्षण और कृषि विपणन संबंधी आँकड़े, सभी शामिल हैं।

2.5 कृषि विपणन का महत्व

कृषि विपणन न केवल उत्पादकता और उपभोग बढ़ाने के लिए, बल्कि आर्थिक विकास को गति देने के लिए भी महत्वपूर्ण है। इसके गतिशील कार्य आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परिणामस्वरूप, इसे "कृषि विकास का सबसे शक्तिशाली गुणक" कहा गया है।

आर्थिक विकास में कृषि विपणन की प्रासंगिकता पर निम्नलिखित अनुच्छेदों में चर्चा की गई है:

संसाधन उपयोग और उत्पादन प्रबंधन का अनुकूलन

एक प्रभावी कृषि विपणन प्रणाली संसाधन उपयोग और उत्पादन प्रबंधन को अनुकूलित करती है। अकुशल प्रसंस्करण, भंडारण और परिवहन से होने वाले नुकसान को कम करने के साथ-साथ एक कुशल विपणन प्रणाली विपणन योग्य अधिशेष को बढ़ाने में भी मदद कर सकती है। एक सुविचारित विपणन रणनीति आधुनिक आदानों की उपलब्ध आपूर्ति को कुशलतापूर्वक फैला सकती है, जिससे कृषि व्यवसाय का तेज़ी से विस्तार हो सकता है।

कृषि आय में वृद्धि

बिचौलियों की संख्या कम करके या विपणन सेवाओं पर कमीशन और कृषि उत्पादों के विपणन में उनके द्वारा अपनाई जाने वाली गड़बड़ियों को सीमित करके, एक कुशल विपणन प्रणाली किसानों के लिए बेहतर आय सुनिश्चित करती है। एक प्रभावी प्रणाली यह सुनिश्चित करती है कि किसानों को उनके कृषि उत्पादों के लिए बेहतर मूल्य मिलें और उन्हें उत्पादकता और उत्पादन बढ़ाने के लिए अपने अधिशेष को आधुनिक आदानों में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करें। इसके परिणामस्वरूप किसानों के विपणन अधिशेष और आय में वृद्धि होती है। यदि किसी उत्पादक के पास अपनी अधिशेष उपज बेचने के लिए आसानी से सुलभ बाजार नहीं है, तो उसके लिए अधिक उत्पादन करने की कोई प्रेरणा नहीं होती है। परिणामस्वरूप, उच्च उत्पादन के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान करना महत्वपूर्ण है, और यह केवल विपणन प्रणाली को सुव्यवस्थित करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

बाज़ारों का विस्तार

एक सुव्यवस्थित विपणन प्रणाली, उत्पादों को देश के भीतर और बाहर, यानी उत्पादन स्थल से दूर स्थित स्थानों तक पहुँचाकर उनके बाज़ार का विस्तार करती है। बाज़ार का विस्तार माँग में निरंतर वृद्धि बनाए रखने में मदद करता है, जिससे उत्पादक की आय में वृद्धि सुनिश्चित होती है।

कृषि-आधारित उद्योगों का विकास

एक उन्नत और प्रभावी कृषि विपणन प्रणाली, कृषि-आधारित कंपनियों के विस्तार को बढ़ावा देती है और साथ ही अर्थव्यवस्था के समग्र विकास को भी प्रोत्साहित करती है। कृषि कई उद्योगों के लिए कच्चे माल का एक प्रमुख स्रोत है।

मूल्य संकेत

किसान एक कुशल विपणन रणनीति की सहायता से अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुसार अपने उत्पादन की योजना बना सकते हैं। इस कार्य को करने के लिए मूल्य संकेतों का उपयोग किया जाता है।

नई तकनीक को अपनाना और उसका प्रसार

किसानों को विपणन प्रणाली से लाभ होता है क्योंकि यह नई वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी को अपनाने में मदद करती है। नई तकनीक के लिए अधिक निवेश की आवश्यकता होती है, और किसान ऐसा तभी करेंगे जब उन्हें बाज़ार का भरोसा हो।

रोज़गार

विपणन प्रणाली द्वारा पैकिंग, परिवहन, भंडारण और प्रसंस्करण जैसे विभिन्न कार्यों में लाखों लोगों को रोज़गार मिलता है। विपणन प्रणाली में कमीशन एजेंट, दलाल, व्यापारी, खुदरा विक्रेता, तौलकर्ता, हमाल, पैकेजिंगकर्ता और नियामक कर्मचारी जैसे लोग कार्यरत हैं। इसके अलावा, कई व्यक्ति विपणन प्रणाली में काम करते हैं और वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति करते हैं।

2.6 कृषि विपणन की समस्याएँ :

- **अपर्याप्त आधारभूत संरचना:** भंडारण क्षमता की कमी, खराब सड़कें, अपर्याप्त परिवहन साधन।
- **हाटों और मंडियों की समस्याएँ**: बिचौलियों की अत्यधिक उपस्थिति, कीमतों में पारदर्शिता का अभाव, उचित वजन और माप की समस्या।
- **सूचना का अभाव**: किसानों को बाजार कीमतों और मांग की सही जानकारी न होना।
- **गुणवत्ता नियंत्रण का अभाव**: मानकीकरण और ग्रेडिंग की कमी।
- **संगठनात्मक कमियाँ:** छोटे और बिखरे हुए खेत, किसानों की सौदेबाजी की शक्ति कम।
- **परंपरागत विपणन पद्धतियाँ**: अभी भी पुराने तरीकों पर निर्भरता।
- **मूल्य में उतार-चढ़ाव:** फसल की बंपर पैदावार पर मूल्यों में भारी गिरावट।
- **शीघ्र खराब होने वाली वस्तुओं की समस्या**: फल, सब्जियां, दूध आदि के लिए विशेष भंडारण और परिवहन सुविधाओं का अभाव।

2.7 कृषि विपणन में सुधार हेतु किए गए प्रयास:

- **नियमित मंडियां** (Regulated Markets): कृषि उपज मंडी समितियों (APMC) का गठन, जिससे बिचौलियों का नियंत्रण कम हो और पारदर्शिता बढ़े।
- **सहकारी विपणन** (Cooperative Marketing): किसानों को संगठित कर अपनी उपज बेचने में मदद करना (उदा. NAFED)।
- **भंडारण सुविधाएँ** (Warehousing Facilities): भारतीय खाद्य निगम (FCI) और केंद्रीय/राज्य भंडारण निगमों द्वारा भंडारण क्षमता का विकास।
- **परिवहन सुविधाएँ** (Transport Facilities): ग्रामीण सड़कों का विकास।
- **विपणन अनुसंधान एवं सूचना प्रसार** (Marketing Research and Information Dissemination): किसानों को बाजार कीमतों और रुझानों की जानकारी उपलब्ध कराना।
- **श्रेणीकरण एवं मानकीकरण** (Grading and Standardization): "एगमार्क" (AGMARK) जैसे मानकों का उपयोग।
- **प्रत्यक्ष विपणन** (Direct Marketing): किसान उत्पादक संगठन (FPOs) द्वारा सीधे उपभोक्ताओं को बेचना, "अपनी मंडी" या "किसान बाजार" जैसे पहल।
- **ई-नाम** (e-NAM): राष्ट्रीय कृषि बाजार (National Agriculture Market) - एक ऑनलाइन ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म जो किसानों को अपनी उपज देश के किसी भी हिस्से में बेचने की सुविधा प्रदान करता है।
- **मूल्य स्थिरीकरण कोष** (Price Stabilization Fund) और न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP): किसानों को मूल्य में भारी गिरावट से बचाना।

2.8 ग्रामीण साख (Rural Credit)

अर्थ एवं महत्व

- ग्रामीण साख से तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्रों, विशेषकर किसानों, कारीगरों, छोटे व्यवसायों और भूमिहीन मजदूरों को उनकी आर्थिक गतिविधियों और उपभोग संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपलब्ध कराए जाने वाले ऋण से है। यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक जीवनदायी रक्त है, जिसके बिना कृषि और ग्रामीण विकास की कल्पना करना कठिन है।
- **पूंजी की आवश्यकता :** कृषि एक पूंजी-गहन व्यवसाय है। बीज, उर्वरक, कीटनाशक, सिंचाई, कृषि उपकरण, मशीनीकरण और भूमि सुधार जैसी गतिविधियों के लिए किसानों को पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता होती है।
- **अल्पकालिक और दीर्घकालिक आवश्यकताएँ :** किसानों को बुवाई से लेकर कटाई तक के लिए अल्पकालिक ऋण (फसल ऋण) और भूमि सुधार, सिंचाई सुविधाओं के विकास या ट्रैक्टर खरीदने जैसे कार्यों के लिए दीर्घकालिक ऋण दोनों की आवश्यकता होती है।
- **उपभोग और आकस्मिक व्यय** : कई छोटे और सीमांत किसानों के पास कटाई से पहले अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त बचत नहीं होती। उन्हें सामाजिक-धार्मिक आयोजनों, बच्चों की शिक्षा या बीमारी जैसी आकस्मिक जरूरतों के लिए भी ऋण की आवश्यकता होती है।
- **उत्पादन में वृद्धि :** समय पर और पर्याप्त ऋण की उपलब्धता से किसान उच्च गुणवत्ता वाले आदानों का उपयोग कर पाते हैं, जिससे कृषि उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि होती है।
- **ग्रामीण गरीबी उन्मूलन :** ऋण, विशेषकर छोटे ऋण (माइक्रोफाइनेंस), ग्रामीण गरीबों को आत्मनिर्भर बनने और स्वरोजगार शुरू करने में मदद करता है।

2.9 ग्रामीण साख के स्रोत

- ग्रामीण साख के स्रोतों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है:
- **गैर-संस्थागत स्रोत** (Non-Institutional Sources):
- ये पारंपरिक और अनौपचारिक स्रोत हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में लंबे समय से ऋण प्रदान कर रहे हैं, लेकिन अक्सर उच्च ब्याज दरों और शोषणकारी प्रथाओं से जुड़े होते हैं।
- **महाजन/साहूकार** (Moneylenders): ये ग्रामीण ऋण के सबसे पुराने और सबसे आम स्रोत हैं। ये ऋणदाताओं की तुलना में अधिक लचीले होते हैं और तत्काल नकदी प्रदान करते हैं, लेकिन इनकी ब्याज दरें अत्यधिक ऊंची होती हैं (कभी-कभी 50-100% वार्षिक या उससे भी अधिक)। ये अक्सर किसानों की भूमि या अन्य संपत्ति को बंधक रख लेते हैं और उन्हें ऋण के जाल में फँसा देते हैं।
- **रिश्तेदार एवं मित्र** (Relatives and Friends): ये अनौपचारिक और अक्सर ब्याज-मुक्त या बहुत कम ब्याज पर ऋण प्रदान करते हैं। यह व्यक्तिगत संबंधों पर आधारित होता है और इसकी उपलब्धता सीमित होती है।
- **व्यापारी एवं कमीशन एजेंट** (Traders and Commission Agents): ये अक्सर किसानों को फसल कटाई से पहले ऋण प्रदान करते हैं, इस शर्त पर कि किसान अपनी उपज इन्हीं को पूर्व-निर्धारित कम कीमत पर बेचेंगे। यह किसानों के लिए एक प्रकार का बंधुआ बाजार बनाता है।

संस्थागत स्रोत (Institutional Sources):

भारत सरकार ने किसानों को शोषणकारी गैर-संस्थागत स्रोतों से बचाने और उन्हें पर्याप्त, समय पर और सस्ती दर पर ऋण उपलब्ध कराने के लिए संस्थागत ऋण के विकास पर विशेष जोर दिया है।

- **वाणिज्यिक बैंक** (Commercial Banks): 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद, वाणिज्यिक बैंकों ने ग्रामीण ऋण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्हें प्राथमिकता क्षेत्र को ऋण (Priority Sector Lending - PSL) के तहत कृषि और ग्रामीण विकास के लिए एक निश्चित प्रतिशत ऋण देना अनिवार्य है।
- **क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक** (Regional Rural Banks - RRBs): 1975 में स्थापित, RRBs का उद्देश्य ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करना था। ये वाणिज्यिक बैंकों और सहकारी बैंकों के गुणों का मिश्रण हैं, जिनका लक्ष्य विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के छोटे और सीमांत किसानों, कृषि मजदूरों और ग्रामीण कारीगरों को ऋण प्रदान करना है।
- **सहकारी समितियाँ** (Cooperative Societies): ग्रामीण साख संरचना में सहकारी समितियाँ महत्वपूर्ण हैं। इन्हें दो मुख्य श्रेणियों में बांटा जा सकता है:
- **अल्पकालिक सहकारी साख संरचना** (Short-Term Cooperative Credit Structure): इसमें प्राथमिक कृषि साख समितियाँ (PACS) ग्राम स्तर पर किसानों को अल्पकालिक (फसल) ऋण प्रदान करती हैं, जो जिला केंद्रीय सहकारी बैंकों (DCCBs) और राज्य सहकारी बैंकों (StCBs) से पुनर्वित्त प्राप्त करती हैं।
- **दीर्घकालिक सहकारी साख संरचना** (Long-Term Cooperative Credit Structure): इसमें राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (SCARDBs) और प्राथमिक सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (PCARDBs) शामिल हैं, जो भूमि सुधार, कृषि उपकरण खरीदने आदि के लिए दीर्घकालिक ऋण प्रदान करते हैं।
- **नाबार्ड (NABARD** - National Bank for Agriculture and Rural Development): 1982 में स्थापित, नाबार्ड कृषि और ग्रामीण विकास के लिए एक शीर्ष वित्तीय संस्था है। यह अन्य संस्थागत ऋण एजेंसियों (जैसे सहकारी बैंक, RRBs, वाणिज्यिक बैंक) को पुनर्वित्त सुविधाएँ प्रदान करता है, ग्रामीण आधारभूत संरचना के विकास के लिए ऋण देता है, और ग्रामीण क्षेत्रों में विकास गतिविधियों को बढ़ावा देता है।
- **माइक्रोफाइनेंस संस्थान** (Microfinance Institutions - MFIs): ये वित्तीय सेवाएँ (मुख्य रूप से छोटे ऋण) उन लोगों को प्रदान करते हैं जिनकी पहुँच पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं तक नहीं है। ये अक्सर स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से कार्य करते हैं, जहाँ

महिलाएं छोटे समूहों में संगठित होकर बचत करती हैं और आपसी या बैंक से ऋण प्राप्त करती हैं।

2.10 ग्रामीण साख की समस्याएँ

संस्थागत ऋण के विकास के बावजूद, ग्रामीण साख अभी भी कई चुनौतियों का सामना कर रहा है:

- **पर्याप्तता का अभाव:** ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण की कुल मांग, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों के लिए, अभी भी संस्थागत स्रोतों द्वारा पूरी नहीं की जा पाती, जिससे उन्हें गैर-संस्थागत स्रोतों की ओर मुड़ना पड़ता है।
- **पहुँच का अभाव**: दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक शाखाओं और अन्य संस्थागत ऋण एजेंसियों की पहुँच अभी भी सीमित है। छोटे और सीमांत किसानों को अक्सर संपार्श्विक (गिरवी रखने के लिए संपत्ति) की कमी और जटिल दस्तावेज़ीकरण प्रक्रियाओं के कारण संस्थागत ऋण नहीं मिल पाता।
- **जटिल प्रक्रिया और देरी:** संस्थागत ऋण प्राप्त करने की प्रक्रिया अक्सर लंबी, बोझिल और नौकरशाही से भरी होती है, जिससे किसानों को समय पर ऋण नहीं मिल पाता, खासकर बुवाई जैसे महत्वपूर्ण समय पर।
- **ऋण का अनुत्पादक उपयोग:** कई बार किसान कृषि ऋण का उपयोग अनुत्पादक उद्देश्यों जैसे उपभोग, सामाजिक आयोजनों या अन्य गैर-कृषि गतिविधियों के लिए करते हैं, जिससे वे ऋण चुकाने में असमर्थ हो जाते हैं।
- **ऋणग्रस्तता:** प्राकृतिक आपदाओं (सूखा, बाढ़), फसल की विफलता, बाजार मूल्य में गिरावट या अत्यधिक ब्याज दरों के कारण किसान ऋण के जाल में फँस जाते हैं, जिससे वे अपनी भूमि या अन्य संपत्ति खो देते हैं। कुछ मामलों में, यह किसानों की आत्महत्या का भी एक प्रमुख कारण रहा है।
- **वित्तीय साक्षरता की कमी:** ग्रामीण आबादी, विशेषकर किसानों में वित्तीय नियोजन, ऋण प्रबंधन और विभिन्न वित्तीय उत्पादों के बारे में जानकारी का अभाव होता है।
- **भू-जोत का विखंडन:** छोटे और बिखरे हुए खेत ऋण के प्रभावी उपयोग और निगरानी को कठिन बनाते हैं।
- **पुनर्भुगतान की समस्या:** खराब फसल, आय में अनिश्चितता और बैंकों द्वारा पर्याप्त निगरानी की कमी के कारण ऋण की वसूली में कठिनाई होती है, जिससे बैंकों के गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (NPAs) में वृद्धि होती है।

2.11 ग्रामीण साख में सुधार हेतु किए गए प्रयास

भारत सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक ने ग्रामीण साख के प्रवाह को बढ़ाने और उसकी गुणवत्ता में सुधार के लिए विभिन्न पहलें की हैं:

- **बैंकों का राष्ट्रीयकरण** (Bank Nationalization): 1969 और 1980 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण से ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक शाखाओं का व्यापक विस्तार हुआ और कृषि को प्राथमिकता क्षेत्र के रूप में ऋण उपलब्ध कराया जाने लगा।
- **लीड बैंक योजना** (Lead Bank Scheme): 1969 में शुरू की गई इस योजना के तहत प्रत्येक जिले में एक बैंक को "लीड बैंक" के रूप में नामित किया गया, जो उस जिले के लिए ऋण योजनाएँ तैयार करने और विभिन्न वित्तीय संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए जिम्मेदार है।
- **किसान क्रेडिट कार्ड (KCC)** योजना: 1998 में शुरू की गई KCC योजना किसानों को समय पर और लचीले तरीके से अपनी कृषि और संबद्ध गतिविधियों के लिए अल्पकालिक ऋण (फसल ऋण) प्रदान करती है। यह योजना किसानों को बिना किसी परेशानी के बीज, उर्वरक और अन्य आदान खरीदने में सक्षम बनाती है।
- **संयुक्त देयता समूह** (Joint Liability Groups - JLGs): छोटे, सीमांत किसानों, भूमिहीन मजदूरों और मौखिक पट्टेदारों जैसे किसानों के समूहों को बिना किसी संपार्श्विक के ऋण प्रदान करने के लिए JLGs को बढ़ावा दिया गया है। समूह के सदस्य संयुक्त रूप से ऋण चुकाने के लिए जिम्मेदार होते हैं।
- **स्वयं सहायता समूह (Self-Help Groups - SHGs)** - बैंक लिंकेज कार्यक्रम: नाबार्ड द्वारा प्रचारित यह कार्यक्रम ग्रामीण गरीबों, विशेषकर महिलाओं को छोटे समूहों में संगठित कर उन्हें बचत करने और अपनी छोटी ऋण आवश्यकताओं के लिए बैंकों से ऋण प्राप्त

करने में मदद करता है।

- **ऋण माफी योजनाएँ** (Loan Waiver Schemes): यद्यपि ये विवादास्पद रही हैं और दीर्घकालिक समाधान नहीं हैं, लेकिन प्राकृतिक आपदाओं या गंभीर कृषि संकट की स्थिति में किसानों को तात्कालिक राहत प्रदान करने के लिए समय-समय पर ऋण माफी की घोषणा की गई है।
- **कृषि ऋण लक्ष्य** (Agricultural Credit Targets): भारतीय रिजर्व बैंक बैंकों के लिए कृषि क्षेत्र को ऋण देने के लिए वार्षिक लक्ष्य निर्धारित करता है ताकि कृषि के लिए पर्याप्त वित्तपोषण सुनिश्चित हो सके।
- **ब्याज सबवेंशन योजना** (Interest Subvention Scheme): सरकार कृषि ऋण पर ब्याज सबवेंशन प्रदान करती है, जिससे किसानों को कम ब्याज दरों (जैसे 4% प्रति वर्ष) पर अल्पकालिक फसल ऋण उपलब्ध हो पाता है, बशर्ते वे समय पर ऋण चुका दें।
- **डिजिटल भुगतान और वित्तीय समावेशन** (Digital Payments and Financial Inclusion): जन धन योजना, आधार और मोबाइल (JAM) ट्रिनिटी के माध्यम से वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दिया गया है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सेवाओं और डिजिटल भुगतान तक पहुँच बेहतर हुई है।
- **फसल बीमा योजनाएँ** (Crop Insurance Schemes): प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (PMFBY) जैसी योजनाएं प्राकृतिक आपदाओं के कारण फसल के नुकसान की स्थिति में किसानों को वित्तीय सुरक्षा प्रदान करती हैं, जिससे वे ऋण चुकाने में सक्षम हो पाते हैं और ऋणग्रस्तता से बचते हैं।
- **चुनौतियाँ एवं आगे की राह**
- कृषि विपणन और ग्रामीण साख में महत्वपूर्ण सुधारों के बावजूद, अभी भी कई चुनौतियाँ शेष हैं जिन्हें संबोधित करने की आवश्यकता है:
- **एकीकृत दृष्टिकोण का अभाव**: कृषि विपणन और साख को अक्सर अलग-अलग देखा जाता है, जबकि उन्हें एक एकीकृत प्रणाली के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है। फसल उत्पादन के समय से लेकर बाजार में बिक्री तक की पूरी मूल्य श्रृंखला को वित्तीय सहायता से जोड़ा जाना चाहिए।
- **आधारभूत संरचना का सुदृढीकरण**: कृषि विपणन के लिए आवश्यक कोल्ड चेन, भंडारण सुविधाओं, प्रसंस्करण इकाइयों और ग्रामीण सड़कों के निर्माण में और अधिक निवेश की आवश्यकता है, विशेषकर सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) मॉडल के तहत।
- **बाजार सूचना प्रणाली का विस्तार:** किसानों को न केवल स्थानीय बल्कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों की कीमतों, मांग-आपूर्ति के रुझानों और मौसम की जानकारी वास्तविक समय में उपलब्ध कराने वाली एक मजबूत और उपयोगकर्ता-अनुकूल सूचना प्रणाली विकसित करना। मोबाइल ऐप्स और डिजिटल प्लेटफॉर्म इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।
- **किसान उत्पादक संगठनों (FPOs)** का सशक्तिकरण: FPOs को केवल संगठित करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उन्हें प्रबंधन कौशल, बाजार लिंकेज और वित्तीय सहायता के साथ सशक्त बनाना आवश्यक है ताकि वे किसानों के लिए वास्तविक बाजार शक्ति बन सकें।
- **संस्थागत ऋण की पहुँच और दक्षता बढ़ाना**: छोटे और सीमांत किसानों के लिए संपार्श्विक आवश्यकताओं को कम करना और समूह ऋण (जैसे JLG, SHG) को बढ़ावा देना।
- ऋण आवेदन और स्वीकृति प्रक्रिया को और अधिक सरल और पारदर्शी बनाना, विशेषकर डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग करके। ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय साक्षरता बढ़ाना ताकि किसान विभिन्न ऋण उत्पादों और उनके विवेकपूर्ण उपयोग को समझ सकें। बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं को कृषि क्षेत्र की विशिष्ट जोखिमों को समझने और तदनुसार ऋण उत्पादों को तैयार करने की आवश्यकता है।
- **मूल्य श्रृंखला वित्तपोषण** (Value Chain Financing): फसल उत्पादन के बजाय पूरी मूल्य श्रृंखला (बीज से लेकर बाजार तक) को वित्तपोषित करने पर ध्यान केंद्रित करना, जिससे मूल्य संवर्धन और किसानों की आय में वृद्धि हो सके।
- **जोखिम प्रबंधन**: फसल बीमा योजनाओं का प्रभावी और समयबद्ध क्रियान्वयन सुनिश्चित करना तथा किसानों को जलवायु परिवर्तन और बाजार के झटकों से बचाने के लिए अन्य जोखिम शमन उपकरणों को विकसित करना।
- **डिजिटल कृषि (Digital Agriculture**): सैटेलाइट इमेजरी, AI और मशीन लर्निंग का उपयोग करके किसानों को सटीक कृषि

सलाह, बाजार पूर्वानुमान और व्यक्तिगत ऋण समाधान प्रदान करना।

- **बाजार हस्तक्षेपों की समीक्षा**: MSP प्रणाली की दक्षता और स्थिरता का लगातार मूल्यांकन करना और यह सुनिश्चित करना कि यह वास्तविक रूप से किसानों को लाभ पहुँचाए।

2.12 निष्कर्ष

कृषि विपणन और ग्रामीण साख भारतीय कृषि के विकास के लिए अपरिहार्य हैं। जहाँ एक कुशल कृषि विपणन प्रणाली यह सुनिश्चित करती है कि किसानों को उनकी उपज का उचित और लाभकारी मूल्य मिले, वहीं पर्याप्त और समय पर ग्रामीण साख किसानों को आवश्यक निवेश करने और उत्पादन बढ़ाने में सक्षम बनाती है। विगत वर्षों में इन दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं, लेकिन भारतीय कृषि की विशालता और इसमें निहित चुनौतियों को देखते हुए अभी भी काफी कुछ किया जाना शेष है।

किसानों की आय में वृद्धि, ग्रामीण समृद्धि और देश की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक समन्वित, एकीकृत और किसान-केंद्रित दृष्टिकोण अपनाना अनिवार्य है। सरकार की नीतियाँ, वित्तीय संस्थानों के लचीलेपन और किसानों के बीच जागरूकता तथा संगठनात्मक क्षमता का विकास ही इन दो महत्वपूर्ण धुरी को मजबूत करेगा, जिससे भारतीय कृषि को उसकी वास्तविक क्षमता तक पहुँचने में मदद मिलेगी। केवल तभी हम एक ऐसे भविष्य की कल्पना कर सकते हैं जहाँ भारतीय किसान आर्थिक रूप से सशक्त और आत्मनिर्भर होंगे।

2.13 बोध आधारित प्रश्न -

1. कृषि विपणन क्या है?
2. ग्रामीण साख की आवश्यकता क्यों होती है?
3. e-NAM का उद्देश्य क्या है?
4. गैर-संस्थागत ऋण स्रोतों की एक समस्या क्या है?
5. किसान क्रेडिट कार्ड (KCC) योजना का लाभ क्या है?

2.14 संदर्भ सूची

- वी. के. पुरी एवं एस. के. मिश्र ; भारतीय अर्थव्यवस्था, पर्यावरण तथा विकास, हिमालया पब्लिकेशन ISBN: 978-93-5840-147-
- ऋतु शुक्ला (असि, प्रो., राजकीय महाविद्यालय, तिलहर, शाहजहाँपुर(); पर्यावरण संरक्षण-एक दार्शनिक अध्ययन, ISSN: 2395-6011
- रमेश सिंह ; भारतीय अर्थव्यवस्था, धारणीयता एवं जलवायु परिवर्तन, मैग्रा हिल पब्लिकेशन ISBN : 978-93-5316-6308-0
- लाल एवं लाल ; भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण और विशलेषण, शुभम पब्लिकेशन
- Dutt Ruddar and K.P.M Sundharam, (2007), Indian economy, S.Chand Publishers, New Delhi.
- Lekhi, R.K. and Joginder Singh, (2002), Agricultural Economics, Kalyani Publishers, Ludhiana.
- https:// www.ncert.nic.in
- https://moef.gov.in
- https:// unfccc.int
- https://krishasevakendra.in
- https://www.nabard.org

- कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (CACP) रिपोर्ट, 2023
- कृषि मंत्रालय, भारत सरकार - https://agricoop.gov.in
- FAO: India Food Grain Production Statistics, 2023
- NITI Aayog Working Paper on MSP Reforms, 2022
- NSSO Survey Report on Agricultural Households, 2019
- Swaminathan Commission Report, Vol. 1 & 2
- PIB MSP Press Releases, 2021-2024
- Economic Survey of India, 2023-24

इकाई-3 समन्वित ग्रामीण विकास योजना एवं ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम

इकाई की रुपरेखा

3.1. उद्देश्य

3.2. भूमिका

3.3. समन्वित ग्रामीण विकास योजना (IRDP)

3.4. परिचय

3.5. गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की आय बढ़ाने में मदद करना।

3.6. भागीदार कार्यक्रम

3.7. पात्रता और वित्त पोषण

3.8. कार्यप्रणाली और रणनीति

3.9. उपलब्धियाँ

3.10. आलोचनाएँ

3.11. ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम:

3.12. परिचय: NREP (1980) और RLEGP (1983) जैसे कार्यक्रमों का अवलोकन।

3.13. जवाहर रोजगार

3.14. MGNREGA

3.15. चुनौतियाँ

3.16. निष्कर्ष एवं सुझाव

3.17. बोध आधारित प्रश्न

3.18. सन्दर्भ सूची

3.1 उद्देश्य

- समस्या की समझ: आप ग्रामीण भारत में गरीबी और बेरोजगारी की समस्या की गंभीरता को समझ पाएँगे।
- योजनाओं का ज्ञान: आप IRDP, NREP, RLEGP, JRY और MGNREGA जैसी प्रमुख ग्रामीण विकास और रोजगार योजनाओं के बारे में जान पाएँगे। .
- उद्देश्य और कार्यप्रणाली: आप इन योजनाओं के लक्ष्य, वित्त पोषण व्यवस्था और कार्यान्वयन के तरीकों को समझ पाएँगे।
- उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ: आप इन कार्यक्रमों की सफलताओं के साथ-साथ उनकी आलोचनाओं और सीमाओं का भी विश्लेषण कर पाएँगे।
- आधुनिक संदर्भ: आप MGNREGA जैसे परिवर्तनकारी प्रयासों के माध्यम से ग्रामीण रोजगार नीति के विकास को समझ पाएँगे।

3.2 भूमिका

भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है, जिनमें आज भी गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा और बुनियादी

सुविधाओं की कमी जैसे मुद्दे गंभीर हैं। ग्रामीण विकास के प्रयासों में 1970 के दशक से समन्वित दृष्टिकोण अपनाया गया। इसके तहत समन्वित ग्रामीण विकास योजना (IRDP) और विविध ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम आरंभ किए गए, जिनका उद्देश्य था – आयवर्धन, संसाधन सृजन, ग्रामीण रोजगार, गरीबी उन्मूलन और समावेशी विकास। इस अध्ययन में हम इन योजनाओं की रूपरेखा, कार्यप्रणाली, उपलब्धियों और चुनौतियों पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

3.3 समन्वित ग्रामीण विकास योजना (IRDP):

परिचय

- भारत ने 1978 में **आईआरडीपी (IRDP)** लॉन्च किया।
- कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण विकास को बढ़ावा देना और ग्रामीण गरीबी को कम करना है।
- ग्रामीण विकास मंत्रालय ने कार्यक्रम की शुरुआत की.
- राज्य सरकारों ने नगर निकायों के सहयोग से आईआरडीपी लागू किया।
- **एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integral Rural Development Programme)** का उद्देश्य गांवों में गरीबी, बुनियादी सेवाओं की कमी, सामाजिक बहिष्कार और पर्यावरणीय गिरावट जैसे मुद्दों से निपटना था।
- इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में सतत विकास को बढ़ावा देना है।
- इसने ग्रामीण समुदायों में जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए विभिन्न हस्तक्षेपों की पेशकश करके ऐसा किया।
- आईआरडीपी सामुदायिक भागीदारी और सशक्तिकरण के मूल्यों पर आधारित था।

3.4 गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की आय बढ़ाने में मदद करना।

आईआरडीपी का फोकस भी मुख्य रूप से एसएफडीए के तहत लक्षित समूह पर था, यानी छोटे और सीमांत किसान, कृषि मजदूर और ग्रामीण कारीगर। हालांकि, इसकी परिचालन रणनीति में काफी विचलन/अंतर था। कार्यक्रम की मुख्य विशेषताएं थीं:

- पहली बार लाभार्थियों की पहचान के लिए गरीबी रेखा आय की अवधारणा लागू की गई थी और इसलिए भूमि अब लाभार्थियों की पहचान और चयन के लिए मानदंड नहीं थी।
- गरीबी रेखा आय (परिभाषा के लिए इकाई 1 देखें) पांच व्यक्तियों के औसत परिवार के लिए 3500 रुपये प्रति वर्ष निर्धारित की गई थी। 3500 रुपये से कम वार्षिक आय वाले परिवारों की पहचान गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) परिवारों के रूप में की गई और वे आईआरडीपी के तहत लाभ के लिए पात्र थे।
- लाभार्थियों की पहचान पारिवारिक आय के आधार रेखा सर्वेक्षण के माध्यम से की गई थी।
- सब्सिडी की दरें वही थीं जो एसएफडीए लाभार्थियों के लिए इस्तेमाल की जाती थीं, यानी छोटे किसानों के लिए 25%, अन्य के लिए 33.33% और एससी/एसटी लाभार्थियों के लिए 50%। इसके अलावा, समूह योजना में किसी भी श्रेणी के लाभार्थी भी 50% सब्सिडी के लिए पात्र थे।
- कुल लाभार्थियों में से कम से कम 30 प्रतिशत एससी और एसटी होने चाहिए थे। इसे बाद में बढ़ाकर 50% कर दिया गया।
- सभी श्रेणियों की महिला लाभार्थियों की संख्या 33.33 प्रतिशत होनी चाहिए थी जिसे बाद में बढ़ाकर 40% कर दिया गया।

3.5 भागीदार कार्यक्रम

स्वरोजगार परियोजनाओं में निम्नलिखित सभी क्षेत्र शामिल होंगे:

- प्रौद्योगिकी की सहायता से भूमि और जल संसाधनों के कुशल उपयोग सहित कृषि विकास के कार्यक्रम;
- मुख्य रूप से छोटे किसानों और कृषि श्रमिक परिवारों को ध्यान में रखते हुए सहायक व्यवसाय के रूप में पशुपालन के कार्यक्रम;
- ट्रॉलर, मशीनीकृत नावों और देशी नावों के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों की कटाई सहित समुद्री मत्स्य पालन के कार्यक्रम
- प्रति इकाई जल में मछली उत्पादन को अधिकतम करने के लिए अंतर्देशीय जल और खारे जल मत्स्य पालन के कार्यक्रम;
- सामाजिक वानिकी के कार्यक्रम;
- छोटे किसान परिवारों के माध्यम से कृषि वानिकी के कार्यक्रम;
- ग्रामीण आबादी के कारीगर वर्गों के लिए महत्वपूर्ण व्यवसायों के रूप में हथकरघा, रेशम उत्पादन और मधुमक्खी पालन सहित ग्राम और कुटीर उद्योग;
- गरीब परिवारों के लिए स्वरोजगार के रूप में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का सेवा क्षेत्र; और

Category (1)	Rate of subsidy (2)	Prior to 1990 (3)	Ceiling of Subsidy After1990
1. **Individual family**			
a) Small farmers	25 per cent	Rs. 3,000 per family in general and Rs. 4,000 in drought prone areas.	Rs. 4,000 per family in general and Rs. 5,000 in DPAP/DDP areas.
b) Marginal farmers, agricultural labourers, non-agricultural labourers and rural artisans	33.33 per cent	Rs. 3,000 per family in general and Rs. 4,000 in drought prone areas.	Rs. 4,000 per family in general and Rs. 5,000 in DPAP/DDP areas.
c) SCs and STs	50 per cent	Rs. 5,000 per family in all rural areas.	Rs. 6,000 per family in all rural areas.
2. **Group Schemes**			
a) Group schemes except Minor irrigation projects	50 per cent of the capital costs	Rs. 3,000 per family in general and Rs. 4,000 in drought prone areas.	Up to Rs. 50,000.
b) Community minor irrigation	50 per cent	No ceiling.	No ceiling.
3. **Rearing of heifers**			
a) Small and marginal farmers	50 per cent	Rs. 3,000 per family.	-
b) Agricultural Labourers	-	Rs. 3,000 per family.	-
c) Tribal families	-	Rs. 3,000 per family.	-

Source: *IRDP and Allied Programmes (A Manual),* Ministry of Rural Development, 1988, and the revised version of 1992.

- विकास कार्यों के लिए संगठित श्रम की जरूरतों को पूरा करने के लिए कौशल निर्माण और श्रम की गतिशीलता के लिए कार्यक्रम।

आईआरडीपी के कार्यान्वयन के लिए व्यापक ब्लॉक योजनाओं को तैयार करना आवश्यक बनाया गया था। इन्हें बदले में जिला और राज्य योजनाओं से जोड़ने का प्रस्ताव था। उपरोक्त सभी में, लोगों को सक्रिय रूप से शामिल करने की मांग की गई थी। साथ ही, स्वैच्छिक एजेंसियों की मदद भी मांगी गई थी।

Subsidy Pattern Under IRDP

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का लक्ष्य

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी) का लक्ष्य निम्नलिखित है:

- ग्रामीण क्षेत्रों में सतत विकास को बढ़ावा देना।
- गरीबी को कम करना और ग्रामीण समुदायों में जीवन स्तर में सुधार करना।
- स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और स्वच्छ पानी जैसी बुनियादी सेवाओं तक पहुंच प्रदान करें।
- ग्रामीण समुदायों के लिए आर्थिक अवसर बढ़ाना।
- निर्णय लेने में भाग लेने और उनके विकास का प्रभार लेने के लिए ग्रामीण समुदायों को सशक्त बनाना और उनकी क्षमता का निर्माण करना।
- आत्मनिर्भरता और स्थिरता को बढ़ावा देना।
- ग्रामीण समुदायों की सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय चिंताओं को समग्र और एकीकृत रूप से संबोधित करना।

आईआरडीपी के उद्देश्य

- आईआरडीपी का उद्देश्य गरीब ग्रामीण लोगों को गरीबी रेखा को पार करने के लिए आय उत्पन्न करने में मदद करना है।
- इस योजना के अंतर्गत लगभग 55 मिलियन गरीब लोग शामिल हैं। सरकार ने प्रति व्यक्ति 13,700 रुपये खर्च किये.
- अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आईआरडीपी के पास भागीदार कार्यक्रम थे। वे हैं:
    - ग्रामीण महिलाओं और बच्चों के विकास के लिए DWCRA
    - जीकेवाई
    - मेगावाट बिजली
    - एसआईटीआरए
    - ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार प्रशिक्षण के लिए ट्राइसेम

3.6 आईआरडीपी के लिए पात्रता और वित्त पोषण

हालाँकि, ये कार्यक्रम अलग-अलग चलते थे। वे आईआरडीपी के मुख्य लक्ष्य को प्राप्त करने में विफल रहे। उदाहरण के लिए, केवल 3% **आईआरडीपी** लाभार्थियों को ट्राइसेम के तहत प्रशिक्षण मिला।

- DWCRA - ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास
- जीकेवाई- गंगा कल्याण योजना
- MWS- मिलियन वेल्स योजना
- एसआईटीआरए - ग्रामीण कारीगरों को बेहतर टूलकिट की आपूर्ति
- ट्राइसेम-स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण

आईआरडीपी के लिए पात्रता

- आईआरडीपी (एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम) **केंद्र और राज्य** सरकारों की एक संयुक्त पहल है, जिसमें 50:50 की फंडिंग व्यवस्था है।
- केंद्र सरकार देश की कुल ग्रामीण गरीबी आबादी की तुलना में गरीबी में रहने वाली राज्य की ग्रामीण आबादी के अनुपात के आधार

पर प्रत्येक राज्य को धन आवंटित करती है।

- यह दृष्टिकोण 1980 से भारत के सभी राज्यों में लागू किया गया है। विभिन्न सहकारी समितियाँ, वाणिज्यिक बैंक और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कार्यक्रम का समर्थन करने के लिए उत्पादक वित्तीय संपत्ति और सब्सिडी प्रदान करते हैं।

इस कार्यक्रम के लाभार्थी इस प्रकार हैं:

- ग्रामीण कारीगर
- मजदूर
- सीमांत किसान
- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति
- आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग जिनकी वार्षिक आय 11,000 रुपये से कम है

निम्न लोगों को सब्सिडी इस प्रकार दी जाती है:

- छोटे किसान (25%)
- सीमांत किसान और कृषि मजदूर (33.33%)
- एससी/एसटी परिवार और दिव्यांग लोग (50%)

एससी/एसटी परिवारों और दिव्यांग लोगों के लिए सब्सिडी की अधिकतम राशि 6,000 रुपये, गैर डीपीएपी और गैर डीडीपी इलाकों के लिए 4,000 रुपये और डीपीएपी और डीडीपी इलाकों के लिए 5,000 रुपये तय की गई है।

इस समूह से एससी/एसटी उम्मीदवारों, महिलाओं और दिव्यांग लोगों को क्रमशः 50%, 40% और 3% की सब्सिडी की गारंटी दी जाती है। इस समूह में से उन लोगों को भी पहली प्राथमिकता दी जाती है जिन्हें सीलिंग सरप्लस भूमि आवंटित की गई है जबकि ग्रीन कार्ड धारक जो मुक्त बंधुआ मजदूरों और परिवार कल्याण कार्यक्रमों की श्रेणी में आते हैं उन्हें भी पहली प्राथमिकता दी जाती है।

3.7 IRDP की कार्यप्रणाली और रणनीति

- लाभार्थी की पहचान ग्राम पंचायत स्तर पर की जाती थी
- ऋण राशि का एक हिस्सा बैंक द्वारा और शेष सब्सिडी सरकार द्वारा दी जाती थी
- प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से कौशल विकास कराया जाता था
- लाभार्थी की नियमित निगरानी और फीडबैक हेतु DRDA जिम्मेदार थी

3.8 IRDP की उपलब्धियाँ

(क) गरीबी उन्मूलन:

IRDP ने लाखों ग्रामीण परिवारों को स्वरोजगार और परिसंपत्तियों का स्वामित्व प्रदान किया। योजना के प्रारंभिक दशक में गरीबी दर 45% से घटकर 36% (1993-94) तक पहुँच गई।

(ख) बैंकिंग पहुंच:

इस योजना ने ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों की शाखाएँ बढ़ाने में मदद की और गरीबों को संस्थागत वित्त उपलब्ध कराया।

(ग) महिला सशक्तिकरण:

IRDP के तहत महिला लाभार्थियों की संख्या 40% से अधिक पहुँच गई थी। इससे महिलाओं की आर्थिक स्थिति मजबूत हुई।

Items	Achievements				
	VI Plan 1980-85	VII Plan 1985-90	Annual Plan 1990-1992	VIII Plan !992-1997	IX Plan 1997-98 & 1998-1999
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1. No. of Families assisted (no. in Lakhs)	16.56	18.77	4.99*	108.36	24.89**
2. Subsidy Disbursed (Rs. in Crores)	1661.17	3315.79	1147.38	3974.94	1271.09
3. Credit Mobilization (Rs. in Crores)	3101.61	5372.54	1783.28	7566.31	2977.36
4. Total Investment (Rs. in Crores)	4762.78	8688.83	2930.66	11541.25	4248.45
5. Subsidy – Credit Ratio	1:1.87	1:1.62	1:1.55	1:1.90	1:2.21
6. SC/ST Coverage (% of total beneficiaries)	39.10	44.99	49.46	46.40	45.00
7. Coverage of Women Beneficiaries (% of total beneficiaries)	N A	18.89	32.35	34.33	34.00

*This includes the second dose for old beneficiaries.

** Up to November 1999.

Source: 1) Seventh & Eighth Five Year Plans, Planning Commission, Government of India, New Delhi.

2) Annual reports of the Ministry of Rural development (1986-87/1990-91/1996- 97/1999-2000)

Performance of IRDP from Sixth Plan to 1998-99

3.9 IRDP की आलोचना

(क) अपारदर्शी चयन प्रक्रिया:

BPL सूची की खामियों और भ्रष्टाचार के कारण वास्तविक लाभार्थी कई बार वंचित रह गए।

(ख) बैंकिंग प्रणाली की उदासीनता:

कई बैंक ऋण वितरण में रूचि नहीं लेते थे। ऋण स्वीकृति और वितरण में देरी होती थी।

(ग) निगरानी और मूल्यांकन की कमजोरी:

DRDA के पास पर्याप्त जनशक्ति और संसाधन नहीं थे, जिससे निगरानी व्यवस्था प्रभावी नहीं रही।

(घ) प्रशिक्षण की गुणवत्ता:

कौशल विकास प्रशिक्षण सीमित और अपर्याप्त था, जिससे लाभार्थी का स्वरोजगार सफल नहीं हो सका।

3.10 ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम: संक्षिप्त विवेचन

IRDP के साथ-साथ भारत सरकार ने ग्रामीण रोजगार की समस्या को हल करने के लिए कई योजनाएँ प्रारंभ कीं, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख थीं:

3.11. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP)

आरंभ: 1980

उद्देश्य: अकुशल मजदूरों को दैनिक कार्य प्रदान करना

विशेषता: श्रम प्रधान कार्यों के माध्यम से स्थायी परिसंपत्ति निर्माण

परिणाम: ग्राम सड़क, सिंचाई नहर, जल संरक्षण संरचनाओं का निर्माण

2. ग्रामीण भूमि रहित रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP)

आरंभ: 1983

विशेष रूप से भूमिहीन मजदूरों को लक्षित किया गया

मजदूरी के साथ-साथ सृजनात्मक गतिविधियाँ भी शामिल थीं

3.12. जवाहर रोजगार योजना (JRY)

- वर्ष 1989 में NREP और RLEGP का एकीकरण करके लागू की गई
- क्रियान्वयन: ग्राम पंचायतों के माध्यम से
- उद्देश्य: ग्रामीण बुनियादी ढाँचा निर्माण व रोजगार सृजन

3.13. MGNREGA: ग्रामीण रोजगार नीति का परिवर्तनकारी प्रयास

2005 में मनरेगा (बाद में MGNREGA) के लागू होने के साथ भारत ने ग्रामीण रोजगार को कानूनी अधिकार के रूप में स्वीकार किया।

प्रमुख विशेषताएँ:

- हर ग्रामीण परिवार को 100 दिन का अकुशल कार्य
- मजदूरी भुगतान सीधे बैंक खाते में
- सामाजिक अंकेक्षण, मास्टर रोल, जॉब कार्ड जैसी पारदर्शी व्यवस्था
- जल संरक्षण, वृक्षारोपण, सड़क निर्माण जैसे श्रम प्रधान कार्य

उपलब्धियाँ:

- 2022-23 में लगभग 6 करोड़ परिवारों को रोजगार मिला
- महिलाओं की भागीदारी 55% से अधिक
- गरीबी में कमी और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मांग सृजन

8. चुनौतियाँ और आलोचना

(क) भ्रष्टाचार:

- कई राज्यों में जॉब कार्ड फर्जी, उपस्थिति में हेरफेर, मजदूरी में कटौती जैसी समस्याएँ सामने आई।

(ख) कार्य की गुणवत्ता:

- स्थायी परिसंपत्तियों का निर्माण कम, और अस्थायी कार्य अधिक हुए।

(ग) देरी से भुगतान:

- भुगतान में कई बार महीनों की देरी होती है, जिससे योजना की विश्वसनीयता घटती है।

3.14 निष्कर्ष एवं सुझाव

समन्वित ग्रामीण विकास योजना और ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों ने भारत के ग्रामीण समाज में सकारात्मक हस्तक्षेप किया है। यद्यपि इनकी कुछ सीमाएँ रही हैं, फिर भी उन्होंने एक ऐसी नींव रखी जिस पर ग्रामीण समावेशी विकास की नीति खड़ी की जा सकती है।

इस इकाई में हमने ग्रामीण गरीबी से निपटने के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम आईआरडीपी पर चर्चा की। हमने पाया कि तीन कारकों ने इस धारणा में इस तरह का बदलाव किया: यह अहसास कि 'हरित क्रांति' के लाभ सभी वर्गों तक नहीं पहुंचे हैं; 'विकास अर्थशास्त्र में वितरण न्याय' की अवधारणा का उदय और उस समय ग्रामीण गरीबों के बीच अशांति और बेचैनी।

इसके बाद हमने चौथी और पांचवीं पंचवर्षीय योजना में किए गए दो गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित किया। हमने दो एजेंसियों के बारे में पढ़ा जो गरीबों की विशेष श्रेणियों की जरूरतों को पूरा करती हैं, यानी लघु किसान विकास एजेंसियां और सीमांत किसान और कृषि मजदूर विकास एजेंसियां। इसके बाद, हमने आईआरडीपी का विस्तार से अध्ययन किया। हमने उस पृष्ठभूमि पर चर्चा की जिसमें कार्यक्रम स्थापित किया गया था। हमने 'एकीकृत ग्रामीण विकास' की अवधारणा, इसके संगठनात्मक, प्रशासनिक और वित्तीय पहलुओं के बारे में भी पढ़ा। और अंत में, हमने इसकी उपलब्धियों और कमजोरियों का आकलन किया।

सुझाव:

- लाभार्थी चयन में पारदर्शिता हेतु SECC डेटा और डिजिटल टूल्स का उपयोग
- ग्राम पंचायतों को वित्तीय और प्रशासनिक स्वायत्तता
- प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता और स्थानिक प्रासंगिकता पर बल
- योजनाओं के एकीकरण और ग्राम स्तरीय निगरानी तंत्र का सुदृढ़ीकरण

मुख्य शब्द:

1. **सामुदायिक विकास:** 1952 में ग्रामीण विकास के लिए शुरू किया गया एक कार्यक्रम।
2. **समवर्ती मूल्यांकन**: कार्यक्रम की उपलब्धियों की प्रगति का आवधिक मूल्यांकन।
3. **ऋण**: बैंकों, सहकारी समितियों आदि से ऋण
4. **हरित क्रांति:** साठ के दशक के उत्तरार्ध में कृषि उत्पादन बढ़ाने में सफलता।
5. **कार्यान्वयन:** किसी योजना का क्रियान्वयन।
6. **परियोजना निर्माण:** किसी परियोजना या योजना के लिए व्यवस्थित योजना बनाना।

7. **निगरानी:** निरंतर निगरानी या पर्यवेक्षण।
8. **उत्कृष्ट विधि**: इसका अर्थ है एक सरल और पारदर्शी विधि।
9. **क्षेत्रीय असंतुलन:** विभिन्न क्षेत्रों के बीच विकास संबंधी असमानताएँ
10. **सहायता:** सरकार द्वारा दिया जाने वाला निःशुल्क अनुदान।
11. **कमजोर वर्ग:** जनसंख्या के सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग, यानी अनुसूचित जाति, जनजाति और महिलाएँ

3.15 बोध आधारित प्रश्न -

1. समन्वित ग्रामीण विकास योजना (IRDP) को किस वर्ष लॉन्च किया गया था?
2. IRDP का मुख्य उद्देश्य क्या था और इसके तहत कितने गरीब लोगों को शामिल किया गया था?
3. IRDP के अंतर्गत अनुसूचित जाति/जनजाति परिवारों और दिव्यांग लोगों को अधिकतम कितनी सब्सिडी दी जाती थी?
4. ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP) का मुख्य लक्ष्य क्या था?
5. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP) को मिलाकर कौन सी नई योजना बनाई गई थी?
6. MGNREGA का पूरा नाम क्या है और यह किस वर्ष लागू हुआ?
7. MGNREGA की दो प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?
8. IRDP की दो मुख्य आलोचनाएँ क्या थीं?

3.16 संदर्भ (References):

1. ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार – https://rural.nic.in/
2. Planning Commission Reports on IRDP, 1981-2001
3. NITI Aayog Evaluation Studies on Rural Employment Schemes, 2018
4. Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act Annual Reports, 2022-23
5. Ministry of Finance, Economic Survey, 2023-24
6. World Bank Study on India's Rural Employment Guarantee, 2017
7. Dr. D. Bandyopadhyay, "Integrated Rural Development in India: An Overview", 2000
8. Verma, S. C., 1980, Direct Attack on Rural Poverty, Ministry of Rural Development, Delhi,.
9. Fifty Years of Rural Development in India, 1998, NIRD, Hyderabad,
10. . Bandyopadhyay, D., 1986, A Study on Poverty Alleviation in Rural India Through Special Employment Generation Programmes, Asia Employment Programme, ILO ARTEP, New Delhi.
11. Chakravarthy, Sukhamoy, 1987, Development Planning: The Indian Experience, Oxford University Press, New Delhi.
12. Draft Sixth & Seventh Five Year Plans, 1978, Planning Commission, Government of India, New Delhi.
13. NREP/RLEGP: Manual, 1987, Ministry of Rural Development, Government of India, New Delhi.
14. Rural Statistics ,1990/1995/1998/2001, NIRD, Hyderabad.
15. Jain, L.C. 1989. "Integration Eludes IRDP' in Kurukshetra, Vol. XXXVIII, No. 2, November.
16. Subbarao, K., 1985, "Regional Variations in Impact of Anti Poverty Programmes A Review of Evidence' in Economic and Political Weekly, October 26, Vol. XXI

खण्ड–4

खेतीहर मजदूर, उनकी समस्यायें एवं समाधान के प्रयास

इकाई–01 ग्रामीण बेरोजगारी एवं गरीबी

इकाई की रुपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 ग्रामीण बेरोजगारी की परिभाषा और स्वरूप

1.3 बेरोजगारी के प्रमुख कारण: शिक्षा की कमी, पूंजी का अभाव, मौसमी कृषि, तकनीकी पिछड़ापन

1.4 बेरोजगारी के प्रभाव: ऋणग्रस्तता, स्वास्थ्य पर असर, सामाजिक कुरीतियाँ

1.5 बेरोजगारी के प्रकार: मौसमी, छिपी

1.6 गरीबी की परिभाषा: निरपेक्ष और सापेक्ष गरीबी

1.7 गरीबी के कारण: आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक, ऐतिहासिक

1.8 गरीबी रेखा का निर्धारण: दादाभाई नौरोजी से लेकर रंगराजन समिति तक

1.9 गरीबी उन्मूलन के उपाय:

- विकासोन्मुखी योजनाएँ
- संपत्ति निर्माण और रोजगार सृजन
- न्यूनतम मूलभूत सुविधाएँ

1.10 निष्कर्ष

1.11 बोध आधारित प्रश्न

1.12 सन्दर्भ सूची / उपयोगी पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन से विद्यार्थी:

- ग्रामीण भारत में बेरोजगारी और गरीबी की परिभाषा, स्वरूप और प्रकार को समझ सकेंगे
- इन समस्याओं के सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक और ऐतिहासिक कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे
- मौसमी और छिपी बेरोजगारी की अवधारणा तथा उनके प्रभावों को पहचान सकेंगे
- गरीबी रेखा के निर्धारण की ऐतिहासिक पद्धतियों और समितियों की भूमिका को जान सकेंगे
- सरकार द्वारा चलाए गए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों और योजनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक सुधारात्मक उपायों को समझ सकेंगे
- सामाजिक चेतना, प्रशिक्षण और रोजगार सृजन की रणनीतियों को आत्मसात कर सकेंगे

- गरीबी और बेरोजगारी के दुष्चक्र को तोड़ने के लिए नीति-निर्माण की दिशा में सोच सकेंगे

1.2 ग्रामीण बेरोजगारी की परिभाषा और स्वरूप

ग्रामीण बेरोजगारी

जब किसी देश में कार्य करने वाली जनशक्ति अधिक होती है और काम करने के लिए राजी होते हुए भी लोगों को प्रचलित मजदूरी पर कार्य नही मिलता, तो ऐसी अवस्था को बेरोजगारी की संज्ञा दी जाती है। बेरोजगारी का होना या न होना श्रम की माँग और उसकी आपूर्ति के बीच स्थिर अनुपात पर निर्भर करता है। भारत देश में लगभग दो-तिहाई जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में रहती है (833 मिलियन-अनुमानित), जब यह जनसंख्या रोजगार के अभाव में रहती है तो इसे ग्रामीण बेरोजगारी का नाम दिया जाता है।

ग्रामीण बेरोजगारी मुख्यतः कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित होने के साथ शिक्षित ग्रामीण बेरोजगारी के रूप में है।

1.3 ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी के कारण

1. **शिक्षा की कमी** ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी का मुख्य उत्तरदायी कारण है।
2. **पूंजी का अभाव-** ग्रामीण क्षेत्र में लोगों के पास पर्याप्त पूँजी न होने के कारण वे जो भी कमाते हैं उसे खर्च करना पड़ता है।
3. **मौसमी कृषि-** के कारण भी लोग खेती के दिनों को छोड़कर शेष समय में बेरोजगार होते हैं।
4. **मानसून की अनि;मितता -** ग्रामीण जनता कृषि पर निर्भर करती है और कृषि मानसून पर निर्भर होता है। vkSj ekulwu ij euq"; dk fu;a=.k ugha gSA
5. **भूमि का उप-विभाजन-** भूमि को भाई-भाई में, बाप-बेटे में बांटतें - बांटते इतने छोटे-छोटे टुकड़े कर दिए गए है कि कृषि उत्पादन ढंग से नहीं हो पाता।
6. **लघु व कुटीर उद्योगों का पतन -** पहले जिन परिवारों के लिए यह आय का जरिया था वो आज बेरोजगार हो चुके हैं।
7. **ग्रामीण क्षेत्रो में मजदूरों को कार्य कम व ज्यादा आराम का पसंद होना -** यह मुख्यतः देखा जाता है कि कुछ काम करने के बाद मजदूरी मिल जाती है तो अन्य काम मिलने पर उसे प्राथमिकता नहीं दी जाती है ऐसी स्थिती में बेरोजगरोa की संख्या में वृद्धि होती है।
8. **दोषपूर्ण विचार पद्धति -** ग्रामीण क्षेत्रो में अधिकांश लोग थोड़ा बहुत पढ़ने के बाद नौकरी चाहते है। वे कृषि कार्य भी नहीं करना चाहते और स्वयं के व्यवसाय के लिए उनके पास इतनी पूंजी नही होती, यह भी बेरोजगारी का एक कारण है।
9. **कृषि क्षेत्र में पूंजी प्रधान तकनीकों का अभाव-** जिससे उत्पादन पर असर पड़ता है।
10. **प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव-** ग्रामीण क्षेत्र में ज्यादातर श्रमिक अप्रशिक्षित होते हैं।
11. **जनसंख्या वृद्धि -** परिवार के सदस्यो में कमाने वाले कम होते हैं। आश्रितों की संख्या अधिक होती है।

1.4 बेरोजगारी का लोगो के जीवन पर प्रभाव

1. बेरोजगार होने के कारण लोगों में ऋणग्रस्तता पायी जाती है।
2. स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पडता है।
3. पूंजी व रोजगार के अभाव में रहन-सहन निम्न स्तर का होता है।
4. सामाजिक कुरीतियोa का प्रसार।
5. बेरोजगारी आर्थिक विकास में भी बाधक है।

1.5 बेरोजगारी के प्रकार: मौसमी, छिपी

ग्रामीण बेरोजगारी के अन्तर्गत मौसमी बेरोजगारी तथा छिपी बेरोजगारी देखने को मिलती है। इस बेरोजगारी पर मनरेगा योजना का महत्वपूर्ण प्रभाव है। क्योंकि इससे लोगो को रोजगार मिला है तथा उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने के सुझाव-

1. **सिंचाई सुविधाओं का विकास -** इस क्षेत्र में ज्यादा जोर देने की जरूरत है जिससे लोग कृषि पर ध्यान दे सकें। सिंचाई सुविधा होने पर वे सभी मौसम में कुछ न कुछ फसल mxk सकते हैं।
2. **लघु व कुटीर उद्योगों का विकास-** जिससे लोग घर में जो सामान बना सकते हैं उसका प्रयोग कर आत्मनिर्भर बन सकें।
3. **ग्रामीण क्षेत्रों में सहायक उद्योगों का विकास -** ग्रामीण क्षेत्र में मौसमी व छिपी बेरोजगारी पायी जाती है इसलिए कृषि के साथ-साथ मुर्गीपालन, पशुपालन, मत्स्य पालन जैसे कार्यों को बढ़ावा देना चाहिए। कृषि आधारित उद्योगों का विकास होना चाहिए।
4. **गाँवों के विकास को बढ़ावा देने की जरूरत-** गाँवों को शहर नहीं पर शहर जैसी सुविधा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रदान की जाए जिससे लोग वहाँ रहने के लिए उचित वातावरण पा सकें।
5. **सामाजिक वातावरण में परिवर्तन की आवश्यकता-** ग्रामीणों में यह भावना जागृत करने की आवश्यकता है कि घर बैठे रहने से अच्छा है कुछ न कुछ काम किया जाए जिससे अधिक आय की प्राप्ति हो सके।
6. **प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार-** किया जाना चाहिए जिससे लोग रोजगार में लग सके।
7. लोगों को रोजगार मूलक योजनाओं की जानकारी अधिक से अधिक दी जानी चाहिए। इसके लिए योजना प्रचार-प्रसार कर्मियों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
8. मजदूरी की विलंबता को कम करने की जरूरत है।
9. कृषि विकास कार्यो को बढ़ावा देने की जरूरत है जिससे लोग कृषि कार्य को अधिक करें और उत्पादन में वृद्धि लाए।

ग्रामीण गरीबी

भारत की ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार, भारत में 300 मिलियन से अधिक लोग गरीब है। हाल के अनुमानों (2011-12) के अनुसार, ग्रामीण इलाकों 216.5 मिलियन गरीब लोग है। अभी भी भारत का एक तिहाई हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करता है और ग्रामीण भारत का अधिकांश जीवन गरीबी में व्यतीत होता है। नई गरीबी रेखा के अनुसार ग्रामीण इलाकों के लिए ₹ 27 प्रतिदिन और शहरी क्षेत्रों के लिए ₹ 32 प्रतिदिन से कम आय वाले लोग गरीबी रेखा के अंतर्गत आते हैं। गरीबी निर्धारण के अन्तर्राष्ट्रीय मानक 1.90 डालर प्रतिदिन के आधार पर गरीबी का अनुमान लगभग 80 करोड़ बैठता है।

गरीबी के कारण-

भौगोलिक कारण- कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में भौगोलिक कारक ऐसी स्थिती पैदा करते है, जिससे गरीबी का जन्म होता है। बाढ़, सूखा, चक्रवात आदि जैसी प्राकृतिक आपदाओं ने भी उनकी फसल, मवेशियों और भूमि को क्ष तिग्रस्त किया है। ग्रामीण भारत के अधिकांश लोग कृषि पर निर्भर है, लेकिन ग्रामीण भारत के अधिकांश किसान अभी भी कृषि के प्राचीन तरीकों पर भरोसा करते हैं। जिसके कारण वार्षिक उत्पादन अक्सर बहुत कम होता है। इसके अलावा भारत का कृषि क्षेत्र अभी भी पर्याप्त रोजगार उपलब्ध कराने में सक्षम नहीं है।

खराब आपूर्ति श्रृंखला और कुप्रबंधन- के कारण किसानों को सबसे अधिक नुकसान उठाना पड़ता है। किसानों की कड़ी मेहनत का अधिकतम लाभ आपूर्ति श्रृंखला के शीर्ष पर रहने वाले लोग उठाते हैं। लेकिन ग्रामीण भारत और किसान कृषि में बढ़ते उत्पादन का लाभ नहीं उठा पाते।

1.6 गरीबी की परिभाषा: निरपेक्ष और सापेक्ष गरीबी

गरीबी को एक ऐसी स्थिति के रुप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें किसी व्यक्ति या किसी परिवार के पास जीवन के न्यूनतम बुनियादी आवश्यकताओं को वहन करने के लिए वित्तीय संसाधनों की कमी होती है। इन बुनियादी आवश्यकताओं में शामिल है, भोजन-, वस्त्र और घर।

गरीबी के प्रकार-

निरपेक्ष गरीबी- विश्व बैंक के अनुसार कोइ व्यक्ति निरपेक्ष रूप से तब गरीब कहा जायेगा, यदि वह एक दिन में 1.90 डॉलर (PPP, 2011 के मूल्य स्तर पर) से कम पर जीवन यापन करता हो। इसे भोजन, वस्त्र और आश्रय जैसी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक धन की मात्रा के संबंध में मापा जाता है।

सापेक्ष गरीबी-

सापेक्ष गरीबी वह होती है जिसमे किसी व्यक्ति के पास समाज के अन्य लोगों की भांति आनंदित जीवन शैली और उपभोग पैटर्न में भाग लेने के लिए आवश्यक संसाधनों की कमी होती। इसे समाज के अन्य सदस्यों की आर्थिक स्थिति के संबंध में मापा जाता है।

1.7 गरीबी के कारण-

A. आर्थिक-

- लाभप्रद रोजगार की कमी
- कृषि और उद्योगों में कम उत्पादकता
- कम मजदूरी

B. सामाजिक-

- जनसँख्या वृद्धि की उच्च दर
- साक्षरता और कुशल श्रम की कमी

C. प्रशासनिक-

- निर्धनता उन्मूलन हेतु संवृद्धि के लिए राज्य के नेतृत्व वाले दृष्टिकोण की सीमा ;k jkT; ds iz;klksa dh lhekA
- निर्धनता उन्मूलन योजनाओं के कार्यान्वयन में भ्रष्टाचार

D. ऐतिहासिक-

- शोषण औपिनेवेशिक शासन धन की निकासी का कारण बना
- जाति व्यवस्था और लैंगिग असमानता

E. विविध-

- गरीबी का दुश्चक्र
- बाढ़, भूकम्प आदि जैसी प्राकृतिक आपदा के कारण बार –बार धन की क्षति

1.8 गरीबी रेखा का निर्धारण: दादाभाई नौरोजी से लेकर रंगराजन समिति तक

भारत में निर्धनता रेखा : आकलन और समितियां-

गरीबी रेखा एक मौद्रिक सीमा है , जिसके नीचे स्थित किसी व्यक्ति को गरीबी में रहने वाला माना जाता है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) वह संस्था है , जो भारत में गरबी के आकलन के सम्बन्ध में आकड़े एकत्र करती है।

- **स्वतंत्रता के पूर्व निर्धनता रेखा का अनुमान** –

दादा भाई नौरोजी (1901) - भारत में सर्वप्रथम गरीबी रेखा का अनुमान दादाभाई नौरोजी द्वारा 1901 में अपनी पुस्तक पावर्टी एंड अन – ब्रिटिश रूल इन इंडिया में किया गया।

- 16-35 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष।
- यात्रा के दौरान प्रवासी कुली के लिए निर्वाह आहार की लागत के आधार पर।

राष्ट्रीय योजना समिति :

- इसे 1938 में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में गठित किया गया था। इस समिति द्वारा गरीबी रेखा का निर्धारण
- न्यूनतम जीवन स्तर के आधार पर 15-20 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति माह किया गया था।

बॉम्बे योजना (1944):

- 75 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष।
- राष्ट्रीय योजना समिति (NPC) की तुलना में अत्यंत कम।

- **स्वतंत्रता के बाद गरीबी रेखा अनुमान -**

वर्किंग ग्रुप या कार्य समूह (1962):

- योजना आयोग द्वारा गठित।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए क्रमशः 20 रुपये और 25 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति माह।
- व्यक्तियों की न्यूनतम आवश्यकता (भोजन और गैर-खाद्य) के आधार पर।

वी. एम. दांडेकर और एन. रथ द्वारा अध्ययन (1971):

- भारत में गरीबी का पहला व्यवस्थित vkdyuA
- ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 2250 कैलोरी प्राप्त करने हेतु किए गए पर्याप्त व्यय के आधार पर।
- ग्रामीण और शहरी परिवारों के लिए क्रमशः 15 रुपये और 22.5 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति माह (1960-61 के मूल्य पर)।

अलघ समिति (1979) :

- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में प्रतिदिन 2400 कैलोरी और 2100 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्राप्त करने हेतु खर्च के आधार पर।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए क्रमश 40.09 रुपये और 56.64 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति माह (1973-74 के मूल्य पर)।

लकड़ावाला विशेषज्ञ समूह (1993) :

1 इस समूह ने राष्ट्रीय स्तर पर अलध समिति द्वारा न्यूनतम पोषण संबंधी आवश्यकताओं के आधार पर अनुशंसित पृथक ग्रामीण और शहरी गरीबी रेखाओं को बनाए रखा।

2 अंतर्राज्यीय मूल्य अंतर को प्रतिबिंबित करने के लिए उन्हें राज्य विशिष्ट गरीबी रेखाओं में विभाजित किया गया।

3 शहरी क्षेत्रों में CPI-IW और ग्रामीण क्षेत्रों में CPI-AL का उपयोग करके उन्हें अपडेट करने का सुझाव दिया।

तेंदुलकर विशेषज्ञ समूह (2005) :

इसे 2005 में गठित किया गया था तथा इसने अपनी अंतिम रिपोर्ट 2009 में प्रस्तुत की। इसमें यह सिफारिश की गई कि-

- गरीबी रेखाएं कैलोरी मानदंडों पर नहीं बल्कि लक्षित पोषण परिणामों पर आधारित हों।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए दो अलग-अलग गरीबी रेखा बास्केट (PLB) की बजाय, एक समान अखिल भारतीय PLB का उपयोग किया जाना चाहिए।
- पहले के तरीकों में प्रयुक्त एक समान संदर्भ अवधि (URP) की बजाय मिश्रित संदर्भ अवधि (MRP) आधारित अनुमान।
- गरीबी का आकलन करते समय स्वास्थ्य और शिक्षा पर निजी खर्च तथा आवश्यक गैर-खाद्य पदार्थ, जैसे कपड़े, मकान का किराया आदि को शामिल करना।
- वर्ष 2011-12 के लिए ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों हेतु क्रमशः 816 रुपये और 1,000 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह।

रंगराजन समिति (2012) :

इसे 2012 में गठित किया गया था तथा इसने अपनी अंतिम रिपोर्ट 2014 में प्रस्तुत की। इसके अंतर्गत निम्नलिखित सिफारिश की गई -

- अखिल भारतीय ग्रामीण और शहरी PLBs को पृथक रखने की प्रथा को वापस लाया गया।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग उपभोग बास्केट की सिफारिश की गई। इसमें अनुशंसित कैलोरी, प्रोटीन और वसा का ग्रहण सुनिश्चित करने वाले खाद्य पदार्थ शामिल हैं। इसके साथ ही. इसमें कपड़ा, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और परिवहन जैसे गैर-खाद्य पदार्थ भी शामिल हैं।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए क्रमशः 972 रुपये और 1,407 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति माह।
- सरकार ने रिपोर्ट पर कोई निर्णय नहीं लिया।

तालिका -1

	रंगराजन समिति	**तेंदुलकर समिति**
ग्रामीण गरीबों की संख्या	26.05 करोड	21.65 करोड
शहरी गरीबों की संख्या	10.25 करोड़	5.28 करोड
कुल	36.3 करोड	26.9 करोड
वर्ष 2011-12 में गरीबों का प्रतिशत	29.5%	21.9%

1.9 गरीबी कम करने के लिए सरकार द्वारा किये गए उपाय -

विकासोन्मुखी उपाय -

- 1950 और 1960 के दशक की शुरुआत की योजनाओं में विकास पर ध्यान केंद्रित किया गया था।

- यह उम्मीद व्यक्त की गयी थी, कि सकल घरेलू उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय में तेजी से वृद्धि समाज के सभी वर्गों में फैल जाएगी (ट्रिकल डाउन थ्योरी)। परन्तु इससे कोइ वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हुए।

संपत्ति निर्माण और कार्य सृजन सम्बन्धी उपाय -

- इसे तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66) से शुरू किया गया और तब से इसे उत्तरोत्तर विस्तारित किया गया है।
- बेरोजगारों के लिए स्व-रोजगार के अवसर उत्पन्न करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से शुरू किए गए कार्यक्रम, जैसे कि; ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम (REGP), प्रधान मंत्री रोजगार योजना (PMRY), स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना आदि।
- दीनदयाल अंत्योदय योजना (DAY-NRLM/NULM) - 2013
- MGNREGA – 2006

न्यूनतम मूलभूत सुविधा सम्बन्धी प्रावधान -

- इसे पांचवी पंचवर्षीय योजना से देखा जा सकता है।
- इसके तहत, रियायती दरों पर खाद्यान्न, शिक्षा, स्वास्थ्य, जल आपूर्ति और स्वच्छता प्रदान करने का प्रावधान किया गया।
- गरीबों के भोजन और पोषण की स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से प्रमुख कार्यक्रम; सार्वजनिक वितरण प्रणाली, समेकित बाल विकास योजना, e/;k°u भोजन योजना आदि।
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA)
- प्रधान मंत्री जन-धन योजना।

नोट : डॉ. अरविंद पनगढ़िया (तत्कालीन उपाध्यक्ष, नीति) की अध्यक्षता में 'भारत में गरीबी उन्मूलन पर एक कार्यबल' का गठन किया गया था। इसने वर्ष 2016 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें रोजगार गहन सतत् और तीव्र विकास के माध्यम से यथाशीघ्र गरीबी में कमी लाने तथा गरीबी रोधी कार्यक्रमों के प्रभावी कार्यान्वयन पर सिफारिशें की गई थी।

1.10 निष्कर्ष :

गरीबी देश के लिये बहुत बड़ी समस्या है। इसे खत्म करने के लिये युद्ध स्तर पर प्रयास किया जाना चाहिये। हमारी सरकार देश के विकास के लिये कदम उठा रही है। गरीबी उन्मूलन अर्थव्यवस्था और समाज की एक सतत् और समावेशी वृद्धि सुनिश्चित करेगा। हम सभी को देश से गरीबी दूर करने हेतु किये जा रहे प्रयासों में हरसंभव मदद के लिये तैयार रहना चाहिये।

1.11 बोध आधारित प्रश्न -

1. ग्रामीण बेरोजगारी किसे कहते हैं?
2. मौसमी बेरोजगारी का क्या अर्थ है?
3. गरीबी की निरपेक्ष परिभाषा क्या है?
4. गरीबी के प्रमुख सामाजिक कारण क्या हैं?
5. मनरेगा योजना का उद्देश्य क्या है?
6. दादाभाई नौरोजी ने गरीबी रेखा का अनुमान किस आधार पर लगाया था?
7. रंगराजन समिति ने गरीबी रेखा के लिए क्या सिफारिश की थी?

8. गरीबी उन्मूलन के लिए सरकार द्वारा कौन-सी योजनाएँ चलाई गई हैं?

1.11 संदर्भ (References): / उपयोगी पुस्तकें

a. ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार – https://rural.nic.in/

b. Planning Commission Reports on IRDP, 1981-2001

c. NITI Aayog Evaluation Studies on Rural Employment Schemes, 2018

d. Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act Annual Reports, 2022-23

e. Ministry of Finance, Economic Survey, 2023-24

f. World Bank Study on India's Rural Employment Guarantee, 2017

g. Dr. D. Bandyopadhyay, "Integrated Rural Development in India: An Overview", 2000

h. Verma, S. C., 1980, Direct Attack on Rural Poverty, Ministry of Rural Development, Delhi,.

i. Fifty Years of Rural Development in India, 1998, NIRD, Hyderabad,

j. . Bandyopadhyay, D., 1986, A Study on Poverty Alleviation in Rural India Through Special Employment Generation Programmes, Asia Employment Programme, ILO ARTEP, New Delhi.

k. Chakravarthy, Sukhamoy, 1987, Development Planning: The Indian Experience, Oxford University Press, New Delhi.

l. Draft Sixth & Seventh Five Year Plans, 1978, Planning Commission, Government of India, New Delhi.

m. NREP/RLEGP: Manual, 1987, Ministry of Rural Development, Government of India, New Delhi.

n. Rural Statistics ,1990/1995/1998/2001, NIRD, Hyderabad.

o. Jain, L.C. 1989. "Integration Eludes IRDP" in Kurukshetra, Vol. XXXVIII, No. 2, November.

p. Subbarao, K., 1985, "Regional Variations in Impact of Anti Poverty Programmes A Review of Evidence" in Economic and Political Weekly, October 26, Vol. XXI

इकाई-2 डॉ. कलाम का पूरा (PURA) मॉडल एवं उनका चिंतन

इकाई की रुपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 PURA मॉडल की परिभाषा

2.3 पुरा मॉडल का दष्टिकोण

2.4 PURA के चार स्तंभ:

- भौतिक संपर्क
- डिजिटल संपर्क
- ज्ञान आधारित संपर्क
- आर्थिक संपर्क

2.5 प्रमुख घटक:

- आधारभूत संरचना
- रोजगार सृजन
- सामुदायिक भागीदारी
- निजी-सार्वजनिक भागीदारी

2.6 मॉडल के लाभ और उदाहरण (चिपलून, पांडिचेरी, गढ़पूरा)

2.7 चुनौतियाँ और समाधान

2.8 डॉ. कलाम का चिंतन:

- शिक्षा और ज्ञान
- स्वप्न और लक्ष्य
- सागी और अनुशासन
- विज्ञान और प्रौद्योगिकी
- युवाओं के प्रति दृष्टिकोण
- नेतृत्व के गुण
- धर्म और मानवता
- असफलता से सीखने की प्रेरणा

2.9 निष्कर्ष

2.10 बोध आधारित प्रश्न

2.11 सन्दर्भ सूची / उपयोगी पुस्तकें

2.1 उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन से विद्यार्थी:

1 PURA मॉडल की अवधारणा, उद्देश्य और संरचना को समझ सकेंगे।

2 ग्रामीण विकास में शहरी सुविधाओं की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे।

3 डॉ. कलाम के विचारों—शिक्षा, नेतृत्व, विज्ञान, और राष्ट्र निर्माण—की गहराई को आत्मसात कर सकेंगे।

4 समावेशी विकास के लिए सार्वजनिक-निजी भागीदारी की आवश्यकता को समझ सकेंगे।

5 प्रेरणादायक नेतृत्व और आत्मनिर्भरता के सिद्धांतों को अपने जीवन में लागू करने की दिशा में सोच सकेंगे।

2.2 PURA मॉडल की परिभाषा

डॉ ए. पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा प्रस्तुत PURA (Providing Urban Amenites In Rural Areas) या "ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं की उपलब्धता" एक अभिनव एवं दूरदर्शी मॉडल है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रमीण भारत के विकास को शहरी सुविधाओं के माध्यम से समृद्ध करना है। डॉ कलाम ने इसे भारत के ग्रामीण विकास के लिए व्यापक योजना के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें आर्थिक सामाजिक, और तकनीकी प्रगति को साथ लाने का प्रयास किया गया है। डॉ. कलाम का विकास मॉडल समावेशी, तकनीकी समर्थ, नैतिकता आधारित, और ग्रामीण सशक्तिकरण को केंद्र में रखकर बनाया गया था। उनके अनुसार, भारत को विकसित बनाने के लिए केवल GDP वृद्धि पर्याप्त नहीं है, बल्कि समाज के अंतिम व्यक्ति तक शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीक और आत्मबल पहुँचाना होगा।

2.3 पुरा मॉडल का दष्टिकोण

भारत की जनसंख्या का 65% हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। हालांकि इन क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं की कमी, गरीबी और बेरोजगारी जैसी समस्याएँ आम है। इस संदर्भ में डॉ कलाम का मानना था कि यदि ग्रामीण क्षेत्रों को शहरी सुविधाओं के साथ जोड़ा जाए तो वहाँ रोजगार के अवसर बढ़ेगे। जिससे गाँवो से शहरों की ओर पलायन कम होगा ।

2.4 PURA मॉडल 4 प्रमुख स्तंभो पर आधारित है।

1. भौतिक संपर्क

- ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कें, परिवहन, संचार के माध्यम से बेहतर संपर्क सुनिश्चित करना।
- 15-25 गाँवों को जोड़कर इसके इर्द-गिर्द रिंग रोड का निर्माण किया जाना चाहिए।
- अच्छी सड़कों और परिवहन की सहायता से गाँवों से शहरों की दूरी कम होगी।

2. डिजिटल संपर्क

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के माध्यम से गाँवो में इंटरनेट, दूरसंचार और शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध कराना। उदाहरण-गाँवो में ई-लर्निंग, ई-गवर्नेस और ऑनलाइन व्यापार की सुविधाएँ।

3. ज्ञान आधारित संपर्क

गामीण युवाओं के लिए शिक्षा, प्रशिक्षण एवं कौशल विकास कार्यक्रमों का संचालन करना। उदाहरण-स्थानीय युवाओं को कृषि, उद्योग, और उद्यमशीलना में' कुशल बनाना ।

4. आर्थिक संपर्क

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, लघु उद्योगों,और कुटीर उद्योगों को प्रोत्सादन देकर उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना। उदाहरण- स्थानीय उत्पादों को बाजार तक पहुंचाने की व्यवस्था, बैंकिंग एवं वित्तीय सुविधाएं उपलब्ध कराना।

2.5 पूरा माडल के प्रमुख घटक

डॉ कलाम ने पूरा मॉडल को लागू करने के लिए चार प्रमुख घटक बताए थे :

A. आधारभूत संरचना

गाँवों में पक्की सड़के, बिजली, जलापूर्ति और स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना। आधारभूत संस्चना के बिना विकास संभव नहीं है।

B. रोजगार सृजन

ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय संसाधनो का उपयोग कर रोजगार सृजन करना। उदाहरण - कृषि आधारित उद्योगों , लघु एवं मध्यम उद्योगों को बढ़ावा देना।

C. सामुदायिक भागीदारी

ग्रामीण समुदायों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना। उदाहरण - गाँवो के लोगों को योजनाओं के निर्माण और कार्यान्वयन में शामिल करना।

D. निजी-सार्वजनिक भागीदारी

विकास कार्यों के लिए निजी कंपनियों एवं सरकारी एजेंसियों का संयुक्त प्रयास। उदाहरण - बुनियादी ढांचे का विकास और विभिन्न सेवाओं का प्रबंधन।

डॉ. कलाम के विकास मॉडल की मूल अवधारणा

डॉ. कलाम का विकास मॉडल समावेशी, तकनीकी समर्थ, नैतिकता आधारित, और ग्रामीण सशक्तिकरण को केंद्र में रखकर बनाया गया था। उनके अनुसार, भारत को विकसित बनाने के लिए केवल GDP वृद्धि पर्याप्त नहीं है, बल्कि समाज के अंतिम व्यक्ति तक शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीक और आत्मबल पहुँचाना होगा।

मूल्यांकन

पुरा मॉडल के फायदे-

1. **गामीण - शहरी अंतराल को कम करना-** ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधा की उपलब्धता से गाँवो और शहरो के बीच की दूरी कम होगी, जिससे गाँव के लोग शहरो में पलायन करने की बजाय गाँव में ही रहकर रोजगार के अवसर तलाश कर सकते हैं।
2. **स्थानीय उत्पादो का बाजार तक पहुँच-** सड़क, परिवहन और इंटरनेट जैसी सुविधाओं से ग्रामीण उत्पादकों को उनके उत्पादो को सीधे बाजार तक पहुँचाने में मदद मिलेगी, जिससे उनकी आय में वृद्धि होगी।
3. **कौशल विकास व रोजगार सृजन -** युवाओं को प्रशिक्षित कर उन्हें स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर रोजगार के लिए तैयार किया जाएगा, जिससे बेरोजगारी कम होगी।
4. **तकनीकी और नवाचार का उपयोग-** ग्रामीण क्षेत्रों में ई-गवर्नेस, ऑनलाइन शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं को बढ़ावा मिलेगा।
5. **समग्र विकास-** यह मॉडल केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं है वल्कि इसमें सामाजिक, शैक्षिक और तकनीकी विकास भी शामिल है।

2.6 पूरा माडल के उदाहरण

भारत के कई स्थानों पर PURA मॉडल को लागू किया गया है।

1. **चिपलून पूरा (महाराष्ट्र)**

यहाँ स्थानीय उद्यमशीलता को प्रोत्साहन दिया गया और गामीण क्षेत्रों मे सड़क बिजली और जल जैसी बुनियादी सुविधाएँ प्रदान की गई।

2. पांडिचेरी पूरा

यहाँ ज्ञान संपर्क एवं आर्थिक संपर्क पर विशेष ध्यान दिया गया, जिससे स्थानीय युवाओं को कौशल विकास और रोजगार के बेहतर अवसर मिले।

3. गढ़पूरा, म०प्र०

यहाँ पूरा के माध्यम से शहरी सुविधाओं का विस्तार किया गया जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य, शिक्षा एवं रोजगार के क्षेत्रों में व्यापक सुधार हुआ।

2.7 चुनौतियाँ और समाधान

1. वित्तीय कठिनाई - गामीण क्षेत्रों में विकास कार्यों के लिए पर्याप्त धन की कमी अक्सर बड़ी चुनौती साबित होती है।

समाधान- सरकार और निजी कंपनियों के बीच सार्वजनिक निजी साझेदारी (PPP) को बढ़ावा देकर वित्तीय संसाधन जुटाए जा सकते हैं।

2. **सामाजिक जागरूकता की कमी-** कई ग्रामीण क्षेत्रो में जागरूकता की कमी है, जिसके कारण लोग नई तकनीको और सरकारी योजनाओं का लाभ नहीं उठा पाते।

   समाधान- शिक्षा एवं **प्रचार**-प्रसार के माध्यम से लोगो को जागरुक किया जा सकता है I

3. **सरचनात्मक विकास में देरी-** अक्सर बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं में देरी होती है, जिससे विकास की गति - धीमी पड़ जाती है।

   समाधान- समयबद्ध **योजनाएँ** और प्रसाशनिक सुधार से परियोजनाओं को समय पर पूरा किया जा सकता है।

4. **तकनीकी साक्षरता की कमी-** ग्रामीण इलाकों में लोगों को तकनीकी साक्षरता की कमी के कारण ई-गवर्नेस, ई-लर्निंग और अन्य तकनीकी लाभों का पूरा फायदा नही मिल पाता।

   समाधान- ग्रामीण युवाओं और किसानो को तकनीकी प्रशिक्षण देना आवश्यक है।

निष्कर्ष-

PURA मॉडल ग्रामीण विकास का एक महत्वपूर्ण और व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। जिसमें गाँवो को शहरी सुविधाओं से जोड़कर आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। इस मॉडल का सफल क्रियान्वयन न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करेगा, बल्कि शहरी क्षेत्रों में बढते ncko को भी कम करेगा। ग्रामीण भारत का समग्र विकास तभी संभव है जब भौतिक, डिजिटल, ज्ञान और आर्थिक संपर्क को एक साथ लाया जाए। डॉ कलाम का यह मॉडल न केवल आज के भारत के लिए प्रासंगिक है बल्कि भविष्य के लिए एक मजबूत नींव रखता है, जिससे " समृद्ध और आत्मनिर्भर ग्रामीण भारत " का सपना साकार हो सके।

2.8 कलाम जी का चितंन

शिक्षा और ज्ञान : डॉ कलाम का मानना था कि शिक्षा ही जीवन में सफलता का मूल आधार है। शिक्षा केवल डिग्रियों तक सीमित नहीं होनी चाहिए बल्कि यह एक व्यक्ति के चरित्र निर्माण, नैतिकता और समाज में योगदान के प्रति जागरूकता को बढ़ाती है। उनका कहना था कि छात्रों को सवाल पूछने और नए विचारों को विकसित करने के लिए प्रेरित किया जाना जाहिए। **उदा० -** उनके जीवन की शुरुआत एक सामान्य परिवार से हुई थी, लेकिन शिक्षा और जिज्ञासा की वजह से वे भारत के महान वैज्ञानिक और राष्ट्रपति बने।

स्वप्न और लक्ष्य : कलाम हमेशा स्वप्न देखने और उन्हे साकार करने के महत्व पर जोर देते थे। उनके अनुसार, "सपने वो नहीं होते जो सोते वक्त आते हैं, सपने वो होते है जो आपको सोने न दें"। वे युवाओं को बड़े सपने देखने और उन्हें पूरा करने के लिए अथक परिश्रम करने के लिए प्रेरित करते थे। **उदा० -** उनका खुद का जीवन एक सपने को पूरा करने का उदाहरण है- एक वैज्ञानिक बनने का सपना जिसने उन्हे "मिसाइल मैन" बना दिया।

सादगी और अनुशासन : डॉ कलाम का जीवन सादगी और अनुशासन का प्रतीक था। राष्ट्रपति बनने के बाद भी उनका जीवन सरलता से भरा हुआ था। उनका मानना था कि सच्ची महानता बाहरी दिखावे में नहीं बल्कि आंतरिक मूल्य और कार्यों में होती है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रति दृष्टिकोण : डॉ कलाम विज्ञान और प्रोद्यौगिकी को देश की प्रगति के लिए एक महत्वपूर्ण औजार मानते थे। उन्होंने भारत के मिसाइल कार्यक्रम को बढ़ावा दिया और भारत को परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे विज्ञान के उपयोग को केवल सैन्य उदेश्यों तक सीमित नहीं रखना चाहते थे, बल्कि समाज के विकास के लिए भी इसका उपयोग करना चाहते थे।

युवाओं के प्रति दष्टिकोण : कलाम को भारत के युवाओं पर बहुत विश्वास था। वे कहते थे कि यदि भारत को महान बनाना है, तो उसमे युवाओं को दिशा देनी होगी। उनका विचार था कि युवा वर्ग में अपार संभावनाएँ है और उन्हें सही दिशा देने के लिए प्रेरित करना आवश्यक है।

राष्ट्र निर्माण और आत्मनिर्भरता : डॉ कलाम ने हमेशा आत्मनिर्भर भारत की बात की। उनके अनुसार, यदि भारत को एक मजबूत राष्ट्र बनना है, तो हमें विज्ञान, प्रोद्यौगिकी , शिक्षा , और आर्थिक क्षेत्रों में आत्मनिर्भर बनना होगा। वे भारत को एक विकसित राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे। **उदा०** - उन्होने "इंडिया 2020" विजन की परिकल्पना की, जिसमें उन्होने एक समृद्ध और आत्मनिर्भर भारत की तस्वीर प्रस्तुत की थी।

नेतृत्व के गुण : डॉ कलाम ने नेतृत्व के लिए तीन महत्वपूर्ण गुण बताए: विजन, जूनून, और एक्सेस। वे कहते थे कि एक सच्चा नेता वह होता है जो दूसरों को प्रेरित करे और अपने काम के प्रति समर्पित रहे।

उन्होने वैज्ञानिक नेतृत्व में भी यही सिद्धांत अपनाया और अपने सहयोगियों को हमेशा प्रेरित किया।

धर्म और मानवता के प्रति दृष्टिकोण : डॉ कलाम ने धर्म को मानवता की सेवा का एक माध्यम माना। उनका कहना था कि सभी धर्मों का मूल उद्देश्य मानवता की सेवा करना है। वे हमेशा एकता और सामंजस्य की बात करते थे और उनका विश्वास था कि विभिन्न धर्मों के लोग एक-दूसरेके साथ रह सकते है और समाज में शांति और प्रेम फैला सकते हैं।

सपनों को साकार करने के सिद्धांत : उनके जीवन में सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत यह था कि सपने देखो, लेकिन उन्हें साकार करने के लिए मेहनत करो। उनका मानना था कि असफलता केवल एक सीढ़ी है, सफलता की दिशा में। उदाहरण- उनके जीवन की कई असफलताएँ थीं, जैसे SLV-3 का असफल परीक्षण, लेकिन उन्होने कभी हार नहीं मानी और अंत में सफलता प्राप्त की।

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के विचार भारतीय समाज के हर व्यक्ति के लिए प्रेरणा है। शिक्षा , विज्ञान, नेतृत्व ,और राष्ट्र निर्माण के उनके सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है I वे न केवल एक महान वैज्ञानिक थे, बल्कि एक महान विचारक और प्रेरणादायक नेता भी थे। उनके विचार हमें यह सिखाते हैं कि हर व्यक्ति अपने जीवन में बड़े सपने देख सकता है और उन्हें साकार करने के लिए कड़ी मेहनत कर सकता है |

2.9 निष्कर्ष

डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम का विकास मॉडल एक समग्र भारतीय मॉडल है – जिसमें विज्ञान, नैतिकता, आत्मनिर्भरता, और युवाशक्ति का संयोजन है। उन्होंने भारत को केवल आर्थिक दृष्टि से नहीं, बल्कि नैतिक, सांस्कृतिक, और आध्यात्मिक रूप से भी विकसित राष्ट्र के रूप में देखा। उनके विचार आज भी भारत की नीतियों और योजनाओं का आधार बनते हैं।

2.10 बोध आधारित प्रश्न -

1. PURA मॉडल का मुख्य उद्देश्य क्या है?
2. PURA मॉडल के चार प्रमुख स्तंभ कौन-कौन से हैं?

3. डॉ. कलाम शिक्षा को किस रूप में देखते थे?
4. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के लिए PURA मॉडल क्या उपाय सुझाता है?
5. डॉ. कलाम के अनुसार सच्चे सपने क्या होते हैं?
6. PURA मॉडल में निजी-सार्वजनिक भागीदारी का क्या महत्व है?
7. डॉ. कलाम का विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रति दृष्टिकोण क्या था?
8. PURA मॉडल के सफल उदाहरण कौन-कौन से हैं?

2.11 संदर्भ ग्रंथ / स्रोत सूची

1. Kalam, A.P.J. Abdul & Y.S. Rajan – "India 2020: A Vision for the New Millennium"
2. Kalam, A.P.J. Abdul – "Wings of Fire"
3. Kalam, A.P.J. Abdul – "Ignited Minds"
4. Planning Commission Reports (2000–2012)
5. Ministry of Rural Development – PURA Documentation
6. National Education Policy 2020
7. Ministry of New and Renewable Energy – Energy Independence Reports
8. NITI Aayog – Digital India, Start-up India Data
9. World Bank & UNESCO – Education Statistics (India)
10. S. Narayan – The Kalam Effect: My Years with the President

इकाई–3 खाद्य सुरक्षा

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 खाद्य सुरक्षा की परिभाषा एवं अवधारणा
3.4 भारत में खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता
3.5 सार्वजनिक वितरण प्रणाली
3.6 संशोधित वितरण प्रणाली
3.7 लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली
3.8 सार्वजनिक वितरण प्रणाली के दोष
3.9 खाद्य सुरक्षा से संबंधित प्रमुख नीतियाँ एवं कानून, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013
3.10 खाद्य सुरक्षा की चुनौतियाँ
3.11 खाद्य सुरक्षा में सुधार हेतु उपाय
3.12 अंतरराष्ट्रीय संगठनों की भूमिका
3.13 सारांश
3.14 बोध प्रश्न
3.15 अभ्यासार्थ प्र"न
3.16 उपयोगी पुस्तके

3.1 उद्देश्य

- प्रस्तुत ईकाई में हम खाद्य सुरक्षा के अर्थ के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- हम खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता के बारे में जानेगें।
- सार्वजानिक वितरण प्रणाली के बारे में जानेगें।
- हम संशोधित वितरण प्रणाली के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।
- हम लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।
- हम सार्वजनिक वितरण प्रणाली के दोष के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।
- विद्यार्थी राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।
- विद्यार्थी एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।
- हम मध्याह्न भोजन योजना के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।

- हम भारतीय खाद्य निगम के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।
- हम सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के उपायों की जानकारी प्राप्त करेंगें।

3.2 प्रस्तावना

स्वतंत्रता के पश्चात के वर्षों में कृषि खाद्य पदार्थों की कमी के परिणाम स्वरूप भारत सरकार के नीति निर्माताओं द्वारा खाद्य सुरक्षा नीति लाई गई जिसका उद्देश्य खाद्यान्न क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना था। नीति निर्माताओं ने यह अनुभव किया कि खाद्य अतिरेक वाले देश खाद्य पदार्थो के निर्यातों का प्रयोग एक ऐसे हथियार के रूप में करते हैं जिसके द्वारा अन्य देशों को अपने आगे झुकने को मजबूर कर देते हैं। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्र को संबोधित करते हुए साफ शब्दों में कहा "हमने विदेशों से सहायता प्राप्त की है और हम आवश्यकता पड़ने पर ऐसा करते रहेंगे परंतु मेरे मन में अब यह बात दृढ़ रूप धारण कर चुकी है कि अपनी मूल जरूरत के लिए विदेशों पर निर्भर रहना कितना खतरनाक है। जब ही हम खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर हो जाएंगे तभी हमारे लिए प्रगति करना और विकास करना संभव रहेगा। अन्यथा परिस्थितियों का बदस्तूर प्रभाव बना रहेगा, इससे संकट और दुख ही उत्पन्न होगा और कई बार तो लज्जा और अपमान भी सहन करना होगा''। जब वर्ष 1965 और 1966 में भारत में भयंकर सूखा पड़ा तब अमेरिकी राष्ट्रपति लिंडन जॉनसन ने भारत को सबक सिखाने के लिए पी.एल.480 कार्यक्रम के अधीन खाद्य सहायता को मासिक आधार पर सीमित कर दिया उनका उद्देश्य भारत को इस बात के लिए मजबूर करना था कि वह पाकिस्तान के साथ युद्ध रोक दे और वियतनाम पर अमेरिकी हमले की निंदा ना करें जिसके लिए भारत ने साफ इनकार कर दिया ।

भारत सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कृषि के विकास पर जोर देते हुए बीज, पानी, उर्वरक, टेक्नोलॉजी, अर्थात हरित क्रांति को अपनाया गया जिससे कि भारत की खाद्यान्न आयात पर निर्भरता कम हो गई। अनाज की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता में वृद्धि हुई। भारत ने वर्ष 1976 में खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली थी। इसके पश्चात भारत में खाद्यान्न का आयात नाम मात्र का रह गया। गिल्बर्ट ईटइन ने खाद्य क्षेत्र में भारत की आत्मनिर्भरता के प्रयासों की सराहना करते हुए यह कहा कि "सभी प्रकार के अंधकारमय एवं बेबुनियादी भविष्यवाणियों के बावजूद जो कि वर्ष 1960–70 के दशक में भारत में खाद्यान्न के भावी महासंकट व्यक्त होने की संभावना पर बल देती थी, आज देश को किसी वास्तविक अकाल का खतरा नजर नहीं आता है"। नवीं पंचवर्षीय योजना में यह विशेष रूप से उल्लेखित किया गया कि "देश का सबसे पहला प्रयास खाद्य सुरक्षा प्रणाली का निर्माण करना था ताकि अकाल का खतरा देश से एकदम समाप्त किया जा सके अतः इसके सफलता के प्रमाण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं कि पिछले 5 दशकों से किसी प्रकार का कोई भी अकाल या भुखमरी भारत में अभी तक देखी नहीं गई"।

3.3 खाद्य सुरक्षा की परिभाषा एवं अवधारणा

खाद्य सुरक्षा का अर्थ सभी लोगों को हर समय पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न अर्थात भोजन उपलब्ध कराना, ताकि वे सक्रिय व स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकें। विश्व विकास रिपोर्ट के अनुसार "सभी व्यक्तियों के लिए सभी समय पर एक सक्रिय स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त भोजन की उपलब्धि के रूप में की गई है"। खाद्य एवं कृषि संस्था ने खाद्य सुरक्षा की परिभाषा स्पष्ट करते हुए "सभी व्यक्तियों को सभी समय पर उनके लिए आवश्यक बुनियादी भोजन के लिए भौतिक एवं आर्थिक दोनों रूप में उपलब्धि के आश्वासन के रूप में की है"। पी.वी. श्रीनिवासन ने खाद्य सुरक्षा को स्पष्ट करते हुए कहा कि "इसके लिए यह आवश्यक है कि न केवल समग्र स्तर पर खाद्यान्नों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध हो बल्कि व्यक्तियों, परिवारों के पास उपयुक्त क्रय शक्ति भी हो ताकि वह आवश्यकता अनुसार खाद्यान्नों की खरीद कर सके"। जहां तक पर्याप्त मात्रा का संबंध है इसके दो स्वरूप मात्रात्मक एवं गुणात्मक हैं।

- **मात्रात्मक स्वरूप**– खाद्य सुरक्षा के मात्रात्मक स्वरूप से आशय किसी देश में खाद्यान्नों की उपलब्धि इतनी होगी कि वह देश में उत्पन्न होने वाली समस्त माँगों की पूर्ति आसानी से कर सके अर्थात समस्त जनसंख्या के लिए खाद्य पदार्थों की भौतिक उपलब्धि हो सके साथ ही साथ खाद्य पदार्थ को प्राप्त करने के

लिए समस्त जनसंख्या के पास पर्याप्त क्रय शक्ति हो। अतः मात्रात्मक स्वरूप समग्र जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों की मात्रा उपलब्ध कराने से है जो की एक संकुचित दृष्टिकोण है।

- **गुणात्मक स्वरूप का तात्पर्य**– खाद्य सुरक्षा के गुणात्मक पहलू से है। अर्थात किसी देश की जनसंख्या को खाद्यान्नों की पर्याप्त मात्रा की उपलब्धता के साथ–साथ जनसंख्या की पोषण आवश्यकताओं को भी पूरा करने से है। अर्थात सभी के लिए खाद्यान्नों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध हो साथ ही साथ अनाज, दाल, दूध, फल, सब्जियां, अंडे, मछली और मांस, हरी सब्जियां आदि पौष्टिक आहार की उपलब्धता संपूर्ण जनसंख्या के लिए सुनिश्चित की जा सके जो कि वर्तमान समय में किसी भी देश के लिए चुनौती पूर्ण है। अतः इस समस्या से निपटने के लिए भारत सरकार द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली, समेकित बाल विकास सेवाएं तथा दोपहर भोजन कार्यक्रम जैसे विभिन्न कार्यक्रम अपनाए गए हैं।

3.4 भारत में खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता

भारत की जनसंख्या वृद्धि और खाद्य संसाधनों की बढ़ती माँग खाद्य संसाधनों पर भारी दबाव डालती है, जिससे खाद्यान्नों की कमी, मूल्य वृद्धि और यहाँ तक कि भुखमरी भी बढ़ रही है। इस बढ़ती आबादी की पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त खाद्य उत्पादन, वितरण और भंडारण आवश्यक है। भारत में गरीबी, बेरोजगारी और कुपोषण भी गंभीर समस्याएँ हैं, जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे रहता है। गरीबी लोगों की पर्याप्त और पौष्टिक भोजन खरीदने की क्षमता को सीमित करती है, जिससे भुखमरी और कुपोषण बढ़ता है। बेरोजगारी, घरेलू आय और खाद्य सामर्थ्य को कम करके इस स्थिति को और बदतर बना देती है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (एनएफएसए), 2013 जैसी सरकारी योजनाओं के माध्यम से कमजोर समूहों को सस्ता या मुफ्त खाद्यान्न उपलब्ध कराकर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने से इस चक्र को तोड़ने में मदद मिलती है। भारत की कृषि मानसून पर बहुत अधिक निर्भर है, और बाढ़, चक्रवात और सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाएँ फसलों को नष्ट कर सकती हैं और खाद्य आपूर्ति को बाधित कर सकती हैं। जलवायु परिवर्तन, अप्रत्याशित वर्षा पैटर्न, बढ़ते तापमान और फसलों पर कीटों के बढ़ते हमलों के कारण जोखिम को और बढ़ा देता है। इन संकटों के दौरान लोगों की सुरक्षा के लिए बफर स्टॉक रखरखाव, कुशल आपूर्ति श्रृंखला और त्वरित राहत वितरण सहित एक मजबूत खाद्य सुरक्षा प्रणाली अत्यंत महत्वपूर्ण है।

- **तीव्र जनसंख्या वृद्धि**

भारत में लगातार तीव्र जनसंख्या वृद्धि हो रही हैं जिससे समस्त जनसख्या के लिए खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराना चुनौती पूर्ण है। अतः भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उत्पादन में भी तीव्र वृद्धि करने की आवश्यकता है जिससे कि सभी को पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थ उपलब्ध हो सके।

- **कुपोषण**

भारत वर्तमान में कुपोषण अर्थात भोजन में न्यूनतम ऊर्जा की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त कैलोरी के अभाव की समस्या से जूझ रहा है। जिसका पता हमें ग्लोबल हंगर इंडेक्स रिपोर्ट 2022 (121 देशो में भारत का 107 वां स्थान) से यह स्पष्ट होता है कि भारत से भुखमरी का नामोनिशान मिटाने के लिए अभी लंबा सफर तय करना होगा। जिसके लिए भारत सरकार 2030 के सतत विकास लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए पूरी दृढ़ता से वचनबद्ध है। भारत में इस समय कुपोषण की जो स्थिति है उससे नीतिगत पहल के प्रति उच्च स्तर की राष्ट्रीय वचनबद्धताओं का औचित्य साबित होता है। ऐसी पहल से देश में तमाम तरह के कुपोषण से निपटने के लिए प्रमाण और जानकारी पर आधारित होनी चाहिए। आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन के अध्ययन के अनुसार वर्ष 2050 तक विश्व की आधी जनसंख्या को पीने योग्य स्वच्छ पानी की समस्या का सामना करना पड़ेगा पानी की कमी के परिणाम स्वरुप कृषि उत्पादन भी अत्यधिक प्रभावित होगा एवं खाद्य सुरक्षा का मुद्दा भी एक समस्या बनकर उभर सकता है।

- **कृषि योग्य भूमि के आकार में कमी**

भूमि सीमित संसाधनों में से एक है जिसमें कृषि योग्य भूमि (वर्तमान समय में शहरीकरण तथा और अवसंरचनात्मक विकास के चलते) के आकार में लगातार कमी होती जा रही है। जिससे कि कृषि पर खाद्यान्नों के

लिए निर्भरता बढ़ती जा रही है। जनसंख्या के तीव्र वृद्धि के दबाव के कारण खाद्यान्नों की मांग भी लगातार बढ़ रही है जबकि आपूर्ति, मांग की तुलना में कम हो रही है तथा खाद्यान्नों की उत्पादकता में भी पर्याप्त मात्रा में वृद्धि न हो पाने के कारण खाद्यान्नों की कीमतों में लगातार वृद्धि हो रही है। इससे कि भारत में गरीबों के लिए वर्ष भर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती बनती जा रही है।

- **जलवायु परिवर्तन**

वर्तमान समय में खाद्यान्न के लिए जलवायु परिवर्तन एक बड़ी चुनौती है जिसके कारण बढ़ती हुई प्राकृतिक आपदाएं बाढ़, सूखा, अकाल, सुनामी, भू–स्खलन आदि खाद्यान्नों के उत्पादन में समस्याएं उत्पन्न कर रही हैं।

- **पर्याप्त मात्रा में बफर स्टॉक रखना**

योजना आयोग के तकनीकी ग्रुप द्वारा 1988 में 150 तथा 160 लाख टन बफर स्टॉक रखने की सिफारिश की गयी थी। जिसका मूल उद्देश्य सट्टेबाजो तथा व्यापारियों द्वारा बाजार में कीमतों के नियंत्रण को प्रभावित करने के लिए जिससे कि उपभोक्ताओं को किसी प्रकार की कोई समस्या उत्पन्न ना हो तथा प्राकृतिक आपदाओं सुखा, बाढ, भूकंप, आदि आने की स्थिति में सभी को खाद्यान्न आसानी से उपलब्ध कराया जा सके।

3.5 सार्वजनिक वितरण प्रणाली–

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को सस्ती कीमतों पर आवश्यक उपभोग वस्तुएं उपलब्ध कराना है ताकि उन्हें बढ़ती हुई कीमतों के प्रभाव से बचाया जा सके और जनसंख्या को न्यूनतम आवश्यक उपभोग स्तर प्राप्त करने में सहायता दी जा सके। इस प्रणाली में संपूर्ण जनसंख्या को शामिल किया गया जिसे किसी वर्ग विशेष तक सीमित नहीं रखा गया। सार्वजनिक वितरण प्रणाली 1960 एवं 70 के दशक में खाद्य दुर्लभता के समय उपभोक्ताओं के लिए कीमत स्थिरीकरण के उपकरण के रूप में कार्य करने लगी जिससे कि निजी व्यापारी दुर्लभता की स्थिति में कीमत वृद्धि कर अधिक लाभ प्राप्त न कर सके। खाद्यान्नों के अभाव की स्थिति में खाद्यान्न प्रबंधन और उचित मूल्य पर खाद्यान्नों के वितरण के लिए सार्वजनिक वितरण प्राणाली तैयार की गई थी जिसे राज्य एवं केंद्र सरकार के अधीन चलाया गया ।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली विशेष रूप से खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने एवं भुखमरी से निपटने में मुख्य भूमिका निभाई। साथ ही साथ खाद्यान्नों के मूल्य वृद्धि को रोकने में सहयोग किया तथा देश के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ताओं तक खाद्यान्न पहुंच को सुनिश्चित किया। 1960 के दशक में हरित क्रांति की सफलता के बाद 1970–80 के दशक में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार जनजाति तथा अधिक गरीबी वाले क्षेत्रों में इसे कल्याणकारी कार्यक्रम का दर्जा दिया गया तथा 1985 में यह प्रयास किया गया कि सभी जनजातीय ब्लॉकों में सस्ती दर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाए। 1992 तक सार्वजनिक वितरण प्रणाली का लाभ बिना किसी विशेष वर्ग को लक्षित किए सभी उपभोक्ताओं को सरकारी राशन की दुकानों या उचित दर की दुकानों के माध्यम से जिसमें मुख्यतः गेहूं चावल प्राप्त कराया जाता था तथा मोटे अनाज जैसे ज्वार, बाजरा, मक्का आदि के वितरण पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था।

3.6 संशोधित वितरण प्रणाली–

संशोधित वितरण प्रणाली को जून 1992 में प्रारंभ करके 1775 विकास खंडो में लागू किया गया जहां पर सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम, एकीकृत जनजाति विकास परियोजना, मरुस्थल विकास कार्यक्रम, राज्य सरकारों के परामर्श से पहचान किए गए कुछ विशिष्ट पहाड़ी क्षेत्रों को शामिल करके सार्वजनिक वितरण प्रणाली शुरू करने का प्रयास किया गया जिसमें खाद्यान्नों को केंद्रीय निर्गत मूल्य से 50 प्रतिशत कम कीमत पर जारी किया गया था। इस प्रणाली के तहत अनाज की मात्रा 20 किलो प्रति कार्ड प्रति परिवार तक थी जिसे राज्य सरकारों द्वारा पहचान किए गए क्षेत्र में उचित मूल्य की दुकानों तक सार्वजनिक प्रणाली के अंतर्गत शामिल न होने वाले परिवारों के अतिरिक्त राशन कार्ड इत्यादि जैसी अवसंरचना संबंधी आवश्यकताओं और सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुकानों से वितरण हेतु चाय, नमक, दाल, साबुन आदि अतिरिक्त वस्तुओं की पहुंच सुनिश्चित करने के लिए सरकार द्वारा प्रयास किया गया था।

3.7 लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली–

इसे भारत सरकार ने जून 1997 में प्रारंभ किया जिसके अंतर्गत राज्यों द्वारा गरीबों के लिए अनाज वितरण की पक्की व्यवस्था की गई थी। इसमें गरीबों की पहचान कर उन तक पारदर्शी एवं उत्तरदाई ढंग से अनाज पहुंचना था जिसके लिए राज्य सरकारों को सुझाव दिए गए कि ग्राम पंचायत और नगर पालिकाओं को शामिल करते हुए गरीबी रेखा से नीचे (बी.पी.एल.) रहने वाले परिवारों की पहचान करें तथा इसमें गरीबी रेखा से नीचे उन परिवारों को रखने की व्यवस्था की गई जिनकी वार्षिक आय 15000 से कम है। शुरू में प्रति परिवार 10 किलोग्राम खाद्यान्न प्रति माह देने की व्यवस्था की गई जिसे बाद में बढाकर 25 किलोग्राम प्रति माह कर दिया गया। 1 अप्रैल 2002 को राशन की मात्रा को बढ़ाकर 35 किलोग्राम प्रति माह प्रति परिवार कर दिया गया।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अधिक केंद्रित बनाने तथा गरीब आबादी के अत्यंत गरीब वर्ग तक पहुंचने के लिए अंत्योदय अन्न योजना को दिसंबर 2000 में शुरू किया गया तथा गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले बी. पी.एल. परिवारों और गरीबी रेखा से ऊपर रहने वाले ए.पी.एल. परिवारों के लिए निर्गमन कीमतों में काफी अंतर रखा गया। मार्च 2000 में सरकार ने निर्गमन कीमत को गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले बी.पी.एल. परिवारों के लिए भारतीय खाद्य निगम की आर्थिक लागत का 50 प्रतिशत और गरीबी रेखा से ऊपर रहने वाले ए.पी.एल. परिवारों के लिए आर्थिक लागत के बराबर सुनिश्चित किया गया। उदाहरण के लिए हम यह समझ सकते हैं कि भारतीय खाद्य निगम की वर्ष 2020–21 में आर्थिक लागत ₹1000 प्रति कुंतल थी। इसलिए गरीब रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के लिए निर्गमन कीमत ₹500 प्रति कुंतल निर्धारित की गई तथा गरीबी रेखा से ऊपर रहने वालों के लिए निर्गमन कीमत ₹1000 प्रति कुंतल निर्धारित की गई। जिसके परिणाम स्वरूप गरीबी रेखा के ऊपर रहने वाले परिवारों ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली से खाद्यान्नों की खरीद में बहुत कमी कर दी गई जिससे की भारतीय खाद्य निगम के पास भारी भंडार जमा हो गए।

3.8 सार्वजनिक वितरण प्रणाली के दोष

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में गरीबों को कम लाभ प्राप्त होता है। विभिन्न अध्ययनों के द्वारा यह ज्ञात हुआ कि गरीब जनता को सार्वजनिक वितरण प्रणाली से अधिक लाभ नहीं प्राप्त हुआ है। इसका कारण यह रहा कि अधिकतर वस्तुओं के लिए ग्रामीण गरीब जनता की निर्भरता सार्वजनिक वितरण प्रणाली की तुलना में खुले बाजार पर ज्यादा रही है। इसी प्रकार शहरी क्षेत्र में रहने वाले गरीब लोगों की खुले बाजार पर निर्भरता अपेक्षाकृत अधिक रही है तथा राशन कार्ड केवल उन्हीं परिवारों को जारी किए जाते हैं जिनके पास निवास स्थान का सही प्रमाण है। इसका अर्थ यह हुआ कि बेघर गरीब लोगों तथा जिन लोगों के पास निवास स्थान का प्रमाण नहीं है या ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में काम करने वाले अस्थाई श्रमिक होने की दशा में खाद्य सुरक्षा प्रणाली का लाभ नहीं प्राप्त हो सकता है। 2002 में आर. राधाकृष्णन के एक अध्ययन ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली की गरीबों तक पहुंच को लेकर कई निष्कर्ष प्राप्त किया जैसे की सार्वजनिक वितरण प्रणाली से जारी की गई खाद्यान्नों की आपूर्ति में व्यापक अंतर्राज्यीय असमानताएं विद्यमान हैं। बिहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश को इस प्रणाली से कम आपूर्ति प्राप्त हुई। हालांकि इन राज्यों में निर्धनता बड़े पैमाने पर पाई जाती है तथा राज्य सरकारों के उदासीनता के चलते यह प्रणाली उन राज्यों में बुरी तरह से विफल रही है जिनमें निर्धनों की संख्या अत्यधिक है। क्योंकि यह राज्य गंभीर राजकोषीय कठिनाइयों से गुजर रहे हैं इसलिए यह आशा करना कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रसार पर अधिक खर्च करेंगे, गलत है।

- **पात्र परिवारों की पहचान**

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए वास्तव में निर्धन लोगों की पहचान करना सबसे बड़ी समस्या है जिससे कि लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली असफल रही है। कुछ आलोचकों का मानना है कि बहुत गरीब लोगों को जिन्हें लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली में शामिल करना आवश्यक था इस प्रणाली से बाहर रखा गया। मथुरा स्वामीनाथ के अनुसार वितरण प्रणाली के दो मुद्दे हैं, वैचारिक मुद्दे, परिचालन के मुद्दे। वैचारिक मुद्दे का संबंध गरीबों की परिभाषा से है जबकि परिचालन मुद्दे का संबंध वास्तव में गरीबों के निर्धारण से है। दोनों ही अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की पूरी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इस कार्यक्रम में सही तौर पर उन्हीं लोगों को शामिल किया जाए जिन्हें सार्वजनिक वितरण प्रणाली की नितांत आवश्यकता है।

- **गरीबी**

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में निर्धन किसे माना जाए इसका निर्धारण इस प्रणाली में 1993–94 में योजना आयोग द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा को वर्ष 2000 की कीमतों द्वारा समायोजन के बाद मानदंड के रूप में स्वीकार किया गया। यदि हम इस गरीबी रेखा को स्वीकार करते हैं तो 1993–94 में लक्षित रूप में 37 प्रतिशत ग्रामीण जनसँख्या, 32 प्रतिशत शहरी जनसंख्या आती है। परंतु सरकारी गरीबी निरपेक्ष व्यय का बहुत कम स्तर अपनाती है। कम और घटती बढ़ती आयों का अर्थ यह है कि गरीबी रेखा को किसी स्थिर व अपरिवर्तनीय स्तर पर निर्धारित करना भूल है जिसे मथुरा स्वामीनाथन ने सिद्ध किया कि यदि पोषण स्तर या खाद्यान्नों में हिस्सा जैसी वैकल्पिक कसौटियां अपनाई जाए तो उन लोगों की संख्या जो गरीबी रेखा से नीचे हैं सरकार द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा के आधार पर निर्धारित संख्या से कहीं ज्यादा होगी।

- **भ्रष्टाचार–**

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में बड़ी मात्रा में जाली कार्ड द्वारा सस्ती दरों पर प्राप्त अनाज को खुले बाजारों में ऊंची कीमतों में बेचा जाता है तथा पात्र लाभार्थी इससे वंचित रह गए। जिसका उदाहरण 11वीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेजों में तीन समय बिंदुओं पर प्राप्त होता है। 1993–94, 1999–2000 में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली का 28 प्रतिशत रिसाव था जो 2004–05 में बढ़कर 54 प्रतिशत पहुंच गया। अर्थात आधे से ज्यादा जो सार्वजानिक वितरण प्रणाली के लिए जारी किया गया उचित दर की दुकानों में खरीदारों के पास पहुंचने से पहले ही लुप्त हो गया। हाल के अनुसंधानों से पता लगा कि समय पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली में रिसाव कम हुआ है। उदाहरण के लिए हिमांशु एवं सेन ने अनुमान लगाया कि वर्ष 2011–12 में सार्वजनिक वितरण प्रणाली से रिसाव 35 प्रतिशत था। जॉन ड्रेज, हिमांशु, रितिका खेड़ा एवं अभिजीत सेन के अध्ययन में इसे 42 प्रतिशत बताया गया। इन दोनों अध्ययनों के निष्कर्ष से स्पष्ट होता है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली से रिसाव जो 2004–05 में 54 प्रतिशत था 2011–12 में कम होकर 35 से 42 प्रतिशत के लगभग हो गया।

- **खाद्यान्नों की खराब स्थिति –**

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत दी जाने वाली खाद्यान्नों की खराब गुणवत्ता खाद्यान्नों को खरीदते समय निर्धारित गुणवत्ता के अभाव तथा भंडारण में लापरवाही के कारण होती है जिसके कारण अधिकांशतः इसका प्रयोग लोगों द्वारा स्वयं उपभोग करने की बजाय पशुओं को खिलाने में किया जाता है

3.9 खाद्य सुरक्षा से संबंधित प्रमुख नीतियाँ एवं कानून

भारत में खाद्य सुरक्षा संवैधानिक प्रावधानों, सरकारी नीतियों और विधायी उपायों के संयोजन के माध्यम से सुनिश्चित की जाती है। इसका उद्देश्य सभी नागरिकों के लिए भोजन की उपलब्धता, पहुँच और सामर्थ्य सुनिश्चित करना है। दशकों से, सरकार ने भूख, कुपोषण और खाद्यान्न की कमी, विशेष रूप से कमजोर आबादी के बीच, को दूर करने के लिए कई कार्यक्रम और कानूनी ढाँचे लागू किए हैं। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013, सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस), और अंत्योदय अन्न योजना तथा मध्याह्न भोजन योजना जैसी प्रमुख नीतियाँ और कानून, रियायती खाद्यान्न, पोषण संबंधी सहायता और सामाजिक सुरक्षा जाल प्रदान करने पर केंद्रित हैं। इन उपायों का उद्देश्य न केवल भूखमरी को समाप्त करना है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक न्याय के व्यापक लक्ष्य के हिस्से के रूप में भोजन के अधिकार को प्राप्त करने में भी योगदान देना है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक 22 दिसंबर 2011 को लोकसभा में पेश किया गया। इस विधेयक में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन 75 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या को तथा 50 प्रतिशत शहरी जनसंख्या को सस्ती कीमतों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने की तथा स्त्रियों एवं बच्चों को पोषण सहायता प्रदान करने की व्यवस्था है। विधेयक को पेश करने के बाद उसे एक विशिष्ट कमेटी को सौपा गया ताकि उसकी विभिन्न धाराओं पर पुनः विचार किया जा सके। कई सुझावों के प्रकाश में इस विधेयक में संशोधन किए गए और संशोधित राष्ट्रीय खाद्य

सुरक्षा विधेयक 2013 पेश किया गया। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 5 जुलाई 2013 को लागू किया गया जिसमें यह कहा गया कि राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम में 75 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या तथा 50 प्रतिशत शहरी जनसंख्या को लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से सस्ती कीमतों पर खाद्यान्न प्राप्त करने का कानूनी अधिकार है।

इस विधेयक में राज्य खाद्य कमीशन स्थापित करने की बात कही गई। प्रत्येक कमीशन में एक अध्यक्ष पांच अन्य सदस्य तथा एक सदस्य सचिव होगा। इनमें से कम से कम दो महिलाएं तथा एक सदस्य अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का होना अनिवार्य होगा। राज्य कमीशन का मुख्य काम विधेयक के कार्यकरण पर नजर रखना, राज्य सरकारों तथा उनकी संस्थाओं को सलाह देना तथा विधेयक के उन लोगों की जांच करना होगा, विधेयक अधिनियम के अधीन जिन लोगों को खाद्यान्न प्राप्त करने का अधिकार दिया गया। उन्हें खाद्यन्न ना मिलने की स्थिति में राज्य सरकार से खाद्य सुरक्षा भत्ता प्राप्त करने का अधिकार होगा।

राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने जनवरी 2011 में राष्ट्रीय खाद सुरक्षा विधेयक मसौदे पर अपने अंतिम सुझाव प्रस्तुत किया। प्रस्तावित राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम का उद्देश्य देश के सभी नागरिकों को हर समय पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने हेतु खाद्यान्नों के सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से उपयुक्त व्यवस्था करना। क्योंकि भूख एवं कुपोषण तथा इससे जुड़ी समस्याओं से छुटकारा पाना जो कि हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने सिफारिश की है कि खाद्यान्नों का अधिकार निर्धारित करने के लिए परिवार को ईकाई ना मानकर व्यक्ति को ईकाई मानकर खाद्यान्नों का अधिकार निर्धारित किया जाना चाहिए। इसके पक्ष में तर्क देते हुए राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने कहा कि प्रति व्यक्ति खाद्यान्न का अधिकार अधिक न्यायोचित है जिन परिवारों में व्यक्तियों की संख्या अधिक होगी उनके खाद्यान्न संबंधी अधिकार भी अधिक होंगे। व्यक्ति को आधार बनाने पर परिवारों की सही संख्या का अनुमान लगाने की समस्या समाप्त हो जाएगी क्योंकि सही अनुमान लगाना अधिक कठिन होता है और उसमें गड़बड़ी की काफी संभावनाएं होती हैं।

पात्र व्यक्तियों को प्रत्येक माह 5 किलोग्राम चावल, गेहूं या मोटे अनाज की आपूर्ति क्रमशः तीन एवं दो रुपए में तथा ₹1 प्रति किलो ग्राम की दर पर की जाएगी। पात्र व्यक्तियों का चयन राज्य सरकारों द्वारा केंद्र सरकार के निर्धारित मानदंडों के आधार पर किया जाएगा। इसमें परिवारों के स्थान पर व्यक्ति के अनुसार खाद्यान्नों का अधिकार स्थापित किया जाएगा। खाद्यान्नों की कीमतें आरंभ में 3 वर्षों तक लागू रहेगी और उसके पश्चात केंद्र सरकार द्वारा समय–समय पर उनका निर्धारण इस प्रकार किया जाएगा की वह न्यूनतम समर्थन कीमतों से अधिक ना हो। अधिनियम के अधीन पात्र परिवारों का निर्धारण राज्य सरकारे करेंगी और यह 365 दिन के अंदर करना अनिवार्य होगा। 6 माह से 6 वर्ष तक के बच्चों के लिए अधिनियम में आयु अनुसार समुचित भोजन की गारंटी दी गई जिससे स्थानीय आंगनबाड़ी के माध्यम से मुफ्त प्रदान किया जाएगा। 6 वर्ष से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के प्रतिदिन एक बार मुफ्त दोपहर भोजन दिया जाएगा। सरकारी सहायता प्राप्त तथा स्थानीय निकायों द्वारा चलाई जाने वाले सभी स्कूलों में कक्षा आठ तक के बच्चों के लिए योजना लागू होगी। 6 माह से कम आयु वाले बच्चों को पूरी तरह से स्तनपान पर निर्भरता को प्रोत्साहित किया जाएगा। प्रत्येक गर्भवती महिला तथा स्तनपान करने वाली माता को स्थानीय आंगनबाड़ी से मुफ्त भोजन दिया जाएगा। गर्भ के दौरान और बच्चा पैदा होने से 6 माह तक किस्तों में ₹6000 का मातृत्व लाभ दिया जाएगा।

- **एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम–**

बाल विकास कार्यक्रम भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा 2 अक्टूबर 1975 को प्रारंभ किया गया। यह केंद्र प्रायोजित योजना है जिसमें 6 वर्ष तक की आयु के बच्चों, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान करान वाली माताओ के लिए 6 प्रकार की मूल सेवाएं प्रदान करने की व्यवस्था है। इस कार्यक्रम के आयोजन तथा परिचालन लागतों का खर्च केंद्र सरकार द्वारा उठाया जायेगा जबकि इसका कार्यान्वयन राज्य सरकारो द्वारा किया जायेगा तथा अपने साधनों से पूरक पोषण सुविधा प्रदान किया जाएगा। पूरक पोषण के साथ प्राथमिक चिकित्सा सुविधा तथा अनौपचारिक शिक्षा सुविधा भी प्रदान करती हैं। एक पूरक पोषण जिसके तहत प्रत्येक बच्चे को साल में 300 दिन 500 कैलोरी प्रतिदिन 12 से 15 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन तथा प्रत्येक गर्भवती व स्तनपान कराने वाली महिलाओ को 600 कैलोरी प्रतिदिन तथा 18 से 20 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन उपलब्ध करने का प्रावधान किया गया है।

बीमारियों के खिलाफ प्रतिरक्षण, स्वास्थ्य परीक्षण कर विशेषज्ञों से परामर्श की सुविधा, गर्भस्थ स्त्रियों को स्वास्थ्य एवं पोषण के बारे में शिक्षा, 6 माह से 6 वर्ष के बच्चों को अनौपचारिक स्कूल पूर्व शिक्षा जैसे कार्यक्रम

बहुत सी परियोजनाओं के माध्यम से लागू किया जा रहा है जिसमें प्रत्येक परियोजना प्रत्येक विकासखंड में स्थित है। प्रत्येक एकीकृत बाल विकास योजना में 6 वर्ष से कम आयु वाले 17000 बच्चों या 40 प्रतिशत बच्चों को तथा गर्भवती व स्तनपान कराने वाली 40 प्रतिशत महिलाओं को पोषणयुक्त भोजन प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है जिसे आंगनबाड़ी केन्द्रो के माध्यम से क्रियान्वित किया जाएगा।

एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम में काम करने वाले कर्मचारियों में मुख्य विकास परियोजना के अधिकारी, सुपरवाइजर, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता एवं सहायिका शामिल होंगे। एकीकृत बाल विकास योजना में वर्ष 1975 में 330 परियोजनाओं एवं 4891 आंगनबाड़ी केन्द्रो में शुरू की गई। आज यह पूरे देश में लागू हो चुकी है। भारत सरकार ने 7076 परियोजनाओ तथा 14 लाख आंगनबाड़ी केन्द्रो को स्वीकृति दी जिसे देश भर में लागू किया गया। इसके अलावा और भी अन्य कदम उठाए गए हैं। जैसे की अनुपूरक पोषण कार्यक्रम व अन्य कार्यक्रमों के वित्तीय मानदंडों में संशोधन, अनुपूरक पोषण के लिए आवश्यक पोषण आहार मंडलों में संशोधन और विश्व स्वास्थ्य संगठन के नए विकास मापदण्ड को लागू करना आदि। वर्ष 2009–10 से भारत सरकार ने पूर्वोत्तर भारत के लिए केंद्र और राज्य सरकारों के पोषण संबंधी अन्य कार्यक्रमों में 90/10 के अनुपात में लागत भागीदारी सुनिश्चित की है, जिसमें 90 प्रतिशत केंद्र सरकार की भूमिका होगी तथा 10 प्रतिशत राज्य सरकारों की भूमिका होगी। जबकि अन्य राज्यों में राज्य और केंद्र का 50/50 का अनुपात होगा तथा अन्य पोषण कार्यक्रमों में हिस्सा 90/10 का होगा जिसमें 90 प्रतिशत केंद्र प्रायोजित होगी और 10 प्रतिशत राज्य प्रायोजित योजनाएं होंगी।

- **मध्याह्न भोजन योजना–**

प्राथमिक शिक्षा को पोषण युक्त सहारा देने के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम मध्याह्न भोजन योजना की शुरुआत 15 अगस्त 1995 को देश के 248 ब्लॉकों में केंन्द्र सरकार द्वारा किया गया। 1997–98 तक इसे देश के समस्त ब्लॉकों में लागू कर दिया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य स्कूलों में नामांकन दर एवं उपस्थिति में वृद्धि हो, बच्चे नियमित रूप से स्कूल आए जिससे की बच्चो द्वारा बीच में स्कूल छोड़ देने की रिवायत कम की जा सके। बच्चों को नियमित रूप से स्कूल आने हेतु प्रोत्साहित किया जा सके तथा बच्चों द्वारा स्कूल छोड़ने की समस्या को कम किया जा। सके साथ ही साथ प्राथमिक स्कूल के बच्चों को बेहतर पोषण अर्थात पौष्टिक आहार उपलब्ध कराया जा सके। यह कार्यक्रम विश्व का सबसे बड़ा पोषणकारी कार्यक्रम है जिसके तहत 12 लाख स्कूलों के माध्यम से लगभग 12 करोड़ बच्चों को भोजन उपलब्ध कराया जा रहा है। यह सभी राज्य व केंद्र शासित प्रदेशों में लागू है। सितंबर 2004 में मध्याह्न भोजन योजना के तहत सरकारी व सहायता प्राप्त स्कूलों एवं वैकल्पिक आँगनबाड़ी केन्द्रो में कक्षा 1 से 6 तक पढ़ाई कर रहे हैं सभी बच्चों को प्रतिदिन पका–पकाया भोजन उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी जिससे कम से कम 300 कैलोरी ऊर्जा एवं 8 से 12 ग्राम प्रोटीन प्राप्त हो सके।

खाद्यान्नों की मुफ्त आपूर्ति के साथ–साथ योजना में केंद्रीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गयी। प्रति बच्चा प्रति स्कूल दिन के हिसाब से भोजन बनाने के लिए विशिष्ट वर्ग के राज्यों के लिए ₹100 तथा अन्य राज्यों के लिए 75 रुपए प्रति क्विंटल के हिसाब से परिवहन सहायता, खाद्यान्नों की लागत, परिवहन सहायता तथा भोजन पकाने के लिए सहायता के प्रबंधन, अनुपालन एवं मूल्यांकन के लिए दो प्रतिशत के हिसाब से वित्तीय सहायता सूखा प्रभावित क्षेत्र में गर्मी की छुट्टियों के दौरान भी मध्यान भोजन उपलब्ध कराने के लिए जुलाई 2006 में इस योजना में संशोधन किया गया। पूर्वोत्तर राज्यों में भोजन बनाने की सहायता को बढ़ाकर ₹180 तथा अन्य राज्यों में ₹150 कर दिया गया। अक्टूबर 2007 में योजना का विस्तार करके उसमें 3479 शैक्षिक रूप से पिछड़े खंडो में उच्च प्राइमरी कक्षाओं में अर्थात 6 से 8 में पढ़ रहे बच्चों को शामिल कर लिया गया। 1 अप्रैल 2008 से मध्यान भोजन योजना के अंतर्गत पूरे देश के सभी सरकारी स्कूलों, सहायता प्राप्त स्कूलों तथा सर्व शिक्षा अभियान में शामिल सभी संस्थाओं में प्राइमरी व उच्च प्राइमरी कक्षाओं में पढ़ रहे बच्चों को शामिल कर लिया गया। प्राइमरी कक्षाओं में पढ़ रहे बच्चों को प्रति स्कूल प्रतिदिन 100 ग्राम खाद्यान्न भोजन के रूप में देने की तथा उच्च प्राइमरी कक्षाओं में पढ़ रहे बच्चों को प्रति स्कूल प्रतिदिन डेढ़ सौ ग्राम खाद्यान्न भोजन के रूप में उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी। जहां कच्चा भोजन देने की व्यवस्था है वहां 3 किलोग्राम खाद्यान्न प्रति बच्चा प्रति माह दिया जाता है। मध्याह्न भोजन योजना में भोजन तैयार करने हेतु पूर्वोत्तर राज्यों में केंन्द्र एवं राज्य का अनुपात 90/10 के अनुपात में है तथा गैर पूर्वोत्तर राज्यों में केंद्र तथा राज्य का अनुपात 60/40 है। (स्रोत– मिश्रा एस.के. पुरी वी.के. हिमालया पब्लिशिंग हॉउस पेज न0 278 वर्ष 2022)

- **भारतीय खाद्य निगम**

भारतीय खाद्य निगम की स्थापना वर्ष 1965 में हुई थी जिसका मुख्य कार्य सार्वजनिक वितरण प्रणाली को खाद्यान्न उपलब्ध कराना, खाद्यान्न व अन्य सामग्री की खरीदारी करना, भंडारण व संग्रहण, स्थानांतरण, वितरण तथा बिक्री करना था। भारतीय खाद्य निगम को स्थापित करने का मुख्य उद्देश्य यह था कि किसानों को उनकी उत्पादन का उचित मूल्य जो सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम ना हो प्राप्त हो सके तथा उपभोक्ताओं को एक निश्चित कीमत पर खाद्यान्नों की उपलब्धता सुलभ हो सके। यह कीमत भारत सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है जिसे निर्गमन कीमत कहते हैं।

भारतीय खाद्य निगम को भारत सरकार के द्वारा यह जिम्मेदारी दी गई की वह अपना एक निश्चित बफर स्टॉक बना कर रखें जिससे कि सूखा, बाढ़ या अन्य आपदाओं में भारत में खाद्यान्नों की समस्या से छुटकारा पाया जा सके। वर्तमान के कुछ वर्षों में भारतीय खाद्य निगम की भूमिका बढ़ती गई है तथा भारतीय खाद्य निगम की उपलब्धियां भी बढ़ी हैं। जैसे भारतीय खाद्य निगम द्वारा खाद्यान्नों की कीमत वसूली का काम संभाला गया है, जिससे कीमत वसूली में काफी वृद्धि होने के परिणाम स्वरूप बफर स्टॉक में वृद्धि करने तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली की मांग को पूरा करने के लिए उचित मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध कराने में सुलभता बढ़ी है। खाद्य निगम द्वारा देश के किसानों से अधिक खाद्यान्नों की खरीद करने के कारण खाद्यान्नों के आयात की आवश्यकता कम हुई है जिससे विदेशी मुद्रा भंडारण की बचत हुई है तथा पूर्व घोषित कीमतों पर उत्पादन खरीदने के कारण भारतीय खाद्य निगम किसानों को लाभकारी कीमत प्रदान करने में सफल रहा है। खाद्यान्नों के उचित निर्गमन कीमत के कारण भारत की जनसंख्या के बड़े भाग को खाद्यान्नों की आवश्यकता को पूरा करने में सहयोग दिया जा सका है तथा भारतीय खाद्य निगम ने देश में वैज्ञानिक भंडारण व्यवस्था तथा अवसंरचना के निर्माण में सहायता प्रदान की है।

- **सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के उपाय–**

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के द्वारा दिए जाने वाले खाद्यान्न एक देश एक राशन कार्ड योजना के माध्यम से पूरे भारत में कंप्यूटरीकृत बिक्री सुनिश्चित की जाए जिससे कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली में पात्र व्यक्तियों को लाभ मिल सके एवं रिसाव या चोरी कम से कम हो सके।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लाभार्थियों की सूची सार्वजनिक की जाए तथा उसकी पंचायत स्तर पर जांच की जानी चाहिए जिससे कि अपात्र लाभार्थियों की पहचान हो सके तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली से बढ़ रहे राजस्व बोझ को कम किया जा सके।

भारतीय खाद्य निगम के भंडारगृहों को प्रत्येक जिले में बनाया जाना सुनिश्चित किया जाए साथ ही साथ भारतीय खाद्य निगम की खरीद एवं बिक्री इकाइयां प्रत्येक विकासखंड में सुनिश्चित की जाए जहां पर कंप्यूटरीकृत माध्यम से बिक्री एवं खरीद सुनिश्चित की जा सके सार्वजनिक वितरण प्रणाली में मापतौल के लिए इलेक्ट्रॉनिक तुला का प्रयोग किया जाये।

3.10 खाद्य सुरक्षा की चुनौतियाँ

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) सब्सिडी वाला खाद्यान्न उपलब्ध कराने का एक महत्वपूर्ण साधन है, लेकिन यह अक्सर भ्रष्टाचार, और कालाबाजारी का शिकार होती है। बेईमान अधिकारी और बिचौलिए स्टॉक को ऊँची कीमतों पर खुले बाजार में बेच देते हैं, जिससे वास्तविक गरीब परिवार वंचित रह जाते हैं। इससे खाद्य सुरक्षा उपायों की प्रभावशीलता कमजोर होती है और भुखमरी बढ़ती है। भंडारण सुविधाएँ, खासकर ग्रामीण और दूरदराज के इलाकों में, खराब होने, दूषित होने और कीटों के संक्रमण का कारण बनती हैं। अपर्याप्त गोदामों और आधुनिक सुविधाओं की कमी के कारण हर साल बड़ी मात्रा में गेहूँ, चावल और दालों की बर्बादी होती है। मौसमी बाढ़, गर्मी और नमी भंडारित अनाज को और नुकसान पहुँचाती है। असमान वितरण और क्षेत्रीय असंतुलन इस समस्या को और बढ़ा देते हैं। खाद्य उत्पादन कुछ ही राज्यों में केंद्रित है, जबकि अन्य आयात पर बहुत अधिक निर्भर हैं। शहरी और विकसित क्षेत्रों में वितरण नेटवर्क बेहतर हैं, लेकिन ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में देरी और कमी का सामना करना पड़ता है। प्राकृतिक आपदाएँ, खराब सड़क संपर्क और संघर्ष–ग्रस्त क्षेत्र खाद्य उपलब्धता में क्षेत्रीय

असमानताओं को और बढ़ा देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कुछ क्षेत्रों में अतिरिक्त खाद्य भंडार होता है जबकि अन्य क्षेत्रों में कमी और ऊँची कीमतों से जूझना पड़ता है।

3.11 खाद्य सुरक्षा में सुधार हेतु उपाय

खाद्य सुरक्षा स्वस्थ और सक्रिय जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जिसके लिए आहार संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने वाले पर्याप्त, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन तक पहुँच आवश्यक है। भारत में, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना एक जटिल कार्य है जिसके लिए न केवल कृषि उत्पादन, बल्कि उचित वितरण, भंडारण, गुणवत्ता नियंत्रण और समान पहुँच की भी आवश्यकता होती है। हरित क्रांति के बाद से कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय प्रगति के बावजूद, वितरण में भ्रष्टाचार, भंडारण में कमी और असमान पहुँच जैसी चुनौतियाँ खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा बनी हुई हैं। सुधार के लिए, प्रौद्योगिकी, शासन और सामुदायिक भागीदारी पर केंद्रित एक बहुआयामी दृष्टिकोण आवश्यक है। एक मजबूत और टिकाऊ खाद्य सुरक्षा प्रणाली प्राप्त करने के लिए तीन उपाय–तकनीकी नवाचार, पारदर्शिता और जवाबदेही, और जन भागीदारी महत्वपूर्ण हैं। तकनीकी प्रगति उत्पादकता बढ़ा सकती है, कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम कर सकती है और वितरण नेटवर्क में सुधार कर सकती है। प्रमुख क्षेत्रों में उन्नत कृषि तकनीकें, सटीक कृषि, बेहतर भंडारण और संरक्षण, डिजिटल आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन, जलवायु–स्मार्ट कृषि और सूखे, बाढ़ और कीट हमलों के लिए पूर्व–चेतावनी प्रणालियाँ शामिल हैं। पारदर्शिता और जवाबदेही खाद्य सुरक्षा की राह में जरूरी बाधाएँ हैं, जिनमें अभिलेखों का डिजिटलीकरण, सामाजिक ऑडिट और सार्वजनिक निगरानी, सख्त कानूनी प्रवर्तन और निगरानी के लिए तकनीक का इस्तेमाल शामिल है। एक पारदर्शी प्रणाली यह सुनिश्चित करती है कि सरकारी संसाधन सही लोगों तक पहुँचें, भ्रष्टाचार कम हो और खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों में जनता का विश्वास मजबूत हो।

खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों को जन–केंद्रित और प्रभावी बनाने के लिए सामुदायिक भागीदारी जरूरी है। समुदाय–आधारित निगरानी में स्थानीय स्वयं सहायता समूह, महिला सहकारी समितियाँ और पंचायतें शामिल होती हैं जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) से वितरण की निगरानी करती हैं। स्वयंसेवकों को वितरण पर नजर रखने, शिकायतों को दर्ज करने और कमजोर समूहों को उनके अधिकारों तक पहुँचने में मदद करने के लिए प्रशिक्षित करती हैं। जागरूकता अभियान नागरिकों को उचित सेवा की माँग करने के लिए सशक्त बनाते हैं और पोषण जागरूकता कार्यक्रम लोगों को बेहतर आहार विकल्प चुनने में मदद करते हैं।

गैर–सरकारी संगठनों और नागरिक समाज को शामिल करके दूरस्थ या हाशिए पर पड़े समुदायों तक पहुँचकर और खाद्य सहायता की अंतिम छोर तक पहुँच में सुधार करके सरकारी सेवाओं की कमियों को पूरा किया जा सकता है। सहभागी नीति निर्माण में प्रमुख खाद्य–संबंधी नीतियों को लागू करने से पहले किसानों, उपभोक्ताओं और स्थानीय नेताओं से परामर्श करना शामिल है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सरकारी योजनाएँ स्थानीय जरूरतों और परिस्थितियों के लिए प्रासंगिक बनी रहें। खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना केवल कृषि उत्पादन बढ़ाने के बारे में नहीं है। यह एक ऐसी विश्वसनीय प्रणाली बनाने के बारे में है जो हर घर तक समान, पारदर्शी और टिकाऊ तरीके से भोजन पहुँचाए। तकनीकी नवाचार उत्पादन को बढ़ावा देते हैं और नुकसान कम करते हैं, पारदर्शिता और जवाबदेही भ्रष्टाचार को रोकती है और दक्षता में सुधार करती है, और जनभागीदारी यह सुनिश्चित करती है कि नीतियाँ वास्तविक सामुदायिक आवश्यकताओं पर आधारित हों। यदि भारत इन तीनों उपायों को सफलतापूर्वक अपना लेता है, तो वह भुखमरी को समाप्त करने और यह सुनिश्चित करने के करीब पहुँच सकता है कि प्रत्येक नागरिक को पर्याप्त भोजन का मौलिक अधिकार प्राप्त हो।

3.12 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिका

खाद्य सुरक्षा एक वैश्विक मुद्दा है जो राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं है, क्योंकि भूख, कुपोषण और खाद्यान्न की कमी आपस में जुड़ी हुई समस्याएँ हैं। खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO), विश्व खाद्य कार्यक्रम (WFP) और विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन तकनीकी विशेषज्ञता, वित्त पोषण, आपातकालीन राहत और नीतिगत मार्गदर्शन के माध्यम से राष्ट्रीय सरकारों को सहायता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्य (SDG) भूखमरी को समाप्त करने और सतत कृषि को प्राप्त करने के लिए एक सार्वभौमिक ढाँचा प्रदान करते हैं। FAO भूखमरी को दूर करने, पोषण में सुधार और सतत कृषि को बढ़ावा देने के

अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों का नेतृत्व करता है। इसके प्रमुख योगदानों में नीतिगत और तकनीकी सहायता, आँकड़े और अनुसंधान, कृषि विकास परियोजनाएँ, आपातकालीन सहायता, स्कूल भोजन कार्यक्रम, नकद और वाउचर हस्तांतरण, और कमजोर समूहों को सहायता शामिल हैं। WFP आपातकालीन खाद्य राहत और दीर्घकालिक भूखमरी को दूर करने, संघर्षों, सूखे, बाढ़ और महामारियों के दौरान खाद्य सहायता प्रदान करने पर केंद्रित है। WHO पोषण और खाद्य सुरक्षा सहित अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य गतिविधियों का समन्वय करता है, और कुपोषण तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को कम करने के लिए आहार संबंधी सुझाव विकसित करता है। वे वैश्विक खाद्य सुरक्षा मानक निर्धारित करने के लिए कोडेक्स एलिमेंटेरियस आयोग में एफएओ के साथ भी काम करते हैं। जन स्वास्थ्य हस्तक्षेप स्तनपान, स्वस्थ आहार और मोटापे से संबंधित बीमारियों की रोकथाम को बढ़ावा देते हैं। आपातकालीन स्वास्थ्य प्रतिक्रिया मानवीय संकटों के दौरान सुरक्षित और पर्याप्त भोजन सुनिश्चित करने के लिए अन्य संयुक्त राष्ट्र निकायों के साथ समन्वय करती है।

सतत विकास लक्ष्यों के तहत वैश्विक सहयोग में संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों, जैसे एफएओ, डब्ल्यूएफपी, डब्ल्यूएचओ, आईएफएडी और यूनिसेफ, के बीच साझेदारी शामिल है, ताकि खाद्य असुरक्षा को कई पहलुओं से संबोधित किया जा सके। विकसित देशों और अंतर्राष्ट्रीय दाताओं द्वारा वित्त पोषण और तकनीकी सहायता प्रदान की जाती है, जबकि वैश्विक खाद्य संकट रिपोर्ट जैसी रिपोर्टों के माध्यम से निगरानी और जवाबदेही की वार्षिक निगरानी की जाती है। भारत ने सतत विकास लक्ष्यों को राष्ट्रीय नीतियों, जैसे पोषण अभियान, पीएम–किसान योजना और राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन, में एकीकृत किया है। संक्षेप में, अंतर्राष्ट्रीय संगठन भूख के विरुद्ध लड़ाई, कृषि क्षमता निर्माण, तकनीकी विशेषज्ञता प्रदान करने, आपातकालीन खाद्य सहायता और पोषण कार्यक्रम चलाने, और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा स्वस्थ आहार को बढ़ावा देने में वैश्विक भागीदार और समस्या–समाधानकर्ता के रूप में कार्य करते हैं। खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना एक साझा वैश्विक मिशन है जिसके लिए सीमाओं, क्षेत्रों और समुदायों के बीच सहयोग की आवश्यकता होती है।

3.13 सारांश–

1965 में भारत सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कृषि के विकास पर जोर देते हुए बीज, पानी, उर्वरक, टेक्नोलॉजी, अर्थात हरित क्रांति को अपनाया गया जिससे कि भारत के खाद्यान्न आयात पर निर्भरता में कमी हो गई एवं अनाजो की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता में वृद्धि हुई। भारत ने वर्ष 1976 में खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली थी इसके पश्चात भारत में खाद्यान्न का आयात नाम मात्र का रह गया। गिल्बर्ट ईटइन ने खाद्य क्षेत्र में भारत की आत्मनिर्भरता के प्रयासों की सराहना करते हुए यह कहा कि "सभी प्रकार के अंधकारमय एवं बेबुनियादी भविष्यवाणियों के बावजूद जो कि वर्ष 1960–70 के दशक में भारत के खाद्यान्न के भावी महासंकट व्यक्त होने की संभावना पर बल देती थीं आज देश को किसी वास्तविक अकाल का खतरा नजर नहीं आता है"। नवीं पंचवर्षीय योजना में यह विशेष रूप से उल्लेखित किया गया कि "देश का सबसे पहला प्रयास खाद्य सुरक्षा प्रणाली का निर्माण करना था ताकि अकाल का खतरा देश से एकदम समाप्त किया जा सके। अतः इसके सफलता के प्रमाण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं कि पिछले 5 दशकों से किसी प्रकार का कोई भी अकाल या भुखमरी भारत में अभी तक देखी नहीं गई"।

3.14 बोध प्रश्न–

- **खाद्य सुरक्षा से आप क्या समझते हैं?**

उत्तर– खाद्य सुरक्षा वह स्थिति है जिसमें सभी लोगों को, हर समय, सक्रिय और स्वस्थ जीवन के लिए अपनी आहार संबंधी आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को पूरा करने हेतु पर्याप्त, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन उपलब्ध हो।

- **भारत में खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता क्यों है ?**

उत्तर– भारत में खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि विशाल और विविध जनसंख्या, विशेष रूप से कमजोर समूहों, को पर्याप्त और पौष्टिक भोजन उपलब्ध हो। यह भूख, कुपोषण और

आर्थिक उत्पादकता को प्रभावित करने वाली संबंधित स्वास्थ्य समस्याओं को कम करने में मदद करता है एवं प्राकृतिक आपदाओं, आर्थिक संकटों या फसल विफलताओं के दौरान खाद्य आपूर्ति में स्थिरता भी सुनिश्चित करता है।

- **भारत में खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता के कारणों का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर– भारत में खाद्य सुरक्षा, उच्च जनसंख्या वृद्धि, गरीबी, कुपोषण, प्राकृतिक आपदाओं, आर्थिक अस्थिरता, क्षेत्रीय असमानताओं और जलवायु परिवर्तन के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। जनसंख्या वृद्धि खाद्यान्न की माँग को बढ़ाती है, जबकि गरीबी और असमानताएँ इसकी पहुँच को सीमित करती हैं। कुपोषण, विशेष रूप से बच्चों और महिलाओं में, खाद्य आपूर्ति को बाधित करता है। आर्थिक अस्थिरता खाद्यान्न की पहुँच को प्रभावित करती है, जबकि क्षेत्रीय असमानताएँ और जलवायु परिवर्तन कृषि उत्पादकता को कम करते हैं।

- **भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का उल्लेख कीजिए ।**

उत्तर– भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) एक सरकारी नेटवर्क है जो गरीबों को रियायती कीमतों पर आवश्यक खाद्यान्न और वस्तुएँ वितरित करता है। यह केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा संयुक्त रूप से संचालित है और चावल, गेहूँ, चीनी और मिट्टी के तेल पर केंद्रित है। यह प्रणाली भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) द्वारा खरीद, भंडारण और उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से वितरण के माध्यम से संरचित है। इसका उद्देश्य खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना, कीमतों को स्थिर रखना और गरीब परिवारों को भूख से बचाना है।

- **सार्वजनिक वितरण प्रणाली के दोषों की विवेचना कीजिए।**

उत्तर– सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) गरीबों के लिए निर्धारित खाद्यान्न की लीकेज और हेराफेरी से ग्रस्त है। इसमें भ्रष्टाचार, फर्जी राशन कार्ड और समावेशन–अपवर्जन संबंधी त्रुटियों की समस्याएँ हैं। खाद्यान्न की गुणवत्ता अक्सर खराब होती है और विभिन्न क्षेत्रों में इसका वितरण असमान है।

- **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 की विवेचना कीजिए।**

उत्तर– राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (एनएफएसए) 2013 भारत की दो–तिहाई आबादी को सब्सिडी वाला खाद्यान्न प्रदान करता है, जो 75% ग्रामीण और 50% शहरी क्षेत्रों को कवर करता है। यह अत्यधिक रियायती दरों पर प्रति व्यक्ति प्रति माह 5 किलो चावल, गेहूँ या मोटा अनाज प्रदान करता है। इस अधिनियम में गर्भवती महिलाओं, स्तनपान कराने वाली माताओं और बच्चों के लिए पोषण सहायता के प्रावधान भी शामिल हैं।

- **भारत में खाद्य सुरक्षा के लिए अपनाए गए कार्यक्रमों का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर– भारत के प्रमुख खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस), मध्याह्न भोजन योजना (एमडीएमएस), एकीकृत बाल विकास सेवाएं (आईसीडीएस), अंत्योदय अन्न योजना (एएवाई) और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (एनएफएसए) 2013 शामिल हैं। ये कार्यक्रम रियायती दरों पर आवश्यक वस्तुओं का वितरण करते हैं, स्कूली बच्चों को निःशुल्क पका हुआ भोजन प्रदान करते हैं, और बहुसंख्यक आबादी के लिए रियायती खाद्यान्न का कानूनी अधिकार सुनिश्चित करते हैं।

- **सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के उपायों का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर– सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) को सख्त निगरानी और पारदर्शिता, आधार और ई–पीओएस मशीनों का उपयोग करके राशन कार्डों के डिजिटलीकरण, उचित मूल्य की दुकानों में खाद्यान्न की बेहतर गुणवत्ता, लाभार्थियों का सटीक लक्ष्यीकरण, बेहतर भंडारण और परिवहन सुविधाओं और अधिकारों और योजनाओं के बारे में जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से बेहतर बनाया जा सकता है।

3.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

- भारत में खाद्य सुरक्षा विषय की पृष्ठभूमि एवं महत्व स्पष्ट कीजिए।
- खाद्य सुरक्षा की परिभाषा लिखिए तथा इसके तीन घटकों की व्याख्या कीजिए।

- अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में खाद्य सुरक्षा की स्थिति का वर्णन कीजिए।
- भारत में खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता के प्रमुख कारण बताइए।
- हरित क्रांति का भारत की खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली की संरचना एवं कार्यप्रणाली का वर्णन कीजिए।
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 के मुख्य प्रावधान बताइए।
- अन्त्योदय अन्न योजना एवं मध्याह्न भोजन योजना की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
- खाद्य सुरक्षा में सुधार हेतु उपायों का उल्लेख कीजिए।

3.16 उपयोगी पुस्तके–

- भारतीय अर्थव्यवस्था, ए. एन. अग्रवाल
- भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण नाथूराम
- आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं भारत में आर्थिक नियोजन, प्रो.जी.एल.गुप्ता
- भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉक्टर ममोरिया एवं जैन
- भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.के. राय
- भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास और योजनाओं की चुनौतियां, ए. एन. अग्रवाल
- रुद्र दत्त एवं सुंदरम, भारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली
- पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई
- Food and Agriculture Organization of the United Nations. *The State of Food Security and Nutrition in the World 2023: Urbanization, Agrifood Systems Transformation and Healthy Diets Across the Rural–Urban Continuum*. FAO, 2023.
- Government of India. *National Food Security Act, 2013*. Ministry of Law and Justice, 2013.
- Gulati, Ashok, and Shweta Saini. "Leakages from Public Distribution System (PDS) and the Way Forward." *Indian Journal of Agricultural Economics*, vol. 71, no. 3, 2016, pp. 227–240.
- Kumar, Praduman, et al. *Food Security in India: Trends, Patterns and Determinants*. Indian Agricultural Research Institute, 2021.
- Mehta, Aasha Kapur, and Shashanka Bhide. *Hunger and Malnutrition in India: Status, Causes and Policy Implications*. Planning Commission of India, 2022.
- Ministry of Consumer Affairs, Food & Public Distribution. *Annual Report 2023–24*. Government of India, 2024.
- Swaminathan, M. S. "Sustainable Food Security in India: New Challenges." *Current Science*, vol. 109, no. 3, 2015, pp. 465–471.
- United Nations. *Transforming Our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development*. UN, 2015.
- World Bank. *India: Achieving Food Security in Times of Crisis*. The World Bank, 2011.

इकाई-4 सहकारी खेती

इकाई की रूपरेखा

4.1 **उद्देश्य**

4.2 **प्रस्तावना**

4.3 **सहकारी खेती की परिभाषा**

4.4 **सहकारी खेती की आवश्यकता**

4.5 **सहकारी खेती की विशेषताएँ**

4.6 **चुनौतियाँ और आलोचनाएँ**

4.7 **निष्कर्ष**

4.8 **बोध आधारित प्रश्न**

4ण्9 **सन्दर्भ सूची / उपयोगी पुस्तके**

4.1 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के बाद, आप निम्नलिखित को समझने में सक्षम होंगे:

- **सहकारी खेती की अवधारणा:** आप यह समझ पाएँगे कि सहकारी खेती क्या है और यह भारतीय किसानों के लिए क्यों महत्वपूर्ण है।
- **आवश्यकता और लाभ:** आप जानेंगे कि सहकारी खेती सीमांत और लघु किसानों के सामने आने वाली समस्याओं जैसे कि निवेश की कमी और बढ़ती लागत का समाधान कैसे कर सकती है।
- **विशेषताएँ और सिद्धांत:** आप इस प्रणाली के मुख्य सिद्धांतों जैसे 'एक सदस्य, एक वोट', और सदस्यों के लिए स्वामित्व और स्वैच्छिक योगदान के अधिकार को समझ पाएँगे।
- **चुनौतियाँ और समाधान:** आप सहकारी खेती की चुनौतियों और उन्हें दूर करने के लिए सुझाए गए उपायों का विश्लेषण कर पाएँगे।

4.2 प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ लगभग 86% किसान सीमांत और लघु किसान हैं। इन किसानों के पास न तो पर्याप्त भूमि है, न ही आधुनिक तकनीक में निवेश की क्षमता। खेती की लागत निरंतर बढ़ रही है, जिससे किसान कर्ज़ के बोझ तले दबते जा रहे हैं। इस संदर्भ में सहकारी खेती एक व्यवहारिक समाधान के रूप में सामने आती है। यह खेती की ऐसी प्रणाली है जिसमें कृषक सामूहिक रूप से संसाधनों को एकत्र कर कृषि कार्य करते हैं, जिससे लागत कम होती है, उत्पादन बढ़ता है और किसान आर्थिक रूप से सशक्त बनता है।

4.3 सहकारी खेती की परिभाषा

सहकारी खेती क्या है?

- सहकारी खेती समूह तब बनाया जाता है जब एक गांव के कई किसान अपनी जमीन को एक साथ मिलाते हैं और खेती के लिए एक बड़े खेत के रूप में संयुक्त भूखंड पर विचार करने, खेती के लिए आवश्यक इनपुट खरीदने और सहकारी रूप से फसलों का विपणन करने के लिए सहमत होते हैं।
- एक सदस्य, एक वोट इस तरह से होता है कि इस तरह की सोसायटी अपने पदाधिकारियों को उचित संचालन सुनिश्चित करने के लिए

चुनती है।

- कृषकों की उपज और/या संसाधनों को एक साथ मिलाने की क्षमता कृषि सहकारी समितियों के गठन के लिए एक उपयोगी औचित्य है।
- कृषकों के लिए कृषि के क्षेत्र में माल का उत्पादन करना या सेवाएं प्रदान करना अक्सर बहुत महंगा होता है।
- सहकारी संस्थाएं किसानों को एक "संघ" में शामिल होने का एक तरीका देती हैं जिसके माध्यम से वे बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकते हैं - आम तौर पर वित्तीय परिणाम - जो वे अपने दम पर प्राप्त कर सकते हैं।
- इस योजना के तहत, गांव के सभी भूमि मालिक गांव में खेती करने के लिए एक सहकारी समिति बनाते हैं
- परिचालन इकाई के आकार को बढ़ाने और पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं से लाभ उठाने के लिए, छोटी जोतों को एक साथ मिला कर संयुक्त रूप से खेती की जानी चाहिए। भूमि को एक साथ मिलाया जाता है, लेकिन प्रत्येक किसान के पास स्वामित्व रहता है।
- फसल को प्रत्येक सदस्य द्वारा योगदान की गई भूमि और श्रम की मात्रा के अनुपात में सदस्यों के बीच विभाजित किया जाता है। इसका उपयोग खेती की इकाई के आकार को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

सहकारी खेती (Co-operative Farming)

सहकारी खेती वह खेती है जिसमें कृषि भूमि किसी सरकार या समाज का नहीं वरन् स्वयं व्यक्ति का ही अधिकार होता है। यदि वह व्यक्ति स्वय चाहे तो अन्य के साथ अपनी भूमि को मिलाकर कृषि कार्य कर सकता है। परन्तु कानूनी रूप से वहीं अपनी भूमि का स्वामी होगा और वह जब चाहे अपनी सदस्यता को भंग कर अलग हो कर कृषि कर सकता है।सहकारी खेती को बलाने के लिए एक निर्वाचित कमेटी बनायी जाती है। जो की सदस्यों के मतानुसार बनायी जाती है।यह कमेटी ने केवल भूमि पर उत्पादित की जाने वाली फसलों के मिश्रण के बारे निर्णय लेती है । अपितु खेती के लिए आवश्यक खाद, बीज तथा यन्त्रों को भी खरीदती है तथा उच्पादित अनाज को भण्डागार में रखने से ले कर मण्डियों में बेचने तक का कार्य भी करती है।इस प्रकार के खेतों का आकार काफी बड़ा होता है। अतः इसमें नीवनतम मशीनों तथा आधुनिक कृषि विधियों का भी प्रयोग किया जाता है। यह आवश्यक नहीं की जिन सदस्यों की जमीन है वह उस भूमि पर श्रमिक के रूप में कार्य करें।वर्ष के अना में जो सहकारी खेती से लाभ होता है उसका कुछ हिस्सा आरक्षित रख कर बाकी सदस्यों की भूमि तथा खेती में लगाई गई परिसम्पति के अनुसार बांट दिया जाता है।

सहकारी खेती के रूप (Types Of Co-Operative Farming)

(i) सहकारी संयुक्त खेती-(Co-operative Joint Farming)-सहकारी खेती के जिस स्वरूप का उल्लेख हो रहा है. वह यह कि इस प्रकार की खेती में व्यक्ति की सदस्यता ऐच्छिक होती है। वह चाहे तो मिल कर कृषि करे अन्यथा वह अलग व्यक्तिगत रूप से कृषि कर सकता है, इसमें भूमि को इकठ्ठा करके खेती की जाती है, तथा समिति का कार्य कृषि के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध कराना है।

(ii) सहकारी सामूहिक खेती (Co-operative Collective)इस प्रकार की खेती उद्योग में बनाये गये Tru भांति होती है। इसमें इस समिति का सदस्य बनने के ये सुविधा नहीं होती कि व्यक्ति अपनी इच्छानुसार सदस्यता छोड़ दें यदि वह ऐसी व्यवस्था चाहता है त अपनी भूमि उस व्यक्ति को बेच सकता है जो उसके पर उस समिति का सदस्य बनना चाहता है। इस रार सदस्य, खेतीबाड़ी में लगाये गये श्रम के लिए अपना प्राप्त करते हैं।

(iii) सहकारी उन्नत खोती-(Co-operative Better Farming) सहकारी उन्नत खेती में सदस्य अपनी-अपनी भूमि स्वय ही खेती करते हैं। सारी भूमि पर मिल कर खेती करते। वह केवल खेती में उन्नति करने के लिए एक स बनाते हैं। कृषि के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध के साथ-साथ कम व्याज पर कृषि ऋण भी । कराते हैं। सदस्य इस समिति को इनके कार्यानुसार तौर पर भुगतान करते हैं।

(iv) सहकारी काश्तकारी होती(Co-operative Tenant Farming) इस प्रकार की खेती में कुछ व्यक्ति एक समिति कर, (प्राय) सरकार से भूमि को खरीद लेते हैं अश्धता ल पर ले लेते हैं। फिर यही भूमि सदस्यों में बाट दी जाती हर सदस्य भूमि पर व्यक्तिगत रूप से कृषि करता है समिति अपने सदस्यों की हर सम्भव प्रयास करता है। च को मण्डी में बेचने के पश्चात् नियमानुसार बाकी उपज सदस्यों में बाट दिया जाता

है। हर सदस्य समिति को की गई भूमि पर लगान देता है, तथा और सेवाओं के भुगतान करता है।सहकारी संयुक्त खेती आदशों पर खरी उतरती है क इसमे समाजिक एकीकरण के साथ-साथ आधुनिक को भी बढ़ावा प्राप्त होता है।

4.4 सहकारी खेती की आवश्यकता

- भारत के 60% लोग किसान हैं, जो इसे एक ऐसा देश बनाता है जो कृषि पर बहुत अधिक निर्भर है।
- भारत का अधिकांश आर्थिक उत्पादन इसी क्षेत्र से आता है।
- आज़ादी के बाद कृषि क्षेत्र मुख्य रूप से बिहार, पंजाब, हरियाणा, पश्चिम बंगाल, असम और अन्य राज्यों में समृद्ध हुआ है।
- ब्रिटिश अधिकार के तहत क्षेत्र पर युद्ध करने वाले रियासतों ने आज़ादी से पहले कृषि कानूनों की अराजक स्थिति में योगदान दिया।
- किसानों के हितों की रक्षा करने और उन्हें अतिरिक्त सुविधाएँ और लाभ प्रदान करने के लिए ताकि वे बढ़ सकें, भारत ने 1947 के बाद कई नए कानून और सुधार लागू किए।
- कृषि सहकारी समितियाँ एक ऐसा सुधार है जिसने भारतीय कृषि क्षेत्र को बदल दिया।
- छोटे खेतों में, उनके बीच 'सीमाएँ' स्थापित करने में कुछ ज़मीन बर्बाद हो जाती है। हम उस सीमा भूमि पर खेती कर सकते हैं जब उन्हें एक बड़े सहकारी खेत में मिला दिया जाता है।
- बड़े खेत आम तौर पर छोटे खेतों की तुलना में अधिक लाभदायक होते हैं।
- एक सहकारी खेत में सिंचाई क्षमता और भूमि उत्पादकता बढ़ाने के लिए अधिक लोग, सामग्री और पैसा होता है। सदस्य अपने छोटे से खेत पर अकेले ऐसा करने में सक्षम नहीं होते।

4.5 सहकारी खेती - विशेषताएँ

स्वामित्व का अधिकार

- सहकारी खेती प्रणाली में शामिल होने वाला प्रत्येक किसान एक निश्चित भूखंड के स्वामित्व का हकदार होगा।
- उदाहरण के लिए, यदि सहकारी खेती मॉडल के तहत 10 एकड़ का एक विशिष्ट भूखंड है और पाँच सदस्य हैं, तो प्रत्येक सदस्य के नाम पर 2 एकड़ जमीन होगी।
- जब तक जमीन बेची नहीं जाती या विशेषाधिकार छीन नहीं लिए जाते, तब तक वह उन 2 एकड़ पर अपने सभी अधिकारों का प्रयोग करेगा।

स्वैच्छिक सदस्य योगदान

- सभी सदस्य खेती के लिए भूमि का उपयोग करने के लिए स्वैच्छिक योगदान करने के लिए स्वतंत्र हैं।
- यदि कोई खेती नहीं करना चाहता है, तो वह जमीन किसी और को बेच सकता है या नकद के लिए दे सकता है।
- यहाँ, किसी भी किसान को सहकारी खेती में भाग लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

स्केलेबल खेती मॉडल

- इस खेती की अवधारणा को प्रत्येक सदस्य को आवंटित भूखंडों की संख्या के आधार पर आवश्यकतानुसार बढ़ाया या घटाया जा सकता है।

- परिणामस्वरूप, प्राप्त राजस्व अपेक्षाओं के अनुरूप होगा, और सभी को एक निश्चित सीमा तक लाभ में हिस्सा मिलेगा।
- इसके अतिरिक्त, यदि सहकारी संगठन अतिरिक्त भूमि खरीदता है, तो नए सदस्य बनाए जा सकते हैं।

आनुपातिक योगदान और पुरस्कार

- यहाँ, संपूर्ण मुआवज़ा प्रणाली (राजस्व और लाभ सहित) दान पर आधारित है।
- उदाहरण के लिए, यदि एक सदस्य व्यवसाय का 30% हिस्सा रखता है जबकि दूसरा 40% हिस्सा रखता है, तो बाद वाले सदस्य को आवंटित उपज का बड़ा हिस्सा मिलेगा।
- इसी तरह, यदि एक कर्मचारी सप्ताह में पाँच दिन काम करता है जबकि दूसरा कर्मचारी छह दिन काम करता है, तो दूसरे कर्मचारी का वेतन अधिक होगा।

सहकारी खेती - लाभ

- मशीनरी का उपयोग: एक गरीब किसान मशीनरी खरीदने में असमर्थ होता है, जबकि एक सहकारी संगठन आसानी से कई तरह की मशीनें खरीद सकता है। मशीनरी का उपयोग करने से प्रति एकड़ उपज बढ़ेगी और उत्पादन लागत भी कम होगी।
- इनपुट की आपूर्ति: सहकारी खेती बीज और उर्वरक जैसे महत्वपूर्ण कृषि इनपुट की पर्याप्त और समय पर आपूर्ति प्राप्त करने में सक्षम है।
- करुणा और भाईचारा पैदा करता है: एक सहकारी खेती संघ अपने सदस्यों के बीच करुणा और एकता को बढ़ावा देता है क्योंकि वे सभी एक ही लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए काम करते हैं।
- उचित उत्पाद मूल्य: एक सहकारी कृषि समूह बाजार में मोलभाव करेगा और उत्पाद को उच्चतम संभव मूल्य पर बेचेगा। व्यक्तिगत किसान की आय बढ़ेगी।
- प्रशिक्षण और सहायता: एक सहकारी समूह उत्पादकता और दक्षता बढ़ाने के लिए किसानों को प्रशिक्षित करता है।

4.6 चुनौतियाँ और आलोचनाएँ

लागत में बचत और संसाधन उपयोग की दक्षता

सहकारी खेती का सबसे प्रमुख लाभ लागत में बचत है। जब किसान बीज, उर्वरक, कीटनाशक, कृषि यंत्र आदि को व्यक्तिगत रूप से खरीदते हैं, तो उन्हें बाजार मूल्य चुकाना पड़ता है, जिससे उनकी उत्पादन लागत बहुत बढ़ जाती है। जबकि सहकारी खेती में इन सभी चीजों को सामूहिक रूप से खरीदा जाता है जिससे थोक दर पर सामग्री मिलती है। उदाहरणस्वरूप, किसी यंत्र की कीमत ₹1 लाख हो सकती है, जो एक अकेला किसान नहीं खरीद सकता, परंतु यदि दस किसान मिलकर उसे खरीदें और साझा करें तो हर किसान को मात्र ₹10,000 का भार उठाना होगा।

इसके अलावा, मशीनीकरण का उपयोग दक्षता बढ़ाता है। ट्रैक्टर, थ्रेशर, ड्रिप सिंचाई सिस्टम, और सोलर पंप जैसे उपकरण सभी के लिए संभव नहीं होते, परंतु सहकारी मॉडल में ये सब साझा किए जा सकते हैं। इससे न केवल लागत घटती है, बल्कि भूमि की उत्पादकता भी बढ़ती है। श्रम, समय और ऊर्जा की भी बचत होती है, जिससे सम्पूर्ण कृषि प्रक्रिया अधिक कुशल और लाभप्रद बनती है।

तकनीकी समावेशन की सुविधा

सहकारी खेती आधुनिक तकनीकों को अपनाने की दृष्टि से भी सहायक सिद्ध होती है। सीमांत किसान व्यक्तिगत स्तर पर तकनीकी नवाचार जैसे सटीक कृषि (precision farming), GIS आधारित भूमि मानचित्रण, जैविक खेती, ड्रोन स्प्रेइंग आदि को अपनाने में सक्षम नहीं होते। परंतु सहकारी समिति के अंतर्गत इन तकनीकों को सामूहिक निवेश और प्रशिक्षण के माध्यम से अपनाया जा सकता है। सरकार और अनुसंधान संस्थानों द्वारा उपलब्ध तकनीकी सेवाएँ जैसे कृषि विज्ञान केंद्र (KVK), ICAR की परियोजनाएँ आदि का लाभ सहकारी समितियाँ

बेहतर रूप से उठा सकती हैं।

विपणन एवं मूल्य संवर्धन की सुविधा

सहकारी खेती में उत्पादन एकीकृत होता है, जिससे बाजार में बड़ी मात्रा में माल बेचा जा सकता है। बड़े पैमाने पर विपणन से बिचौलियों की भूमिका कम होती है और किसान को उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त होता है। इसके अलावा, सहकारी समिति मूल्य संवर्धन (Value Addition) जैसे खाद्य प्रसंस्करण, पैकेजिंग, ग्रेडिंग आदि की सुविधा भी सामूहिक रूप से प्रदान कर सकती है। इससे उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ती है और किसानों को उच्च मूल्य मिलता है।

ऋण और बीमा की बेहतर उपलब्धता

जब किसान सहकारी समिति का हिस्सा होते हैं, तो उन्हें बैंक और वित्तीय संस्थानों से ऋण प्राप्त करने में सुविधा होती है। व्यक्तिगत किसान की तुलना में सहकारी समूह को क्रेडिट स्कोर, गारंटी और दस्तावेज़ों के आधार पर अधिक प्राथमिकता दी जाती है। इसके अतिरिक्त, सामूहिक रूप से फसल बीमा करवाना आसान होता है। कृषि बीमा योजनाओं जैसे प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का अधिक प्रभावी क्रियान्वयन सहकारी समितियों के माध्यम से संभव होता है।

महिला और कमजोर वर्गों की भागीदारी

सहकारी खेती महिला किसानों, दलितों और आदिवासी समुदायों के लिए अवसरों का सृजन करती है। सामान्यतः इन वर्गों को संसाधनों और बाजार तक पहुंच नहीं होती, परंतु सहकारी प्रणाली में वे सामूहिक निर्णय प्रक्रिया में भाग ले सकते हैं। महिला स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के साथ सहकारी समितियाँ मिलकर खाद्य प्रसंस्करण, किचन गार्डन, डेयरी जैसे क्षेत्रों में आजीविका के अवसर प्रदान कर सकती हैं।

सामाजिक सहभागिता और निर्णय में लोकतंत्र

सहकारी खेती केवल आर्थिक ही नहीं, सामाजिक दृष्टि से भी उपयोगी है। इससे सामुदायिक सहयोग, पारस्परिक विश्वास और सहभागिता की भावना का विकास होता है। सभी सदस्य योजनाओं, क्रियान्वयन और लाभ वितरण में भागीदार होते हैं। निर्णय लेने की प्रक्रिया लोकतांत्रिक होती है, जिससे पारदर्शिता और जवाबदेही बनी रहती है। इससे ग्रामीण समाज में एकता और सामाजिक पूंजी (social capital) का निर्माण होता है।

भारत में सहकारिता आंदोलन की असफलता के कारण

भारत में सहकारी आंदोलन की शुरुआत 1904 में हुई थी और यह स्वतंत्रता के बाद कृषि और ग्रामीण विकास का मुख्य साधन माना गया। लेकिन यह आंदोलन अपने उद्देश्यों में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सका। इसके पीछे कई कारण रहे:

1. राजनीतिक हस्तक्षेप: अधिकांश सहकारी समितियाँ राजनीतिक प्रभाव में आ गईं। नेताओं ने समितियों का उपयोग वोट बैंक के रूप में किया, जिससे उनकी स्वायत्तता समाप्त हो गई।
2. प्रशासनिक अक्षमता: समितियों का संचालन प्रायः ऐसे लोगों के हाथों में रहा जिनके पास प्रशिक्षण और प्रशासनिक अनुभव का अभाव था।
3. वित्तीय कुप्रबंधन: निधियों का दुरुपयोग, फर्जी ऋण वितरण और लाभ का अनुचित वितरण आम समस्या बन गई। इससे समितियों की विश्वसनीयता घटी।
4. सामाजिक असमानता: जातिगत भेदभाव और ग्रामीण स्तर पर प्रभुत्वशाली वर्गों द्वारा समितियों पर कब्ज़ा कर लेने से वंचित वर्ग सहकारिता से बाहर रह गए।
5. नवाचार और प्रशिक्षण की कमी: सहकारी आंदोलन समय के साथ तकनीकी रूप से अद्यतन नहीं हो पाया। नई तकनीकों, सूचना तकनीक और डिजिटल प्रणालियों को अपनाने में पिछड़ गया।
6. जनसहभागिता की कमी: कई समितियाँ केवल कागज़ी रूप में सक्रिय रहीं। आम किसानों को निर्णय प्रक्रिया से दूर रखा गया, जिससे उनमें स्वामित्व की भावना विकसित नहीं हो पाई।

7. वित्तीय संस्थानों की अनिच्छा: बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों ने सहकारी समितियों को उचित ऋण नहीं दिया, जिससे वे वित्तीय संकट में आ गईं।

इन सभी कारणों के चलते सहकारी आंदोलन अपने लक्ष्य से भटक गया और किसानों की अपेक्षाएँ पूरी नहीं कर सका। इसे पुनर्जीवित करने के लिए व्यापक नीति, पारदर्शिता, तकनीकी सशक्तिकरण और सामाजिक समावेशन की आवश्यकता है।

सुधारात्मक सुझाव

- ग्राम स्तर पर सहकारी खेती के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम आरंभ किए जाएँ।
- महिला कृषकों को भूमि पर अधिकार और सहकारी संस्थाओं में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाए।
- सहकारी समितियों के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म, मोबाइल ऐप और डेटा आधारित निगरानी प्रणाली लागू की जाए।
- नीति निर्माण में सहकारी कृषि विशेषज्ञों की भागीदारी बढ़ाई जाए।

4.7 निष्कर्ष

सहकारी खेती भारत जैसे कृषि प्रधान और सामाजिक रूप से विविध देश में कृषि विकास का एक सशक्त माध्यम बन सकती है। यह प्रणाली लागत में बचत, तकनीकी समावेशन, विपणन सशक्तिकरण, सामाजिक समरसता और महिला सशक्तिकरण का समन्वय है। यदि इसे नीति स्तर पर समर्थन, संस्थागत मजबूती और सामाजिक सहयोग के साथ बढ़ावा दिया जाए, तो यह भारत को आत्मनिर्भर कृषि अर्थव्यवस्था की ओर ले जा सकती है।

4.8 बोध आधारित प्रश्न -

1. भारत में कितने प्रतिशत किसान सीमांत और लघु किसान हैं?
2. सहकारी खेती का मुख्य उद्देश्य क्या है?
3. क्या सहकारी खेती में किसान अपनी भूमि का स्वामित्व खो देते हैं?
4. सहकारी खेती में मतदान का सिद्धांत क्या है?
5. सहकारी खेती के लिए सदस्यों का योगदान कैसा होता है, स्वैच्छिक या अनिवार्य?
6. बड़े सहकारी खेतों में भूमि उत्पादकता बढ़ाने के लिए क्या लाभ होता है?
7. सहकारी खेती के लिए वित्तीय संस्थानों की अनिच्छा एक चुनौती क्यों है?
8. भारत में सहकारी खेती को पुनर्जीवित करने के लिए कोई एक सुधारात्मक सुझाव दीजिए।

4.9 *संदर्भ (References):* /उपयोगी पुस्तके

1. कृषि सहकारिता मंत्रालय, भारत सरकार – https://agricoop.gov.in/
2. राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC) – https://www.ncdc.in/
3. नीति आयोग की रिपोर्ट – भारत में कृषि सुधार और सहकारी संस्थाएँ, 2021
4. NABARD वार्षिक रिपोर्ट, 2022-23
5. इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च (ICAR) – https://icar.org.in/
6. ग्रामीण विकास मंत्रालय – पंचायती राज और SHG डेटा
7. FAO रिपोर्ट on Cooperative Farming (2020)

खण्ड-5

कृषि मूल्य एवं नीति

इकाई-1 भूमण्डलीकरण एवं भारतीय कृषि

इकाई की रुपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

वैश्वीकरण की अवधारणा और भारतीय कृषि पर इसका प्रभाव

1.3 1991 के आर्थिक सुधार और कृषि पर अप्रत्यक्ष प्रभाव

1.4 भारतीय कृषि पर वैश्वीकरण के प्रभाव

1.5 विश्व व्यापार संगठन (WTO) और भारतीय कृषि

1.6 कृषि समझौता (AoA) – टैरिफ, सब्सिडी, घरेलू समर्थन

1.7 वैश्वीकरण के बाद की सरकारी नीतियाँ व योजनाएँ

1.8 निष्कर्ष

1.9 बोध आधारित प्रश्न

1.10 सन्दर्भ सूची /mi;ksxh iqLrds

1.1 उद्देश्य (Objectives)

- भारतीय कृषि पर वैश्वीकरण के प्रभावों का अध्ययन करना।
- WTO समझौते के परिप्रेक्ष्य में कृषि क्षेत्र की स्थिति को समझना।
- वैश्वीकरण और खाद्य सुरक्षा के बीच संबंधों का विश्लेषण करना।
- सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों और योजनाओं का मूल्यांकन करना।
- भविष्य की चुनौतियों और अवसरों की पहचान करना।

1. 2 प्रस्तावना

वैश्वीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसे विश्व के देशों की एक दूसरे से जुड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसमें वस्तुओं, सेवाओं, प्रौद्योगिकी, पूंजी और श्रम का वैश्विक प्रवाह शामिल है। यह घरेलू अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करने की प्रक्रिया को दर्शाता है। कृषि के संदर्भ में, वैश्वीकरण का अर्थ कृषि उत्पादों, प्रौद्योगिकियों और प्रथाओं का सीमाओं के पार आदान-प्रदान है। यह कोई नई घटना नहीं है, क्योंकि सिल्क रोड जैसे ऐतिहासिक व्यापार मार्ग भी विभिन्न क्षेत्रों में कृषि उत्पादों के लंबे समय से चले आ रहे आदान-प्रदान को दर्शाते हैं। वैश्वीकरण की अवधारणा केवल आर्थिक एकीकरण से कहीं अधिक है; यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी आयाम शामिल हैं, जो कृषि क्षेत्र में गहरे संरचनात्मक परिवर्तनों को प्रेरित करती है। यह प्रभाव केवल बाजार की गतिशीलता तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें कृषि पद्धतियों में मौलिक परिवर्तन (प्रौद्योगिकी अपनाने के माध्यम से), सामाजिक संरचनाओं पर प्रभाव (जैसे श्रम प्रवासन और ग्रामीण आजीविका), और यहां तक कि उपभोक्ता वरीयताओं को आकार देना (आहार संबंधी

परिवर्तनों के माध्यम से) भी शामिल है। यह विश्व कृषि में क्रांति लाने की क्षमता रखता है

1.3 1991 के आर्थिक सुधार और कृषि पर अप्रत्यक्ष प्रभाव

भारत एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था रहा है, जहाँ कृषि क्षेत्र अभी भी कुल कार्यबल के 45% से अधिक को रोजगार देता है और देश के सकल मूल्य वर्धन (GVA) में लगभग 18.3% का योगदान देता है (2023 के अनुसार)। 1991 के आर्थिक सुधारों, जिनमें उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (LPG) मॉडल शामिल था, ने भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करने की प्रक्रिया शुरू की। इन सुधारों का कृषि पर अप्रत्यक्ष लेकिन महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। 1991 के सुधारों को मुख्य रूप से औद्योगिक विनियमन, व्यापार उदारीकरण और वित्तीय क्षेत्र के पुनर्गठन पर केंद्रित बताया गया है, और कृषि शुरू में प्रारंभिक सुधार एजेंडे का स्पष्ट ध्यान नहीं थी। हालांकि, कृषि इस व्यापक आर्थिक परिवर्तन से अछूती नहीं रही, जिससे नीति निर्माताओं के लिए एक अंतर्निहित चुनौती पैदा हुई। कृषि को सीधे संबोधित न करके, नीति निर्माताओं ने अनजाने में इस महत्वपूर्ण क्षेत्र को वैश्विक बाजार की ताकतों के सामने उजागर कर दिया, बिना समानांतर, क्षेत्र-विशिष्ट तैयारी उपायों या सुरक्षा तंत्रों को लागू किए। यह प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण, सक्रिय के बजाय, संभवतः अप्रत्याशित चुनौतियों और कमजोरियों को जन्म दिया। यह स्थिति इस बात पर बल देती है कि कैसे एक बड़े, पारंपरिक और संवेदनशील क्षेत्र जैसे कृषि को प्रभावी ढंग से एक वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में एकीकृत किया जाए, जब प्रारंभिक सुधार की प्रेरणा अन्यत्र हो। यह क्षेत्रों में "स्पिलओवर" का अनुमान लगाने और उन्हें प्रबंधित करने के लिए व्यापक, एकीकृत नीतिगत ढांचों की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

1.4 भारतीय कृषि पर वैश्वीकरण के प्रभाव

वैश्वीकरण का भारतीय कृषि पर मिला-जुला प्रभाव पड़ा है, जिसमें सकारात्मक और नकारात्मक दोनों परिणाम शामिल हैं।

सकारात्मक प्रभाव

- निर्वाह कृषि से व्यापारिक कृषि में परिवर्तन: वैश्वीकरण ने भारतीय कृषि के स्वरूप को बदल दिया है, जिससे यह निर्वाह कृषि से व्यापारिक कृषि में परिवर्तित हो गई है। आज भारतीय किसान उन्हीं फसलों के उत्पादन पर बल देता है जिससे उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके।

- उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि: नई तकनीकों, जैसे उन्नत बीज, कीटनाशक, शाकनाशी, उर्वरक, और कृषि के बड़े पैमाने पर मशीनीकरण के उपयोग से कृषि उत्पादन और प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में असाधारण वृद्धि हुई है। हरित क्रांति और उदारीकरण के परिणामस्वरूप कृषि जीडीपी में वृद्धि हुई है, जो 2010-11 में 14.2% से बढ़कर 2021-22 में 19% हो गई है।

- अंतर्राष्ट्रीय बाजारों तक पहुंच और निर्यात में वृद्धि: वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय कृषि उत्पादों के विदेशी व्यापार में वृद्धि हुई है, जिससे किसानों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपने उत्पाद बेचने और पर्याप्त पूंजी अर्जित करने का मौका मिला है। कृषि निर्यात कुल निर्यात आय का 10.23% है, जबकि कृषि आयात कुल आयात का केवल 2.74% है।

- नई तकनीकों और उन्नत बीजों का आगमन: कृषि में कई नई तकनीकें और उन्नत बीज आए हैं, जिससे उत्पादन क्षमता बढ़ी है। इनमें सिंचाई परियोजनाओं, कीटनाशकों, सिंथेटिक नाइट्रोजन उर्वरकों और बेहतर फसल किस्मों में आधुनिक कार्यान्वयन शामिल हैं।

- रोजगार के नए अवसर: कृषि उत्पादों के निर्यात के लिए वर्गीकरण, मानकीकरण, प्रसंस्करण और पैकेजिंग की आवश्यकता ने कृषि-संबद्ध उद्योगों में रोजगार के अवसर पैदा किए हैं। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था में सबसे बड़ा असंगठित क्षेत्र है, जिसका कुल असंगठित श्रम बल में 90% से अधिक हिस्सा है, और कुल रोजगार में इसकी हिस्सेदारी 52.1% है।

- गरीबी में कमी: हालांकि इस पर बहस होती है, वैश्वीकरण को गरीबी कम करने में सहायक माना जाता है, जिसमें गरीबी रेखा से नीचे के लोगों का प्रतिशत 1993-94 में 36% से घटकर 2011-12 में 21.9% हो गया है।

कृषि के व्यावसायीकरण और तकनीकी उन्नयन ने उत्पादन और निर्यात में वृद्धि करके राष्ट्रीय आय में योगदान दिया है। हालांकि, यह एक विरोधाभासी स्थिति भी पैदा करता है, जहाँ लाभ-उन्मुख उत्पादन छोटे किसानों को बाजार की अस्थिरता और इनपुट लागत के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है। वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव, जैसे कि बढ़ी हुई दक्षता, उत्पादन और बाजार पहुंच, स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

हालांकि, यही व्यावसायिकता किसानों को महंगे इनपुट, जैसे उच्च उपज वाली किस्मों के बीज, उर्वरक और कीटनाशक अपनाने के लिए मजबूर करती है, जो अक्सर ऋण के माध्यम से वित्तपोषित होते हैं। यह निर्भरता किसानों, विशेष रूप से छोटे धारकों को, अस्थिर वैश्विक बाजारों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील बनाती है। जब वैश्विक कीमतें गिरती हैं या इनपुट लागत बढ़ती है, तो उनके लाभ मार्जिन कम हो जाते हैं, जिससे ऋण का दुष्चक्र शुरू हो जाता है। यह इंगित करता है कि वैश्वीकरण के सकारात्मक आर्थिक संकेतक कृषि में समान रूप से वितरित नहीं होते हैं। मैक्रो-स्तर पर विकास को बढ़ावा देने वाले तंत्र एक साथ अधिकांश किसानों के लिए प्रणालीगत जोखिम और कमजोरियां पैदा करते हैं, जो वैश्वीकरण के लाभों के असमान वितरण और मजबूत समर्थन प्रणालियों की आवश्यकता को उजागर करते हैं।

नकारात्मक प्रभाव

- अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का सामना: भारतीय किसानों को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है, जिससे उनके उत्पादों की कीमतें कम हो जाती हैं। विकसित देशों की सब्सिडी वाली कृषि भारतीय कृषि को अत्यधिक प्रतिस्पर्धी बनाती है।

- छोटे और सीमांत किसानों के लिए चुनौतियाँ: वैश्वीकरण ने छोटे किसानों के लिए चुनौतियाँ खड़ी की हैं, क्योंकि वे वैश्विक बाजार की मांगों को पूरा करने में सक्षम नहीं होते, जिससे उन्हें नुकसान उठाना पड़ता है। उन्हें बड़े, अधिक स्थापित वैश्विक खिलाड़ियों से तीव्र प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है, जिससे मूल्य अस्थिरता और बाजार विस्थापन हो सकता है।

- बढ़ता उत्पादन व्यय और वस्तुओं की कम लागत: बढ़ते उत्पादन व्यय (महंगे बीज, उर्वरक, कीटनाशक, पानी) और साथ ही उत्पादों की घटती कीमतों के कारण किसान दिवालियापन का सामना कर रहे हैं, जिससे किसानों की आत्महत्याएँ हुई हैं। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में कपास किसानों के बीच भारी ऋण और फसल की विफलता के कारण आत्महत्याएं बढ़ी हैं, जिससे कपास को "आत्महत्या फसल" कहा जाने लगा है।

- श्रम की उपलब्धता में कमी और ग्रामीण-शहरी प्रवासन: लोग विभिन्न क्षेत्रों में नौकरियों की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने लगे हैं, जिससे कृषि क्षेत्रों में जनशक्ति की कमी हो गई है। कृषि में रोजगार की समग्र वृद्धि दर में कमी आई है।

- बौद्धिक संपदा अधिकार (IPR) का प्रतिकूल प्रभाव: बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कृषि क्षेत्र में आसानी से प्रवेश कर सकती हैं, जो सीमांत किसानों के लिए हानिकारक हो सकता है। WTO द्वारा लगाए गए पेटेंट अधिकारों के कारण बेहतर आयातित बीजों के लिए किसानों को भारी कीमत चुकानी पड़ती है।

- विकसित देशों द्वारा डंपिंग तकनीकें और प्रतिबंध: विकसित देश वैश्विक बाजार में अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए डंपिंग तकनीकों का उपयोग करते हैं, कृषि उत्पादों को प्रतिस्पर्धियों से कम और यहां तक कि कुल उत्पादन लागत से भी कम कीमतों पर बेचते हैं। विकसित देशों द्वारा बड़े पैमाने पर सब्सिडी (ग्रीन बॉक्स और ब्लू बॉक्स) प्रदान करने के बावजूद विकासशील देशों को आयात शुल्क और कोटा जैसे प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है।

- भूमि जोत का छोटा आकार और उच्च उत्पादन लागत: भारत में अधिकांश किसानों के पास भूमि के छोटे, सीमांत भूखंड हैं, जिससे कृषि गतिविधियाँ अक्षम हो जाती हैं और बड़े पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं तक पहुंच प्रतिबंधित हो जाती है। इससे प्रति हेक्टेयर उत्पादन लागत बढ़ जाती है।

- पर्यावरणीय क्षति: बड़े पैमाने पर कृषि उत्पादन और व्यापार के पर्यावरणीय और सामाजिक प्रभावों के बारे में चिंताएँ बढ़ी हैं। रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और शाकनाशियों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट आई है, जिससे इसकी उर्वरता और उत्पादकता दोनों कम हो गई हैं|

वैश्वीकरण ने भारतीय कृषि में एक विरोधाभासी स्थिति उत्पन्न की है: जहाँ एक ओर यह दक्षता और उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है, वहीं दूसरी ओर यह छोटे किसानों को बाजार की शक्तियों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील बना देता है, जिससे ऋणग्रस्तता और आत्महत्याएँ जैसी गंभीर सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जो केवल आर्थिक नहीं बल्कि गहन मानवीय संकट का संकेत देती हैं। वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव, जैसे कि बढ़ी हुई दक्षता और बाजार पहुंच, के बावजूद, नकारात्मक प्रभाव, जैसे कि बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा, कीमतों में गिरावट, बढ़ती इनपुट लागत, और किसानों की आत्महत्याओं में दुखद वृद्धि, गंभीर चिंता का विषय है। वैश्विक बाजार में दक्षता और प्रतिस्पर्धात्मकता

की प्रेरणा किसानों को उच्च लागत वाले इनपुट, जैसे महंगे HYV बीज, उर्वरक और कीटनाशक अपनाने के लिए मजबूर करती है, जो अक्सर ऋण के माध्यम से वित्तपोषित होते हैं। साथ ही, भारी सब्सिडी वाले विदेशी उत्पादों (विकसित देशों द्वारा डंपिंग) और अस्थिर वैश्विक कीमतों के संपर्क में आने से घरेलू कीमतें कम हो जाती हैं। यह स्थिति व्यय और आय के बीच बढ़ती खाई पैदा करती है , जिससे ऋण का एक दुष्चक्र बन जाता है। जब फसल की विफलता, अपर्याप्त सिंचाई, या अपर्याप्त सरकारी समर्थन जैसे कारकों से यह स्थिति और बिगड़ जाती है, तो यह आर्थिक संकट गंभीर मनोवैज्ञानिक दबाव में परिणत होता है, जिसके परिणामस्वरूप अक्सर किसानों की आत्महत्याएं होती हैं। यह घटना केवल आर्थिक अक्षमता से कहीं अधिक है; यह एक गहरा मानवीय संकट है। भारतीय कृषि के "मृत्युशय्या पर" होने का वर्णन और किसानों की आत्महत्याओं पर लगातार, चिंताजनक आंकड़े इस बात पर जोर देते हैं कि वैश्वीकरण का वर्तमान प्रक्षेपवक्र, पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा जाल, निष्पक्ष व्यापार नियमों और कमजोर किसानों के लिए लक्षित समर्थन के बिना, विनाशकारी मानवीय लागतों को जन्म दे सकता है, जो इस धारणा को चुनौती देता है कि वैश्वीकरण स्वाभाविक रूप से "मानव जाति को लाभान्वित कर सकता है"।

तालिका 1: भारतीय कृषि पर वैश्वीकरण के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का सारांश

पहलू	सकारात्मक प्रभाव
उत्पादन और उत्पादकता	निर्वाह से व्यापारिक कृषि में परिवर्तन, उत्पादन और प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में वृद्धि
बाजार पहुंच	अंतर्राष्ट्रीय बाजारों तक पहुंच, कृषि उत्पादों के निर्यात में वृद्धि
प्रौद्योगिकी और नवाचार	नई तकनीकों, उन्नत बीजों और मशीनीकरण का आगमन
रोजगार	कृषि-संबद्ध उद्योगों में नए रोजगार के अवसर
राष्ट्रीय आय और गरीबी	कृषि जीडीपी में वृद्धि, गरीबी में कमी

1.5 विश्व व्यापार संगठन (WTO) और भारतीय कृषि

विश्व व्यापार संगठन (WTO) का कृषि पर समझौता (AoA) 1995 में लागू हुआ, जिसका उद्देश्य कृषि व्यापार में सुधार करना, सब्सिडी कम करना, बाजार पहुंच में सुधार करना और निर्यात सब्सिडी को समाप्त करना है।

1.6 कृषि पर समझौता (AoA): प्रमुख प्रावधान और भारत पर प्रभाव

AoA के प्रमुख प्रावधानों में निम्नलिखित शामिल हैं:

टैरिफिकेशन (Tariffication): इसका अर्थ है कि सभी गैर-टैरिफ बाधाओं, जैसे कि परिवर्तनीय लेवी, न्यूनतम आयात मूल्य, कोटा, राज्य व्यापार उपाय और विवेकाधीन लाइसेंसिंग को समाप्त कर दिया जाए और उन्हें टैरिफ में परिवर्तित कर दिया जाए।

टैरिफ में कमी: विकासशील देशों को 10 वर्षों में अपने टैरिफ में 24% की कमी करनी थी।

बाजार पहुंच के अवसर: 1986-88 की घरेलू खपत के 3% के बराबर न्यूनतम पहुंच 1995 के लिए स्थापित की जानी थी, जो कार्यान्वयन अवधि के अंत तक 5% तक बढ़नी थी।

निर्यात सब्सिडी में कमी: विकसित देशों को 6 वर्षों में निर्यात सब्सिडी की मात्रा में 21% और व्यय में 36% की कमी करनी थी; विकासशील देशों को 10 वर्षों में मात्रा में 14% और व्यय में 24% की कमी करनी थी।

घरेलू समर्थन में कमी: व्यापार-विकृत घरेलू सब्सिडी, जैसे मूल्य समर्थन और इनपुट सब्सिडी में 20% की कमी का प्रावधान था।

इन प्रावधानों का भारत पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा:

- भारत को कई कृषि उत्पादों पर आयात शुल्क कम करने और कोटा समाप्त करने पड़े, जिससे घरेलू किसानों को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा और मूल्य उतार-चढ़ाव का सामना करना पड़ा।

- भारत को अपनी कृषि निर्यात सब्सिडी में 36% की कटौती करनी पड़ी, जिससे कृषि निर्यात को प्रभावी ढंग से बढ़ावा देने की उसकी क्षमता प्रभावित हुई।

- घरेलू समर्थन उपायों, जैसे न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) और फसलों के लिए इनपुट सब्सिडी में कमी करनी पड़ी, जिससे किसानों के लिए अनिश्चितता पैदा हुई जो इन नीतियों पर निर्भर थे।

WTO AoA का उद्देश्य "निष्पक्ष व्यापार प्रणाली" स्थापित करना था, लेकिन इसके प्रावधानों ने भारत जैसे विकासशील देशों को विकसित देशों की तुलना में अधिक प्रतिकूल स्थिति में डाल दिया, जिससे वैश्विक व्यापार में वास्तविक समानता के बजाय संरचनात्मक असमानताएँ बनी रहीं। AoA का घोषित लक्ष्य "निष्पक्ष व्यापार प्रणाली" स्थापित करना है , जिसमें सभी सदस्यों के लिए टैरिफ, निर्यात सब्सिडी और घरेलू समर्थन को कम करने की सामान्य प्रतिबद्धताएं शामिल हैं। हालांकि, विकसित देश सहमत सीमाओं के भीतर अपने किसानों को उच्च सब्सिडी प्रदान कर सकते हैं , जिससे भारतीय किसानों के लिए एक असमान खेल का मैदान तैयार होता है। विकसित देश सब्सिडी के "चालाक वर्गीकरण" का भी उपयोग करते हैं। यह इंगित करता है कि जबकि AoA के नियम सार्वभौमिक प्रतीत होते हैं, उनकी लचीलापन और प्रभाव काफी भिन्न हैं। विकसित देश, मजबूत कृषि क्षेत्रों और अधिक वित्तीय संसाधनों के साथ, "ग्रीन बॉक्स" और "ब्लू बॉक्स" सब्सिडी का लाभ उठा सकते हैं— जिन्हें गैर-व्यापार-विकृत माना जाता है—समर्थन के उच्च स्तर को बनाए रखने के लिए। इसके विपरीत, भारत जैसे विकासशील देश, जिनके महत्वपूर्ण समर्थन उपाय जैसे न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) अक्सर "एम्बर बॉक्स" के अंतर्गत आते हैं , सख्त सीमाओं और अधिक जांच का सामना करते हैं, भले ही उनके समग्र सब्सिडी स्तर तुलनात्मक रूप से कम हों। यह "निष्पक्षता" की अवधारणा को कमजोर करता है, क्योंकि यह छोटे, कमजोर किसानों की बड़ी आबादी वाले देशों के लिए एक संरचनात्मक नुकसान को कायम रखता है जो सरकारी समर्थन पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं। यह अंतर्निहित असंतुलन AoA के "दुनिया भर के किसानों की आजीविका में सुधार" के घोषित उद्देश्य में बाधा डालता है और इसके बजाय, मौजूदा वैश्विक असमानताओं को बढ़ा सकता है।

सब्सिडी वर्गीकरण और भारत की स्थिति

WTO कृषि सब्सिडी को तीन मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत करता है:

1. **ग्रीन बॉक्स सब्सिडी:** ये वे सरकारी सहायता कार्यक्रम हैं जो अंतर्राष्ट्रीय या घरेलू व्यापार को न्यूनतम रूप से विकृत करते हैं या नहीं करते हैं, और सीमाओं से मुक्त हैं। इनमें अनुसंधान और विकास, आपदा राहत, और कुछ सार्वजनिक खाद्य वितरण लागत शामिल हैं। भारत इनका उपयोग करता है।
2. **ब्लू बॉक्स सब्सिडी**: ये उत्पादन से जुड़ी सब्सिडी हैं लेकिन कृषि उत्पादन को सीमित करने वाली शर्तों के कारण न्यूनतम व्यापार-विकृत हैं। भारत इनका शायद ही कभी उपयोग करता है, जबकि यूरोपीय संघ जैसे विकसित देश इनका व्यापक रूप से उपयोग करते हैं।
3. **एम्बर बॉक्स सब्सिडी:** इनमें वे सभी सब्सिडी शामिल हैं जो उत्पादन और व्यापार को विकृत करती हैं, सीधे मूल्य, उत्पादन या इनपुट से जुड़ी होती हैं, और सीमाओं और कमी प्रतिबद्धताओं के अधीन होती हैं। भारत का न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) और इनपुट सब्सिडी (जैसे उर्वरक, बिजली, पानी) एम्बर बॉक्स के अंतर्गत आती हैं। भारत विकासशील देशों के लिए कृषि उत्पादन मूल्य के 10% के 'डी मिनिमिस' स्तर के भीतर अपना हिस्सा बनाए रखता है, हालांकि इसके बड़े खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम ने वैश्विक बहस छेड़ दी है।

विशेष और विभेदक व्यवहार (SDT): यह विकासशील देशों और सबसे कम विकसित देशों (LDC) के लिए एक "विकास बॉक्स" प्रदान करता है। SDT के तहत, देशों को शहरी और ग्रामीण गरीबों के लिए लक्षित सब्सिडी वाले खाद्य वितरण की अनुमति है। वे कृषि के लिए उपलब्ध निवेश सब्सिडी और कम आय वाले और संसाधन-गरीब किसानों के लिए कृषि इनपुट सब्सिडी भी प्रदान कर सकते हैं। LDC को कोई कमी प्रतिबद्धता बनाने की आवश्यकता नहीं है।

विकसित और विकासशील देशों के बीच असमानताएँ

WTO AoA के तहत सब्सिडी वर्गीकरण की जटिलता, विशेष रूप से "ग्रीन बॉक्स" और "एम्बर बॉक्स" का उपयोग, वैश्विक कृषि व्यापार में एक अंतर्निहित शक्ति असंतुलन को छिपाता है, जहाँ विकसित देश संरचनात्मक रूप से अपनी कृषि को अधिक समर्थन देने में सक्षम हैं,

जबकि विकासशील देशों को अपनी खाद्य सुरक्षा और किसानों की आजीविका सुनिश्चित करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

विकसित देश अपनी सब्सिडी को समझौते की सीमा के भीतर उच्च स्तर पर बनाए रख सकते हैं, जबकि भारत को अपनी सब्सिडी कम करनी पड़ती है। विकसित देश "चालाक वर्गीकरण" का उपयोग करके अपनी कृषि को भारी सब्सिडी देते रहते हैं, जबकि भारत जैसे विकासशील देशों पर व्यापार-विकृत प्रथाओं में लिप्त होने का आरोप लगाते हैं। एक भारत-चीन अध्ययन से पता चला है कि विकसित देश (जैसे अमेरिका, कनाडा, यूरोपीय संघ) अपने किसानों को दुनिया के बाकी हिस्सों की तुलना में कई गुना अधिक सब्सिडी देते हैं। भारत को विकसित देशों के बाजार पहुंच प्रतिबद्धताओं से तत्काल लाभ कम मिला है, क्योंकि भारतीय निर्यात को गैर-टैरिफ बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

यह असमानता, "चालाक वर्गीकरण" और विकसित देशों के लिए उच्च अनुमेय सब्सिडी सीमाओं द्वारा सुगम , यह दर्शाती है कि AoA, निष्पक्ष व्यापार को बढ़ावा देने के अपने घोषित लक्ष्यों के बावजूद, अनजाने में पहले से ही मजबूत कृषि अर्थव्यवस्थाओं को असमान रूप से लाभ पहुंचाने वाला एक कानूनी ढांचा प्रदान करता है। यह उन्हें पर्याप्त राज्य समर्थन के माध्यम से प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त बनाए रखने की अनुमति देता है, जबकि साथ ही विकासशील देशों पर गरीबी उन्मूलन और खाद्य सुरक्षा के लिए आवश्यक समर्थन में कटौती करने का दबाव डालता है। यह भारतीय किसानों के लिए एक प्रणालीगत नुकसान पैदा करता है, जिन्हें सब्सिडी वाले आयात के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है, जबकि उन्हें अपने घरेलू समर्थन पर सीमाओं का सामना करना पड़ता है। यह असंतुलन उनकी भेद्यता को बढ़ाता है और "दुनिया भर के किसानों की आजीविका में सुधार" के उद्देश्य को कमजोर करता है, जिसे AoA प्राप्त करने का दावा करता है, यह सुझाव देता है कि यह समझौता, व्यवहार में, मौजूदा वैश्विक असमानताओं को कम करने के बजाय उन्हें गहरा कर सकता है।

4. खाद्य सुरक्षा पर वैश्वीकरण का प्रभाव

खाद्य सुरक्षा का अर्थ है कि सभी लोगों को हर समय पर्याप्त, सुरक्षित और पोषक भोजन तक भौतिक और आर्थिक पहुंच हो। भारत में लगभग 195 मिलियन लोग अल्पपोषित हैं, और वैश्विक भुखमरी सूचकांक (GHI) 2021 में भारत 116 देशों में से 101वें स्थान पर था, जो 2020 में 94वें स्थान से नीचे है।

तालिका 2: WTO कृषि समझौते (AoA) के तहत सब्सिडी वर्गीकरण और भारत की स्थिति

सब्सिडी श्रेणी	परिभाषा	व्यापार विकृति	सीमाएँ	भारत की स्थिति	विकसित देशों की स्थिति
ग्रीन बॉक्स	न्यूनतम या कोई व्यापार विकृति नहीं; अनुसंधान, आपदा राहत, सार्वजनिक खाद्य वितरण	न्यूनतम	कोई सीमा नहीं	R&D, आपदा राहत, सार्वजनिक खाद्य वितरण में उपयोग	व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है
ब्लू बॉक्स	उत्पादन से जुड़ी, लेकिन उत्पादन को सीमित करने वाली शर्तों के कारण न्यूनतम विकृति	न्यूनतम	विशिष्ट शर्तें	शायद ही कभी उपयोग करता है	यूरोपीय संघ जैसे देश उपयोग करते हैं
एम्बर बॉक्स	उत्पादन और व्यापार को विकृत करती है; सीधे मूल्य, उत्पादन या इनपुट से जुड़ी	उच्च	कमी प्रतिबद्धताओं के अधीन	MSP, इनपुट सब्सिडी (10% 'डी मिनिमिस' सीमा के भीतर)	5% उत्पाद-विशिष्ट या समग्र सीमा का विकल्प; अक्सर MSP को चुनौती देते हैं
विशेष और विभेदक व्यवहार (SDT)	विकासशील देशों के लिए; लक्षित खाद्य वितरण, निवेश सब्सिडी, इनपुट सब्सिडी	-	विकासशील देशों के लिए अधिक लचीलापन	शहरी/ग्रामीण गरीबों के लिए खाद्य वितरण, निवेश/ इनपुट सब्सिडी	विकसित देशों को SDT प्रदान नहीं किया जाता

वैश्वीकरण का खाद्य उपलब्धता और पहुंच पर प्रभाव

सकारात्मक: वैश्वीकरण के कारण तकनीकी उन्नति हुई है, जिससे उत्पादन में वृद्धि हुई है, जो खाद्य उपलब्धता में योगदान कर सकता है। व्यापार के माध्यम से खाद्य, कच्चे माल, पूंजी और श्रम का आदान-प्रदान खाद्य सुरक्षा के स्तर में सुधार कर सकता है।

नकारात्मक: वैश्वीकरण का खाद्य सुरक्षा उपलब्धता पर सीधा और सांख्यिकीय रूप से नगण्य प्रभाव पड़ा है, लेकिन खाद्य सुरक्षा

पहुंच पर इसका नकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

भारत की खाद्य सुरक्षा की स्थिति, वैश्विक भुखमरी सूचकांक में गिरावट के साथ, यह दर्शाती है कि वैश्वीकरण, अपने उत्पादन-बढ़ाने वाले प्रभावों के बावजूद, भोजन तक पहुंच और सामर्थ्य की अंतर्निहित चुनौतियों का समाधान करने में विफल रहा है, खासकर कमजोर आबादी के लिए। वैश्वीकरण कृषि उत्पादन और बाजार पहुंच में वृद्धि से जुड़ा है , जिससे तार्किक रूप से खाद्य उपलब्धता में सुधार होना चाहिए। हालांकि, इन सकारात्मक उत्पादन प्रवृत्तियों के बावजूद, भारत का वैश्विक भुखमरी सूचकांक (GHI) खराब है , और इसकी आबादी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा कुपोषित बना हुआ है। इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण का खाद्य सुरक्षा पहुंच पर "नकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव" पड़ा है। यह विरोधाभास बताता है कि भोजन की उपलब्धता में वृद्धि (उच्च घरेलू उत्पादन या आयात के माध्यम से) स्वचालित रूप से आबादी के सभी वर्गों के लिए पहुंच और सामर्थ्य में परिवर्तित नहीं होती है। वैश्विक बाजार एकीकरण के कारण मूल्य अस्थिरता, छोटे किसानों के लिए कम टैरिफ सुरक्षा , और निर्यात-उन्मुख नकदी फसलों की ओर बदलाव जैसे कारक, जिन्हें स्थानीय रूप से उपभोग नहीं किया जा सकता है, पौष्टिक भोजन को गरीबों के लिए कम किफायती या उपलब्ध करा सकते हैं। व्यावसायीकरण पर ध्यान निर्यात बाजारों को घरेलू खपत की जरूरतों पर प्राथमिकता दे सकता है, या कम से कम, सबसे कमजोर लोगों की क्रय शक्ति को पर्याप्त रूप से संबोधित करने में विफल हो सकता है। उत्पादन लाभ के बावजूद लगातार खाद्य असुरक्षा इस बात पर प्रकाश डालती है कि खाद्य सुरक्षा एक बहुआयामी चुनौती है जो कुल आपूर्ति से परे समान वितरण, सामर्थ्य, पोषण संबंधी पर्याप्तता और वैश्विक बाजार के झटकों के खिलाफ स्थानीय खाद्य प्रणालियों के लचीलेपन को शामिल करती है। वैश्वीकरण, अपने वर्तमान स्वरूप में, भारतीय आबादी के एक महत्वपूर्ण हिस्से के लिए खाद्य पहुंच में मौजूदा कमजोरियों को बढ़ाता प्रतीत होता है।

आहार में परिवर्तन (Dietary Shifts): आर्थिक विकास और वैश्वीकरण के साथ भारतीय आहार पैटर्न में बदलाव आया है, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में। उपभोक्ता पारंपरिक खाद्य पदार्थों से दूर होकर प्रोटीन, चीनी, वसा और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का अधिक सेवन कर रहे हैं। यह छोटे और सीमांत किसानों के लिए गंभीर निहितार्थ रखता है, जब तक कि उन्हें निर्वाह कृषि से दूर होकर वैश्विक खाद्य बाजार में एकीकृत होने के लिए प्रोत्साहन और नीतियां न मिलें।

वैश्वीकरण ने भारतीय आहार पैटर्न को पश्चिमीकरण की ओर धकेला है, जिससे पारंपरिक खाद्य प्रणालियों और स्थानीय कृषि-पारिस्थितिकी पर दबाव पड़ा है, और छोटे किसानों के लिए बाजार से जुड़ने या विस्थापित होने की दुविधा पैदा हुई है। शहरी क्षेत्रों में भारतीय आहार में एक महत्वपूर्ण बदलाव देखा गया है, जो पारंपरिक मुख्य खाद्य पदार्थों जैसे चावल और दालों से दूर होकर "प्रोटीन, चीनी, वसा और समशीतोष्ण क्षेत्र के उत्पादों" और "प्रसंस्कृत सुविधा खाद्य पदार्थों" की बढ़ी हुई खपत की ओर बढ़ रहा है। इस आहार परिवर्तन को सीधे "आर्थिक विकास और वैश्वीकरण" से जोड़ा गया है , साथ ही शहरीकरण में वृद्धि और बदलते घरेलू गतिशीलता (जैसे श्रम बल में महिला भागीदारी में वृद्धि, भोजन तैयार करने में पारंपरिक भूमिकाओं का क्षरण) जैसे कारक भी हैं। वैश्विक बाजारों के माध्यम से विभिन्न खाद्य किस्मों की आसान उपलब्धता इस बदलाव को सुविधाजनक बनाती है और तेज करती है। यह विकसित होती मांग प्रोफ़ाइल घरेलू आपूर्ति प्रणालियों में एक समान अनुकूलन की आवश्यकता को दर्शाती है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए, यह एक महत्वपूर्ण दुविधा प्रस्तुत करता है: या तो इन नई मांगों को पूरा करने के लिए निर्वाह खेती से वाणिज्यिक उत्पादन में संक्रमण करें जो वैश्विक खाद्य बाजार में एकीकृत हो, या आर्थिक रूप से अव्यवहार्य होने का जोखिम उठाएं। यह दबाव पारंपरिक फसलों और खेती के तरीकों को छोड़ने का कारण बन सकता है। यह दर्शाता है कि खाद्य सुरक्षा पर वैश्वीकरण का प्रभाव केवल व्यापार की मात्रा या उत्पादन स्तरों के बारे में नहीं है; यह इस बात को गहराई से प्रभावित करता है कि कौन सा भोजन खाया जाता है और इसे कैसे उत्पादित किया जाता है। इस सांस्कृतिक और आहार संबंधी बदलाव के स्थानीय कृषि जैव विविधता, पारंपरिक खेती के तरीकों की आर्थिक व्यवहार्यता और संभावित रूप से सार्वजनिक स्वास्थ्य परिणामों के लिए दूरगामी निहितार्थ हैं, जिससे एक जटिल चुनौती पैदा होती है।

1.7 भारत में कृषि वैश्वीकरण के बाद की सरकारी नीतियां और पहलें

1991 के आर्थिक सुधारों के बाद, भारतीय कृषि क्षेत्र ने महत्वपूर्ण नीतिगत परिवर्तनों का अनुभव किया, हालांकि कृषि शुरू में प्रत्यक्ष ध्यान का केंद्र नहीं थी। इन सुधारों ने कृषि के लिए नए अवसर और चुनौतियाँ दोनों पेश कीं।

- प्रारंभिक सुधार और कृषि पर अप्रत्यक्ष प्रभाव: 1991 के सुधारों का प्राथमिक ध्यान औद्योगिक विनियमन, व्यापार उदारीकरण और वित्तीय क्षेत्र के पुनर्गठन पर था। कृषि पर इन परिवर्तनों का अप्रत्यक्ष लेकिन महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, जिसमें व्यापार बाधाओं को धीरे-

धीरे समाप्त करना, आयात शुल्क में कमी और कृषि वस्तुओं पर मात्रात्मक प्रतिबंधों को हटाना शामिल था।

- सब्सिडी का युक्तिकरण और सार्वजनिक व्यय में कमी: सुधारों का एक अन्य प्रमुख प्रभाव सब्सिडी का युक्तिकरण और सार्वजनिक व्यय में कमी था, विशेष रूप से इनपुट समर्थन प्रणालियों में। कृषि में वास्तविक सार्वजनिक निवेश में 1970 के दशक के अपने चरम स्तर से गिरावट शुरू हो गई थी।

- भूमि सुधार: इन मुद्दों को संबोधित करने के लिए, सरकार ने कई भूमि सुधार पेश किए, जिनमें जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन, भूमि हदबंदी अधिनियमों का कार्यान्वयन और काश्तकारी सुधार शामिल थे।

- कृषि ऋण में परिवर्तन: 1991 के बाद की अवधि में कृषि ऋण की संस्थागत संरचना में भी बदलाव देखा गया। प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के लिए निर्देशित उधार लक्ष्यों को फिर से परिभाषित किया गया, और बैंकिंग प्रणाली में सुधार हुए जिन्होंने सामाजिक उद्देश्यों पर वित्तीय व्यवहार्यता को प्राथमिकता दी

प्रमुख सरकारी योजनाएं और नीतियां (वैश्वीकरण के बाद):

- प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (पीएम-किसान): यह योजना किसानों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है।
- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई): यह किसानों को फसल नुकसान के खिलाफ बीमा कवरेज प्रदान करती है।
- प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई): यह सिंचाई सुविधाओं में सुधार पर केंद्रित है
- ई-नाम (राष्ट्रीय कृषि बाजार): यह एक इलेक्ट्रॉनिक राष्ट्रीय कृषि बाजार है जिसका उद्देश्य किसानों को उनकी उपज के लिए बेहतर मूल्य प्राप्त करने के लिए एक मंच प्रदान करना है, जिससे प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ती है।
- मृदा स्वास्थ्य कार्ड (एसएचसी) योजना: यह मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार और रासायनिक इनपुट के तर्कसंगत उपयोग को बढ़ावा देती है।
- परम्परागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई): यह भारत में जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए एक प्रमुख सरकारी पहल है, जिसका उद्देश्य जैविक क्षेत्र में क्रांति लाना और किसानों की आय दोगुनी करना है।
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एनएफएसएम): 2007 में शुरू की गई यह योजना चावल, गेहूं और दालों के उत्पादन को बढ़ाने में अत्यधिक सफल रही है।
- कृषि निर्यात नीति (AEP): 2018 में शुरू की गई यह नीति कृषि निर्यात को बढ़ावा देने, किसानों की आय में सुधार करने और वैश्विक कृषि महाशक्ति के रूप में भारत की क्षमता का दोहन करने पर केंद्रित है।

कृषक (सशक्तीकरण और संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा पर करार अधिनियम 2020: इस अधिनियम में संविदा खेती और एपीएमसी के बाहर किसानों से प्रत्यक्ष खरीद के प्रावधान शामिल थे, हालांकि यह किसानों के लिए करार करना अनिवार्य नहीं करता है।

ये नीतियां और योजनाएं वैश्वीकरण के बाद की चुनौतियों का सामना करने और भारतीय कृषि के लिए नए अवसर पैदा करने के लिए सरकार के प्रयासों को दर्शाती हैं, जिसमें बाजार एकीकरण, तकनीकी उन्नयन और किसानों के कल्याण पर जोर दिया गया है।

भारतीय कृषि के लिए वैश्वीकरण के भविष्य की चुनौतियाँ और अवसर

भविष्य की चुनौतियाँ

मृदा की उर्वरता में गिरावट और जल की कमी: रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट आई है, जिससे इसकी उर्वरता और उत्पादकता कम हो गई है। भारत एक जल-तनावग्रस्त देश है, जहाँ कृषि क्षेत्र सबसे बड़ा जल उपभोक्ता है, लेकिन अत्यधिक दोहन और खराब प्रबंधन के कारण जल की उपलब्धता घट रही है।

भूमि जोत का विखंडन: भारत में अधिकांश किसानों के पास भूमि के छोटे, सीमांत और विखंडित भूखंड हैं, जिससे कृषि गतिविधियाँ अक्षम हो जाती हैं और बड़े पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं तक पहुंच प्रतिबंधित हो जाती है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव: जलवायु परिवर्तन से सूखे, बाढ़ और अनियमित वर्षा जैसी अधिक चरम घटनाओं की उम्मीद है, जिसका वर्षा-सिंचित क्षेत्रों पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ेगा। यह कृषि उत्पादकता और खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती है।

ग्रामीण बेरोजगारी और असमानता: विनिर्माण और वस्त्र जैसे उद्योग तीव्र गति से मशीनीकरण पर निर्भर हो रहे हैं, जिससे अकुशल श्रमिक विस्थापित हो रहे हैं। वैश्वीकरण ने ग्रामीण-शहरी प्रवासन को बढ़ाया है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम की कमी और असमानता बढ़ी है।

भविष्य के अवसर

जैविक खेती और आला बाजार: भारत जैविक उत्पादन में विश्व के अग्रणी देशों में से एक है, जिसमें 4.43 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर जैविक खेती हो रही है और 1.6 मिलियन से अधिक किसान इससे जुड़े हैं। वैश्विक जैविक बाजार का आकार तेजी से बढ़ रहा है (2022 में 188 बिलियन डॉलर से 2027 तक 437 बिलियन डॉलर तक पहुंचने का अनुमान)। यह भारत के लिए जैविक चावल, गेहूं, मसाले, चाय और कॉफी के निर्यात के माध्यम से एक बड़ा अवसर प्रस्तुत करता है।

डिजिटल प्लेटफॉर्म और स्मार्ट कृषि: सूचना और संचार तकनीकों (ICTs) ने कृषि में क्रांति ला दी है, जिससे किसान स्मार्टफोन और मोबाइल ऐप के माध्यम से मौसम की जानकारी, मिट्टी की गुणवत्ता, कीट और रोगों के बारे में वास्तविक समय डेटा तक पहुंच प्राप्त कर सकते हैं। प्रेसिजन फार्मिंग, IoT-आधारित सेंसर, उपग्रह-आधारित रिमोट सेंसिंग और AI-संचालित विश्लेषण जैसी स्मार्ट कृषि प्रौद्योगिकियां दक्षता और स्थिरता बढ़ा सकती हैं।

ब्लॉकचेन और पता लगाने की क्षमता (Traceability): ब्लॉकचेन तकनीक कृषि में पता लगाने की क्षमता में क्रांति ला रही है, जिससे उत्पादन से निर्यात तक पूरी आपूर्ति श्रृंखला में पारदर्शिता सुनिश्चित होती है। यह जैविक उत्पादों के लिए विश्वास का निर्माण करता है और प्रीमियम बाजारों तक पहुंच प्रदान करता है।

मूल्य संवर्धन और प्रसंस्करण: कृषि-आधारित व्यवसायों का उदय और स्थानीय शिल्पों का वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में एकीकरण ग्रामीण लोगों को आर्थिक रूप से सशक्त बना रहा है। कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन से किसानों को बेहतर आय प्राप्त हो सकती है।

बुनियादी ढांचे का विकास: बेहतर सड़कें, बिजली तक पहुंच और दूरसंचार में प्रगति ने कनेक्टिविटी और सुविधाओं को बढ़ाया है, जिससे बाजारों और सेवाओं तक बेहतर पहुंच संभव हुई है, जिससे आगे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिला है।

1.8 निष्कर्ष

वैश्वीकरण ने भारतीय कृषि के परिदृश्य को मौलिक रूप से बदल दिया है, जिससे यह निर्वाह-आधारित प्रणाली से एक अधिक वाणिज्यिक और बाजार-उन्मुख उद्यम में परिवर्तित हो गया है। इस परिवर्तन ने निस्संदेह नई प्रौद्योगिकियों के आगमन, उत्पादन और उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि, और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों तक पहुंच के माध्यम से राष्ट्रीय आय और रोजगार सृजन में वृद्धि जैसे महत्वपूर्ण लाभ लाए हैं। बासमती चावल का सफल निर्यात इस सकारात्मक परिवर्तन का एक उदाहरण है, जो वैश्विक मांग और गुणवत्ता मानकों को पूरा करने की भारत की क्षमता को दर्शाता है।

हालांकि, वैश्वीकरण एक दोधारी तलवार भी साबित हुआ है। इसने भारतीय कृषि को तीव्र अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के सामने उजागर किया है, विशेष रूप से विकसित देशों द्वारा प्रदान की जाने वाली भारी सब्सिडी के कारण। यह असमान खेल का मैदान, डब्ल्यूटीओ के कृषि समझौते के तहत सब्सिडी वर्गीकरण की जटिलताओं से बढ़ा, छोटे और सीमांत किसानों के लिए गंभीर चुनौतियाँ पैदा करता है। बढ़ते उत्पादन लागत, बाजार मूल्य में अस्थिरता, और विदेशी उत्पादों की डंपिंग ने किसानों को ऋण के दुष्चक्र में धकेल दिया है, जिसके परिणामस्वरूप महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में कपास किसानों की आत्महत्याओं जैसे दुखद सामाजिक-आर्थिक परिणाम सामने आए हैं। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण-शहरी प्रवासन, श्रम की कमी, और पर्यावरणीय गिरावट वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों को दर्शाते हैं।

खाद्य सुरक्षा के मोर्चे पर, जबकि वैश्वीकरण ने खाद्य उपलब्धता बढ़ाने में योगदान दिया है, यह सभी के लिए पहुंच और सामर्थ्य सुनिश्चित करने में विफल रहा है, जैसा कि भारत के वैश्विक भुखमरी सूचकांक में गिरावट और कुपोषण की निरंतरता से स्पष्ट है। आहार पैटर्न में बदलाव, पश्चिमी प्रभावों की ओर झुकाव, पारंपरिक खाद्य प्रणालियों और स्थानीय कृषि-पारिस्थितिकी पर भी दबाव डालता है।

आगे बढ़ते हुए, भारतीय कृषि को मिट्टी के स्वास्थ्य में गिरावट, पानी की कमी, भूमि जोत के विखंडन और जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभावों जैसी महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। हालांकि, जैविक खेती, आला बाजारों, डिजिटल प्लेटफॉर्म और स्मार्ट कृषि प्रौद्योगिकियों में अवसर मौजूद हैं। इन क्षेत्रों में निवेश, ब्लॉकचेन-आधारित पता लगाने की क्षमता और मूल्य संवर्धन के साथ, किसानों को सशक्त कर सकते हैं और अधिक टिकाऊ और लाभदायक कृषि पारिस्थितिकी तंत्र बना सकते हैं।

1.9 बोध आधारित प्रश्न -

1. वैश्वीकरण से भारतीय कृषि को कौन-कौन से सकारात्मक लाभ हुए?
2. वैश्वीकरण से छोटे और सीमांत किसानों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा?
3. WTO का कृषि समझौता (AoA) भारतीय कृषि को कैसे प्रभावित करता है?
4. वैश्वीकरण का खाद्य सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा?
5. भविष्य में भारतीय कृषि के सामने कौन-कौन सी प्रमुख चुनौतियाँ हैं?

1.10 संदर्भ सूची/उपयोगी पुस्तके

- वी. के. पुरी एवं एस. के. मिश्र ; भारतीय अर्थव्यवस्था, पर्यावरण तथा विकास, हिमालया पब्लिकेशन ISBN: 978-93-5840-147-
- ऋतु शुक्ला (असि, प्रो., राजकीय महाविद्यालय, तिलहर, शाहजहाँपुर(); पर्यावरण संरक्षण-एक दार्शनिक अध्ययन, ISSN: 2395-6011
- रमेश सिंह ; भारतीय अर्थव्यवस्था, धारणीयता एवं जलवायु परिवर्तन, मैग्रा हिल पब्लिकेशन ISBN : 978-93-5316-6308-0
- लाल एवं लाल ; भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण और विशलेषण, शुभम पब्लिकेशन
- https://www.mkgandhi.org
- https://planningcommission.nic.in
- https://www.rgics.org
- https://mkgandhi-sarvodaya.org
- https://www.pib.gov.in
- https://indiaculture,gov.in
- https://www.jstor.org

इकाई – 2 भारत मे भूमि सुधार एवं पंचायती राज व्यवस्था

इकाई की रुपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 परिचय

2.3 स्वतंत्रता के समय भारत की सामंती कृषि व्यवस्था

2.4 ग्रामीण असमनता और उत्पादकता की समस्या

2.5 भूमि सुधार एवं पंचायती राज का महत्त्व

2.6 पंचायती राज व्यवस्था

2.7 ऐतिहासिक विकास (मेहता समिति, 73वां संशोधन)

2.8 त्रिस्तरीय संरचना: ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद

2.9 पंचायतों की भूमिका: विवाद समाधान, भूमि अभिलेख प्रबंधन, विकास योजनाओं का क्रियान्वयन

2.10 समकालीन चुनौतियाँ

2.11 निष्कर्ष और भविष्य की राह

2.12 बोध आधारित प्रश्न

2.13 सन्दर्भ सूची/उपयोगी पुस्तके

2.1 उद्देश्य (Objectives)

- भारत में भूमि सुधारों के ऐतिहासिक विकास और उद्देश्यों का अध्ययन करना।
- स्वतंत्रता के बाद किए गए विभिन्न भूमि सुधार उपायों की सफलताओं एवं विफलताओं का विश्लेषण करना।
- पंचायती राज व्यवस्था की संरचना, विकास और महत्व को समझना।
- भूमि सुधार और पंचायती राज व्यवस्था के बीच संबंध स्पष्ट करना।
- ग्रामीण विकास में इन दोनों नीतियों की भूमिका और चुनौतियों का मूल्यांकन करना।

भारत के ग्रामीण परिदृश्य के विकास में भूमि सुधार और पंचायती राज व्यवस्था दो आधारभूत स्तंभ रहे हैं। इन दोनों प्रणालियों का उद्देश्य ग्रामीण समुदायों के लिए सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता और सशक्तिकरण सुनिश्चित करना रहा है। एक ओर, भूमि सुधारों ने भूमि के असमान वितरण को संबोधित करते हुए कृषि उत्पादकता बढ़ाने और ग्रामीण गरीबों की आय में वृद्धि करने का लक्ष्य रखा। दूसरी ओर, पंचायती राज व्यवस्था ने जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करने, निर्णय लेने में विकेंद्रीकरण और सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देने का प्रयास किया। यह इकाई इन दोनों महत्वपूर्ण नीतियों के ऐतिहासिक विकास, उद्देश्यों, प्रमुख पहलों, कार्यान्वयन, सफलताओं, विफलताओं, चुनौतियों और उनके बीच के जटिल संबंधों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करती है।

2.2 परिचय

भारत को स्वतंत्रता के समय एक अर्ध-सामंती कृषि व्यवस्था विरासत में मिली थी, जहाँ भूमि का स्वामित्व कुछ जमींदारों के हाथों में केंद्रित था। इस व्यवस्था के कारण कृषि क्षेत्र में उत्पादन कम था और ग्रामीण क्षेत्रों में धन एवं आय की गंभीर विषमताएँ व्याप्त थीं। स्वतंत्रता के

बाद, इन समस्याओं को दूर करने के लिए भूमि सुधारों को तत्काल आवश्यक माना गया। यह स्थिति इस बात पर जोर देती है कि भूमि सुधार केवल एक वैचारिक पहल नहीं थे, बल्कि विरासत में मिली संरचनात्मक समस्याओं को ठीक करने और कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए एक मौलिक प्रतिक्रिया थे।

पंचायती राज की अवधारणा भारत में प्राचीन काल से ही मौजूद है, जहाँ 'पंचायत' पाँच प्रतिष्ठित व्यक्तियों का एक निकाय होती थी, जो गाँव के मामलों का प्रबंधन करती थी । स्वतंत्रता के बाद, इन दोनों प्रणालियों को ग्रामीण भारत में समानता, न्याय और विकास लाने के लिए महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में देखा गया। भारतीय राज्य ने ग्रामीण परिवर्तन के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की कल्पना की, जिसमें भूमि सुधारों का उद्देश्य असमानता को दूर करके आर्थिक आधार का पुनर्गठन करना था, जबकि पंचायती राज का उद्देश्य जमीनी स्तर पर शासन का लोकतंत्रीकरण करना था। इन दोनों का संयुक्त महत्व इस बात को दर्शाता है कि सतत ग्रामीण विकास के लिए आर्थिक न्याय और सहभागी लोकतंत्र दोनों आवश्यक हैं।

2.3 स्वतंत्रता के समय भारत की सामंती कृषि व्यवस्था

स्वतंत्रता से पहले, भारत में ब्रिटिश शासन के तहत कई भू-धारण पद्धतियाँ प्रचलित थीं, जिन्होंने भूमि स्वामित्व में गहरी असमानता की नींव रखी। इन प्रणालियों ने बिचौलियों को मजबूत किया और किसानों का शोषण किया, जिससे स्वतंत्रता के बाद के सुधारों की आवश्यकता पड़ी।

- **इजारेदारी व्यवस्था:** सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्स ने 1772 में बंगाल में इजारेदारी प्रथा की शुरुआत की । यह एक पंचवर्षीय व्यवस्था थी जिसमें सबसे ऊंची बोली लगाने वाले को भूमि पाँच वर्ष के लिए ठेके पर दी जाती थी। बाद में इसे वार्षिक कर दिया गया ।
- **स्थायी बंदोबस्त:** 1793 में लॉर्ड कॉर्नवालिस ने इजारेदारी व्यवस्था के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से 'स्थायी बंदोबस्त' व्यवस्था आरंभ की । यह व्यवस्था बंगाल, बिहार, उड़ीसा, बनारस और उत्तरी कर्नाटक में लागू की गई। इसमें राज्य की मांग लगान का 89% तय की गई थी और 11% जमींदार को अपने पास रखना था। यदि कोई जमींदार निर्धारित तिथि तक भू-राजस्व की निश्चित राशि जमा नहीं करता था, तो उसकी जमींदारी नीलाम कर दी जाती थी ।
- **रैयतवाड़ी व्यवस्था:** 1820 में मद्रास के तत्कालीन गवर्नर टॉमस मुनरो ने रैयतवाड़ी व्यवस्था आरंभ की । यह व्यवस्था मद्रास, बंबई और असम के कुछ भागों में लागू की गई, जिसके तहत लगभग 51% भूमि आई । इसमें किसानों (रैयतों) को भूमि का मालिकाना हक प्रदान किया गया, और वे सीधे कंपनी को भू-राजस्व देने के लिए उत्तरदायी थे। इस व्यवस्था में भू-राजस्व का निर्धारण उपज के आधार पर नहीं बल्कि भूमि के क्षेत्रफल के आधार पर था ।
- **महालवाड़ी व्यवस्था:** लॉर्ड हेस्टिंग्स द्वारा मध्य प्रांत, आगरा, पंजाब के क्षेत्रों में यह भू-राजस्व व्यवस्था लागू की गई । महालवाड़ी व्यवस्था के तहत लगान का निर्धारण महाल या संपूर्ण गाँव की उपज के आधार पर किया जाता था। इसमें गाँव के प्रमुख को किसानों को भूमि से बेदखल करने का अधिकार था। इसके तहत भूमि का कुल 30% सम्मिलित था ।

इन पद्धतियों में मूल अंतर भूमि राजस्व के भुगतान के तरीके के बारे में था । इन सभी प्रणालियों ने, विशेष रूप से जमींदारी और महालवाड़ी, शक्तिशाली बिचौलियों (जमींदारों, ग्राम प्रमुखों) का एक वर्ग बनाया जो वास्तविक किसानों से अत्यधिक किराया वसूलते थे और उन्हें बेदखल करने की शक्ति रखते थे। यहां तक कि रैयतवाड़ी भी, किसानों को स्वामित्व प्रदान करने के बावजूद, अक्सर उच्च राजस्व मांगों से जुड़ी थी। इससे बड़े पैमाने पर भूमिहीनता, असुरक्षित कार्यकाल और ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि तथा शक्ति का अत्यधिक असमान वितरण हुआ। स्वतंत्रता के बाद के भूमि सुधारों का उद्देश्य इस गहरी जड़ें जमा चुकी, शोषणकारी और अनुत्पादक कृषि संरचना को समाप्त करना था, जिसे औपनिवेशिक अतीत से विरासत में मिला था।

2.4 स्वतंत्रता-पश्चात भूमि सुधार पहलें

स्वतंत्रता के बाद, भारत ने कृषि क्षेत्र में समानता और उत्पादकता लाने के लिए व्यापक भूमि सुधार कार्यक्रम शुरू किए।

- **बिचौलियों (ज़मींदारों, जागीरदारों) का उन्मूलन:** स्वतंत्रता के तुरंत बाद, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1949 में कुमारप्पा समिति और कांग्रेस कृषि सुधार समिति का गठन किया ताकि भारत में भूमि सुधार की विस्तृत नीति बनाई जा सके। इन समितियों ने ज़मीदारी,

ताल्लुकेदारी और जागीरदारी जैसे बिचौलियों के अधिकारों की समाप्ति का प्रस्ताव रखा। जमींदारी उन्मूलन कानून के तहत, जमींदारी व्यवस्था को समाप्त किया गया, जमींदारों के अधिकार समाप्त कर दिए गए और भूमि के काश्तकारों को सीधा मालिकाना अधिकार दिया गया। किसानों को भूमि पर रहने का कानूनी अधिकार मिला और उन्हें बेदखल नहीं किया जा सकता था। ये विधेयक 1950 से 1955 ई. तक अधिनियम बनकर चालू हो गए, जिसके परिणामस्वरूप जमींदारी प्रथा का भारत में उन्मूलन हो गया और कृषकों तथा राज्य के बीच पुनः सीधा संबंध स्थापित हो गया। इस सुधार का लक्ष्य किसानों को बिचौलियों से मुक्त कर उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारना था। इसके परिणामस्वरूप कई क्षेत्रों में जमींदारों के शक्तिशाली वर्ग को पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया, और किसानों का शोषण काफी हद तक कम हो गया। किसानों को अपने कानूनी अधिकारों के बारे में भी जागरूकता बढ़ी।

- **काश्तकारी सुधार (Tenancy Reforms):** काश्तकारी सुधारों का मुख्य उद्देश्य काश्तकारों को भूमि पर कानूनी रूप से स्थायी अधिकार प्रदान करना था। इसका एक अन्य उद्देश्य बीमार, अपंग, विधवा, असमर्थ और सैनिक जैसे लोगों को, जो स्वयं खेती नहीं कर सकते थे, पट्टे पर भूमि प्रदान करने की छूट देना भी था। इन सुधारों में काश्तकारी लगान का विनियमन (भूस्वामी को पट्टे का अधिकार), कार्यकाल की सुरक्षा (बेदखली और उच्च किराए की मांग के खिलाफ सुरक्षा), और काश्तकारों को मालिकाना हक प्रदान करना शामिल था। लगान नियमन कानूनों ने सुनिश्चित किया कि लगान कुल उपज के 20-25% से अधिक न हो। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप, लगभग 1 करोड़ 14 लाख काश्तकारों को 1.5 करोड़ एकड़ भूमि पर स्वामित्व प्रदान किया गया। पश्चिम बंगाल और केरल जैसे राज्यों में यह सुधार सबसे अधिक सफल रहा, जहाँ सरकारों ने प्रभावी कानून लागू कर किसानों को पूर्ण स्वामित्व दिलाया, जिससे उनमें निवेश और कृषि उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा मिली।
- **भूमि हदबंदी कानून (Land Ceiling Laws):** भूमि के असमान वितरण को समाप्त करने के लिए सरकार ने 1950 और 1970 के दशक में भूमि सीमा कानूनों को लागू किया। इसके अंतर्गत प्रत्येक राज्य में एक सीमा निर्धारित की गई कि कोई भी व्यक्ति या परिवार अधिकतम कितनी भूमि रख सकता है। अधिशेष भूमि को भूमिहीन किसानों में वितरित करने की योजना बनाई गई, जिससे अधिक लोगों को खेती का अवसर मिले। हालांकि, इस सुधार की सफलता सीमित रही क्योंकि कई भू-स्वामियों ने कानूनी खामियों (loopholes) का लाभ उठाकर अपनी अतिरिक्त भूमि को परिवार के अन्य सदस्यों या बोगस संस्थानों के नाम पर स्थानांतरित कर दिया। प्रशासनिक अक्षमता, राजनीतिक हस्तक्षेप, और लंबी कानूनी प्रक्रियाओं के कारण इस नीति का पूर्ण लाभ गरीब किसानों तक नहीं पहुँच सका। 1972 में, राज्यों के साथ विचार-विमर्श के बाद भू-हदबंदी कानून को फिर से बनाने का निर्णय लिया गया, जिससे जोत के आकार को सीमित करने की व्यवस्था थी। फिर भी, यह समस्या आज भी बनी हुई है, और भूमि के समान वितरण में बहुत कम प्रगति हुई है।
- **चकबंदी (भूमि जोत का समेकन):** चकबंदी वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा स्वामित्वधारी कृषकों को उनके इधर-उधर बिखरे हुए खेतों के बदले में उसी किस्म के कुल उतने ही आकार के एक या दो खेत लेने के लिए राजी किया जाता है। इस प्रकार, चकबंदी एक परिवार के बिखरे हुए खेतों को एक स्थान पर करने की प्रक्रिया है। यह अधिनियम 1963 में बना था। चकबंदी दो प्रकार की होती है: ऐच्छिक चकबंदी और अनिवार्य चकबंदी। ऐच्छिक चकबंदी में किसान की इच्छा पर निर्भर करता है, और यह सबसे पहले पंजाब राज्य में 1921 में सहकारी समितियों द्वारा शुरू की गई थी। अनिवार्य चकबंदी में कृषक को चकबंदी अनिवार्य रूप से करानी पड़ती है। पंजाब और हरियाणा में चकबंदी का कार्य पूरा किया जा चुका है। बिहार में चकबंदी कार्य 1972 में प्रारम्भ किया गया। चकबंदी से कृषि उत्पादन बढ़ाने और भूमि के प्रभावी आधुनिकीकरण में मदद मिलती है।
- **सहकारी खेती:** छोटे और सीमांत किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने और उत्पादकता बढ़ाने के लिए सहकारी खेती को बढ़ावा दिया गया। इसका उद्देश्य था कि छोटे किसान संगठित होकर बड़े पैमाने पर खेती कर सकें और आधुनिक कृषि तकनीकों का उपयोग कर सकें, जिससे संसाधनों के बेहतर उपयोग, बाजार तक बेहतर पहुँच और उत्पादन लागत में कमी आए। हालांकि, यह सुधार कई राज्यों में सीमित सफलता ही प्राप्त कर सका।
- **भूमि अभिलेखों का आधुनिकीकरण:** भूमि अभिलेखों का आधुनिकीकरण भूमि सुधारों का एक महत्वपूर्ण घटक रहा है। ग्रामीण भारत में 95 प्रतिशत भूमि अभिलेखों का डिजिटलीकरण किया जा चुका है। डिजिटल इंडिया भूमि अभिलेख आधुनिकीकरण कार्यक्रम (DILRMP) के तहत, भूमि अभिलेखों के कंप्यूटरीकरण और भू-संपत्ति मानचित्रों के डिजिटलीकरण का कार्य किया जा रहा है। राष्ट्रीय स्तर पर भू-स्वामित्व अधिकारों के रिकॉर्ड और पंजीकरण कार्यालयों के कंप्यूटरीकरण की उपलब्धि 94 प्रतिशत रही है, और देश में 76 प्रतिशत नक्शों का डिजिटलीकरण हो गया है। विशिष्ट भू-खंड पहचान संख्या (ULPIN) या भू-आधार, जो प्रत्येक

भूमि खंड की पहचान करता है, भूमि संबंधी धोखाधड़ी पर रोक लगाने में मदद करता है। ई-पंजीकरण पूरे देश में विलेख/दस्तावेज़ पंजीकरण के लिए एक समान प्रक्रिया प्रदान करता है, जिससे ऑनलाइन प्रवेश, भुगतान, अपॉइंटमेंट और दस्तावेज़ खोज की अनुमति मिलती है। भूमि अभिलेखों को ई-कोर्ट से जोड़ने का उद्देश्य न्यायपालिका को प्रामाणिक भूमि जानकारी प्रदान करना, मामलों का तेजी से समाधान करना और भूमि विवादों में कमी लाना है। इसके अतिरिक्त, भूमि अभिलेखों तक पहुँचने में भाषा की समस्याओं का समाधान करने के लिए, भारतीय संविधान की अनुसूची VIII में सूचीबद्ध 22 भाषाओं में से किसी में भी भूमि अभिलेखों का अनुवाद उपलब्ध है।

2.5 भारत में भूमि सुधार

भूमि सुधारों को भारत में कृषि क्षेत्र में व्याप्त ऐतिहासिक असमानताओं और अक्षमताओं को दूर करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में देखा गया।

परिभाषा और उद्देश्य

भूमि सुधार आमतौर पर अमीरों से गरीबों तक भूमि के पुनर्वितरण को संदर्भित करते हैं। इसमें भूमि के स्वामित्व, संचालन, पट्टे, बिक्री और विरासत का विनियमन शामिल है। भारत में, ये नीतिगत कदम भूमि वितरण को अधिक न्यायसंगत बनाने के उद्देश्य से उठाए गए थे, जिससे भूमि की उत्पादकता में वृद्धि हो और उस पर निर्भर आबादी की गरीबी कम हो।

भूमि सुधारों के मुख्य उद्देश्य बहुआयामी थे, जिनमें सामाजिक न्याय और आर्थिक दक्षता दोनों शामिल थे। इनका लक्ष्य समाज के कमजोर वर्ग की सहायता करना, भूमि वितरण में न्याय सुनिश्चित करना, भूमिहीन, छोटे और सीमांत किसानों के बीच अधिशेष भूमि का पुनर्वितरण करना, गरीबी उन्मूलन और समान ग्रामीण विकास प्राप्त करना, तथा जमींदारी प्रथा को समाप्त करना था। प्रोफेसर गुन्नार मिडर के अनुसार, भूमि सुधार व्यक्ति और भूमि के संबंधों में नियोजन और संस्थागत पुनर्गठन है, जिसका लक्ष्य भूमि का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करना है। यह दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित था कि वास्तविक किसानों को स्वामित्व और सुरक्षित कार्यकाल प्रदान करके, उन्हें अपनी भूमि में निवेश करने और उसमें सुधार करने के लिए अधिक प्रोत्साहन मिलेगा, जिससे समग्र कृषि उत्पादकता बढ़ेगी। इस प्रकार, भूमि सुधारों को एक परिवर्तनकारी उपकरण के रूप में देखा गया जो ऐतिहासिक अन्याय को संबोधित करने के साथ-साथ कृषि क्षेत्र की आर्थिक क्षमता को भी अनलॉक कर सकता था।

भूमि सुधारों ने भारतीय कृषि और ग्रामीण समाज पर गहरा प्रभाव डाला, लेकिन इनकी सफलता असमान रही है।

- **सफलताएं:** भूमि सुधारों के कई सकारात्मक प्रभाव देखे गए। जमींदारों के शक्तिशाली वर्ग को कई क्षेत्रों में पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया, जिससे किसानों का शोषण काफी हद तक कम हुआ। किसानों को अपने कानूनी अधिकारों और उनकी सुरक्षा के कानूनी तरीकों के बारे में जागरूकता बढ़ी। भूमि की सीमा के कारण कुछ हद तक भूमि का पुनर्वितरण हुआ, और कृषि की उत्पादकता में वृद्धि हुई। काश्तकारी सुधारों ने किरायेदारों को कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान की और उन्हें स्वामित्व अधिकार दिए, जिससे वे मौजूदा भूमि मालिकों की बेड़ियों से मुक्त हुए। पश्चिम बंगाल और केरल जैसे राज्यों ने भूमि सुधारों में महत्वपूर्ण प्रगति हासिल की, जहाँ मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति और कानूनी ढांचे ने सफलता सुनिश्चित की। सुरक्षित भूमि स्वामित्व ने किसानों को अपनी भूमि में निवेश करने और ऋण तक पहुँच बढ़ाने के लिए प्रेरित किया। स्वामित्व योजना जैसे कार्यक्रमों ने ग्रामीणों को संपत्ति का अधिकार देकर हाशिए पर स्थित समुदायों को सशक्त बनाया है।
- **विफलताएं और चुनौतियां:** इन सफलताओं के बावजूद, भूमि सुधारों को कई कमजोरियों और चुनौतियों का सामना करना पड़ा। भूमि सीमा कानूनों की सफलता सीमित रही क्योंकि कई भू-स्वामियों ने कानूनी खामियों का लाभ उठाकर अपनी अतिरिक्त भूमि को परिवार के अन्य सदस्यों या बोगस संस्थानों के नाम पर स्थानांतरित कर दिया। प्रशासनिक अक्षमता, राजनीतिक हस्तक्षेप और लंबी कानूनी प्रक्रियाओं के कारण गरीब किसानों तक पूर्ण लाभ नहीं पहुँच सका। भूमि स्वामित्व की सीमा को लागू करने में लंबी देरी हुई, जिससे जमींदारों को अपनी संपत्ति को सुरक्षित रखने में मदद मिलती रही। पुराने जमींदार अब अमीर किसान बन गए, जबकि बड़े पैमाने पर भूमिहीन ग्रामीण स्वामित्व संरचना के निचले स्तर पर रह गए; ग्रामीण भारत में 56% परिवार ऐसे हैं जिनके पास कोई कृषि भूमि नहीं है, जबकि 7.18% परिवारों के पास देश की कृषि भूमि का 46.71% से अधिक है।

अधिशेष भूमि वितरण की विफलता के बाद, राज्य सरकारों ने सरकारी या बंजर भूमि को वितरित करके भूमिहीनों की मांग को पूरा

करने का प्रयास किया, लेकिन यह भी सीमित रहा। भूमि अभिलेखों का सही-सही रिकॉर्ड न होना और भूमि सर्वेक्षण की कमी भी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है, जिससे भूमि के स्वामित्व को लेकर स्थिति अभी तक बेहद उलझी हुई है। न्यायिक विलंब भी एक बड़ी बाधा है, क्योंकि भारत में 50% से अधिक दीवानी मामले भूमि से संबंधित हैं, जिससे सुधारों में देरी होती है। इसके अतिरिक्त, भारतीय संविधान की अनुसूची 7 के तहत भूमि का राज्य सूची में होना विभिन्न राज्यों में अलग-अलग नियमों और नीतियों का कारण बनता है, जिससे कार्यान्वयन में असमानता आती है।

- **सामाजिक-आर्थिक प्रभाव:** भूमि सुधारों का उद्देश्य आर्थिक विकास, सामाजिक समानता और वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देना था। इनका लक्ष्य भूमि अभिलेखों का आधुनिकीकरण करना, भूमि स्वामित्व को सुरक्षित करना और विशेष रूप से सीमांत और लघु किसानों के लिए ऋण तक पहुँच को बढ़ाना था, जिससे उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार हो। स्पष्ट भूमि स्वामित्व ने किसानों को अपनी भूमि में निवेश करने और ऋण प्राप्त करने में मदद की। भूमि सुधारों ने कानूनी स्वामित्व प्रदान करके लघु किसानों और महिलाओं सहित हाशिए पर स्थित समूहों को सशक्त बनाने में मदद की। हालांकि, इन सुधारों की सफलता क्षेत्रीय रूप से भिन्न रही और कई जगहों पर इनका पूर्ण लाभ सभी किसानों तक समान रूप से नहीं पहुँच सका।

2.6 भारत में पंचायती राज व्यवस्था

पंचायती राज व्यवस्था भारत में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की एक प्रणाली है, जिसका उद्देश्य जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करना है।

2.7 ऐतिहासिक विकास

भारत में पंचायत की अवधारणा प्राचीन काल से ही मौजूद है, जहाँ 'महाभारत' और 'रामायण' काल से भी पहले, पंचायत किसी क्षेत्र में चुने गए पाँच प्रतिष्ठित व्यक्तियों की एक निकाय होती थी, जिसका निश्चित क्षेत्र एक गाँव हुआ करता था। ब्रिटिश शासनकाल में पंचायतों की स्थिति कमजोर हुई, लेकिन स्वतंत्रता के बाद, ग्रामीण स्वशासन को मजबूत करने के लिए कई समितियों का गठन किया गया।

- **बलवंत राय मेहता समिति (1957):** इस समिति ने त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली का सुझाव दिया: ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति, और जिला स्तर पर जिला परिषद। अधिकांश राज्यों ने इसी के आलोक में अपने अधिनियम बनाए।
- **अशोक मेहता समिति (1977):** इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं की दो-स्तरीय प्रणाली (मंडल पंचायत और जिला परिषद) का सुझाव दिया।
- **जीवीके राव समिति (1985):** इस समिति ने सुझाव दिया कि जिला परिषद भारत के पंचायती राज व्यवस्था में प्रमुख संस्था होनी चाहिए।
- **एल.एम. सिंघवी समिति (1986):** इस समिति ने स्थानीय स्वशासन को संविधान द्वारा मान्यता देने का सुझाव दिया।
- **गाडगिल समिति (1988):** इस समिति का गठन इस सवाल पर विचार करने के लिए किया गया था कि "पंचायती राज संस्थाओं को कैसे प्रभावी बनाया जा सकता है"।

इन समितियों की सिफारिशों के परिणामस्वरूप, 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 पारित किया गया, जो 24 अप्रैल 1993 से पूरे देश में लागू हुआ। इस संशोधन द्वारा पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा देने के साथ-साथ सारे देश में इस व्यवस्था में एकरूपता लाने का प्रयास भी शामिल है। इस संशोधन का उद्देश्य ग्रामीण भारत में स्थानीय स्वशासन के लिए त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था स्थापित करके जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करना है।

2.8 त्रि-स्तरीय संरचना, भूमिकाएं और जिम्मेदारियां

73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा तीन स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई है: निम्न स्तर पर ग्राम पंचायत, मध्य में पंचायत समिति और उच्च स्तर पर जिला परिषद्।

- **ग्राम पंचायत (ग्राम स्तर):** ग्राम पंचायत पंचायती राज संस्थानों की मूल इकाई है, जो आमतौर पर एक राजस्व इकाई होती है। ग्राम पंचायत का मुख्य कार्य अपने क्षेत्र की समस्याओं का समाधान करना और स्थानीय प्रशासन को चलाना है। इसमें सड़कों की मरम्मत,

जल आपूर्ति, स्वच्छता, और शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाओं का प्रबंधन शामिल है। ग्राम पंचायत को ग्रामीण क्षेत्रों में विकास योजनाओं को लागू करने का अधिकार है, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और अन्य सामाजिक कल्याण योजनाओं का कार्यान्वयन किया जाता है। यह गाँव में कानून और व्यवस्था बनाए रखने, जन्म, मृत्यु और विवाह का पंजीकरण करने, गाँव की सफाई और स्वच्छता व्यवस्था सुनिश्चित करने, तथा सार्वजनिक संपत्तियों (तालाब, कुएं, सड़कें आदि) की देखरेख करने का भी कार्य करती है। ग्राम पंचायत की बैठकों का आयोजन और संचालन करना, प्रस्तावों और निर्णयों का रिकॉर्ड रखना, वित्तीय लेनदेन का प्रबंधन करना, और कर्मचारियों का पर्यवेक्षण करना भी इसके कर्तव्यों में शामिल है।

- **पंचायत समिति (खंड/ब्लॉक स्तर):** पंचायत समिति मध्य स्तर पर कार्य करती है और इसका मुख्य कार्य आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाएं तैयार करना और उन्हें क्रियान्वित करना है। इसमें ग्यारहवीं अनुसूची में शामिल 29 विषय भी सम्मिलित हो सकते हैं। पंचायत समिति ग्राम पंचायतों के कामों की निगरानी करती है, नवनिर्वाचित जनप्रतिनिधियों (विशेषतः महिला, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सरपंचों और पंचों) को प्रशिक्षण देती है और उनका मार्गदर्शन करती है। यह ग्राम पंचायतों में प्रेरणा और उत्साह बढ़ाने, विकास योजनाओं व उत्पादक गतिविधियों के क्रियान्वयन में ग्राम पंचायतों का मार्गदर्शन करने, और स्वैच्छिक संस्थाओं की विकास में भागीदारी बढ़ाने का भी कार्य करती है।
- **जिला परिषद (जिला स्तर):** जिला परिषद पंचायती राज व्यवस्था का उच्चतम स्तर है। यह जिले में पंचायत समितियों द्वारा तैयार की गई विकास योजनाओं एवं स्कीमों का समन्वय एवं एकीकरण करती है। यह जिलान्तर्गत पंचायत समितियों के बजट प्राक्कलन की जाँच एवं मंजूरी देती है। जिला परिषद वित्त, लेखापरीक्षा एवं आयोजना, सामाजिक न्याय, शिक्षा एवं स्वास्थ्य, कृषि और उद्योग जैसे विभिन्न समितियों के माध्यम से कार्य करती है। यह राज्य सरकार को विकास क्रियाकलापों, सामाजिक वानिकी, परिवार कल्याण, महिला, युवा तथा शिशु कल्याण और खेलकूद के बारे में परामर्श भी देती है।
- **स्थानों का आरक्षण:** 73वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए प्रत्येक पंचायत में स्थान आरक्षित किए गए हैं, जो प्रायः उनकी जनसंख्या के अनुपात में होता है। इन आरक्षित पदों के एक-तिहाई स्थान अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित होते हैं। कुल निर्वाचित पदों के एक-तिहाई स्थान स्त्रियों के लिए सुरक्षित हैं। बिहार में, पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण का प्रावधान है।

महत्व

पंचायती राज व्यवस्था का महत्व ग्रामीण भारत में लोकतंत्र को मजबूत करने और विकास को गति देने में निहित है।

- **लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण:** यह जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करता है, निर्णय लेने में विकेंद्रीकरण, जवाबदेही और सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देता है। यह भारत में केंद्र एवं राज्य सरकारों के पश्चात तीसरे स्तर की सरकार बन गयी है।
- **ग्रामीण विकास:** पंचायतें ग्रामीण क्षेत्रों के लिए न केवल प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ निभाती हैं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और बुनियादी ढाँचे के विकास में भी सक्रिय रूप से शामिल होती हैं। यह शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, रोजगार, सिंचाई और सड़क कनेक्टिविटी जैसे क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति लाती है।
- **गरीबी उन्मूलन:** पंचायतें गरीबी उन्मूलन और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे निर्धनता एवं सामाजिक सुरक्षा को प्रमुखता से सम्मिलित करते हुए अनुसूचित जनजाति व अनुसूचित जाति के कल्याण को प्राथमिकता देती हैं।
- **सामाजिक न्याय और महिला सशक्तिकरण:** पंचायती राज व्यवस्था सामाजिक असमानता को दूर करने और हाशिए पर पड़े वर्गों, विशेषकर महिलाओं को सशक्त बनाने में मदद करती है। महिलाओं की बढ़ती भागीदारी न केवल उनके स्वाभिमान के लिए सकारात्मक संदेश है, बल्कि भारत के गाँवों में फैली सामाजिक असमानता को भी दूर करती है। यह लैंगिक समानता हासिल करने और सभी महिलाओं और लड़कियों को सशक्त बनाने में सहायक है।
- **राजनीतिक प्रशिक्षण:** पंचायतें नागरिकों को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग की शिक्षा देती हैं और उनमें नागरिक गुणों का विकास करने में मदद करती हैं। यह विधायकों तथा मंत्रियों को प्राथमिक अनुभव एवं प्रशिक्षण प्रदान करती है, जिससे वे ग्रामीण भारत की समस्याओं से अवगत होते हैं।

पंचायती राज संस्थाओं के समक्ष चुनौतियां

संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद, पंचायती राज संस्थाओं को कई वित्तीय, प्रशासनिक और राजनीतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो उनकी प्रभावशीलता को सीमित करती हैं।

- **वित्तीय चुनौतियां:** पंचायती राज संस्थाएं अक्सर वित्तीय बाधाओं का सामना करती हैं। वे राज्य सरकारों से धन के अपर्याप्त अंतरण पर अत्यधिक निर्भर रहती हैं, जिससे स्थानीय विकास परियोजनाओं को प्रभावी ढंग से निष्पादित करने की उनकी क्षमता सीमित हो जाती है। आरबीआई की रिपोर्ट के अनुसार, पंचायती राज संस्थाओं को 95% राजस्व केंद्र एवं राज्य सरकारों से मिलने वाले अनुदान के जरिये आता है, जिससे उनकी वित्तीय स्वायत्तता सीमित हो जाती है। स्थानीय करों के माध्यम से उत्पन्न राजस्व कुल राजस्व में केवल 1.1% का योगदान देता है। अपर्याप्त कर संग्रह क्षमता, ऋण धारण क्षमता की कमी, और अपर्याप्त वित्तीय पारदर्शिता सहित संस्थागत कमजोरियां उनकी प्रभावशीलता को कमजोर करती हैं। राज्य वित्त आयोगों की स्थापना में विलंब भी पंचायतों के राजस्व में देरी का एक कारण है।
- **प्रशासनिक चुनौतियां:** प्रशासनिक अक्षमता और नौकरशाही की उदासीनता पंचायती राज संस्थाओं की विफलता का एक अन्य कारण रही है। सरकार के अधिक हस्तक्षेप, नौकरशाही बाधाएँ और राजनीतिक प्रभाव से अक्सर पंचायती राज संस्थाओं की स्वायत्तता और निर्णय लेने की क्षमता कमजोर होती है। निर्वाचित प्रतिनिधियों और पदाधिकारियों के लिए अपर्याप्त प्रशिक्षण और कौशल विकास कार्यक्रम की कमी भी उनके प्रभावी ढंग से कार्य करने में बाधा डालती है। भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और निष्क्रियता के कारण सरपंच या पंचायत सदस्य अक्सर ग्राम सभा की बैठकें नहीं बुलाते हैं, जिससे ग्रामीणों को पूरी तरह से अनभिज्ञ रखा जाता है।
- **राजनीतिक हस्तक्षेप:** पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली में राजनीतिक हस्तक्षेप एक महत्वपूर्ण चुनौती है। प्रमुख भूस्वामी समूहों का प्रतिरोध, विशेषकर बिहार और राजस्थान जैसे राज्यों में जातिगत पदानुक्रम के कारण, सुधारों को अवरुद्ध करता है। स्थानीय नेताओं और समुदाय के सदस्यों के बीच संबंधों में जटिलताएँ और राजनीतिक लाभ के लिए कर लगाने में अनिच्छा पंचायत की वित्तीय स्थिति को कमजोर करती है। हालांकि महिलाओं और विभिन्न सामाजिक समूहों के लिए आरक्षण के बावजूद, ग्रामीण इलाकों में संरचनात्मक असमानता और भेदभाव के कारण उन्हें अभी भी बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है।
- **क्षमता निर्माण के मुद्दे:** पंचायती राज संस्थाओं में प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी और प्रशासनिक बुनियादी ढांचे का अभाव राजस्व सृजन और प्रभावी कार्यान्वयन में चुनौतियां पैदा करता है। अशिक्षा और ग्रामीणों की निर्धनता भी एक विकट समस्या है, जिससे ग्रामीण समुदाय और नेतृत्व अपने संकीर्ण स्तरों से ऊपर नहीं उठ पाते हैं, और पंचायती राज की आवश्यकता और महत्व के बारे में अज्ञानतावश कुछ भी नहीं कर पाते । प्रभावी भूमि प्रबंधन के लिए नवीनतम तकनीकों और विधियों पर सरकारी अधिकारियों और स्थानीय निकायों को प्रशिक्षण देना आवश्यक है।

भूमि सुधार और पंचायती राज के बीच संबंध

भूमि सुधार और पंचायती राज व्यवस्था भारत के ग्रामीण विकास के लिए परस्पर जुड़े हुए हैं, जहाँ एक का सफल कार्यान्वयन दूसरे की प्रभावशीलता को सीधे प्रभावित करता है।

परस्पर संबंध और समन्वय

भूमि सुधारों का उद्देश्य कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अतीत से विरासत में मिली बाधाओं को दूर करना और कृषि व्यवस्थाओं के भीतर विद्यमान शोषणकारी एवं सामाजिक अन्याय के सभी तत्वों को समाप्त करना था। ये उद्देश्य पंचायती राज व्यवस्था के लक्ष्यों के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं, क्योंकि पंचायती राज का लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों में स्वशासन और संसाधनों पर लोगों के नियंत्रण का ढांचा प्रस्तुत करना है।

स्वतंत्रता के बाद, भूमि सुधारों के साथ-साथ ग्राम पंचायत व्यवस्था भी लागू की गई जो निर्वाचक सिद्धांत के व्यापक मताधिकार पर आधारित थी। ग्रामीण स्तर के भूमि संसाधनों पर ग्रामीण पंचायत का नियंत्रण हो गया। यह कदम सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक महत्व का था, क्योंकि यह सुनिश्चित करता था कि भूमि से संबंधित निर्णय स्थानीय स्तर पर लिए जाएं, जिससे ग्रामीण समुदायों की भागीदारी और स्वामित्व बढ़ता था। इस प्रकार, भूमि सुधारों ने एक अधिक न्यायसंगत आर्थिक आधार प्रदान किया, जिस पर पंचायती राज संस्थाएं ग्रामीण विकास और सामाजिक न्याय के लिए अपनी भूमिका निभा सकती थीं।

2.9 पंचायती राज की भूमिका

पंचायती राज संस्थाएं भूमि प्रशासन और ग्रामीण विकास में कई महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाती हैं:

- **भूमि विवादों का समाधान:** ग्राम पंचायतें भूमि विवादों के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे आबादी भूमि और चरागाह पर अतिक्रमण को रोकने, जलाशयों, नालों और गोचर भूमियों में अनाधिकृत अतिक्रमणों को रोकने का कार्य करती हैं। ग्राम कचहरी, जो न्यायपीठ के रूप में कार्य करती है, का मुख्य कार्य पक्षकारों के बीच सौहार्दपूर्ण समझौता कराना है, और यह वाद या मामले का सही समाधान खोजने के लिए अन्वेषण करती है। हाल ही में, भूमि दस्तावेजों की अशुद्धियों के समाधान के लिए विशेष अभियान चलाए जा रहे हैं, जिसमें सरकार पंचायतों/गाँवों तक पहुँचकर जमीन संबंधी समस्याओं का निपटारा करती है, जैसे कि संयुक्त जमाबंदी का विभाजन, त्रुटियों का परिमार्जन, और छूटी हुई जमाबंदियों को ऑनलाइन करना।
- **भूमि अभिलेखों का प्रबंधन:** पंचायती राज संस्थाएं भूमि अभिलेखों के प्रबंधन में भी शामिल हैं। उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 के तहत, गाँव सभा और भूमि प्रबंधक समिति को गाँव समाज में निहित संपत्ति का पर्यवेक्षण, निरीक्षण, संरक्षण, प्रबंधन और नियंत्रण करने का अधिकार दिया गया है। ग्राम पंचायत की भूमि प्रबंधक समिति, जिसका अध्यक्ष प्रधान और सचिव लेखपाल होता है, ग्राम पंचायत के अधिकार क्षेत्र में आने वाली भूमि के प्रबंधन, देखभाल, संरक्षण एवं नियंत्रण का कार्य करती है। डिजिटल इंडिया भूमि अभिलेख आधुनिकीकरण कार्यक्रम के तहत, भूमि अभिलेखों के कंप्यूटरीकरण और भू-संपत्ति मानचित्रों के डिजिटलीकरण का कार्य किया जा रहा है, जिसमें पंचायती राज मंत्रालय भी शामिल है। स्वामित्व योजना, जो ग्रामीण आबादी वाले क्षेत्रों में भूमि मानचित्रण के लिए ड्रोन तकनीक का उपयोग करती है, पंचायती राज मंत्रालय और राज्य पंचायती राज विभागों का एक संयुक्त प्रयास है। यह योजना ग्रामीणों को उनकी जमीन का डिजिटल रिकॉर्ड हासिल करने में मदद करती है और संपत्ति से संबंधित विवादों को कम करती है।
- **ग्रामीण विकास योजनाओं का कार्यान्वयन:** पंचायती राज संस्थाएं ग्रामीण विकास योजनाओं के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जिनमें भूमि से संबंधित योजनाएं भी शामिल हैं। वे आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करती हैं और उनका निष्पादन करती हैं। कुछ प्रकरणों में, पंचायती राज संस्थाओं द्वारा स्व-राजस्व को बढ़ाने हेतु सार्वजनिक भूमि का उपयोग किया गया है, जैसे बाजार परिसरों का विकास और मत्स्य तालाबों का निर्माण। मनरेगा द्वारा प्राप्त कोष का उपयोग करते हुए ऐसी पहलें की गई हैं, जिससे ग्राम पंचायतों को स्व-राजस्व को बढ़ाने में सहायता मिली है।

2.10 चुनौतियां और समकालीन बहस

भूमि सुधारों के कार्यान्वयन में पंचायती राज संस्थाओं के सामने कई चुनौतियां हैं, जो उनके प्रभावी कामकाज को बाधित करती हैं।

- **कार्यान्वयन में चुनौतियां:** पंचायतों में महिलाओं और विभिन्न सामाजिक समूहों के आरक्षण के बावजूद, ग्रामीण इलाकों में संरचनात्मक असमानता और भेदभाव के कारण उन्हें अभी भी बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। ग्राम सभा को मजबूत करने के प्रयासों की कमी और राज्य कानूनों में संशोधन करने में राज्यों की रुचि की कमी के कारण भी पेसा (Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act) का कार्यान्वयन संतोषजनक नहीं रहा है। पंचायती राज व्यवस्था में भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और निष्क्रियता जैसे मुद्दे भी सामने आते हैं, जिससे ग्राम सभा की बैठकें नियमित रूप से नहीं होतीं और ग्रामीण पूरी तरह से अनभिज्ञ रह जाते हैं।
- **स्थानीय स्तर पर राजनीतिक हस्तक्षेप:** भूमि सुधारों के सफल कार्यान्वयन के लिए मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति एक अहम कारक है। हालांकि, स्थानीय स्तर पर राजनीतिक हस्तक्षेप और प्रमुख भूस्वामी समूहों का प्रतिरोध सुधारों को अवरुद्ध कर सकता है। यह हस्तक्षेप भूमि आवंटन नीतियों में भी देखा जाता है, जहाँ शहरी क्षेत्रों में राजकीय विभागों को भूमि के नि:शुल्क आवंटन के लिए स्थानीय स्तर पर अधिकार दिए गए हैं, लेकिन बड़े आवंटनों के लिए राज्य सरकार की अनुमति आवश्यक होती है।
- **भूमि बाजार उदारीकरण और पंचायती राज पर प्रभाव:** भूमि बाजार उदारीकरण की नीतियां पंचायती राज संस्थाओं पर प्रभाव डाल सकती हैं। जबकि स्वामित्व योजना जैसी पहलें ग्रामीण योजना के लिए सटीक भू-रिकॉर्ड बनाने और संपत्ति से संबंधित विवादों को कम करने में मदद कर रही हैं, साथ ही ग्रामीण भारत के नागरिकों को वित्तीय स्थिरता प्रदान कर रही हैं। हालांकि, कॉर्पोरेट एजेंसियों के लिए कृषि भूमि पर सीलिंग प्रावधानों में ढील दी गई है और किरायेदारी को उदार बनाने के लिए आक्रामक आधिकारिक वकालत

की जा रही है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि के स्वामित्व और उपयोग के पैटर्न को बदल सकता है, जिससे पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका और अधिकारों पर बहस छिड़ सकती है।

- **डिजिटल भूमि अभिलेखों में पंचायती राज की भूमिका पर बहस:** डिजिटल इंडिया भूमि अभिलेख आधुनिकीकरण कार्यक्रम जैसे प्रयासों के बावजूद, पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका को और स्पष्ट करने की आवश्यकता है। हालांकि भूमि अभिलेखों के कंप्यूटरीकरण और डिजिटलीकरण में प्रगति हुई है , यह स्पष्ट नहीं है कि पंचायती राज संस्थाएं इन डिजिटल अभिलेखों के प्रबंधन और अद्यतन में कितनी प्रत्यक्ष भूमिका निभा रही हैं। डिजिटल क्रांति ने ग्राम पंचायतों को समृद्ध बनाने में विशेष भूमिका निभाई है, जिससे ग्रामीण जन सामान्य सरकार की भावी योजनाओं से पूर्णतः परिचित हो रहा है। हालांकि, यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि डिजिटल विभाजन के कारण हाशिए पर पड़े समुदाय पीछे न छूटें और पंचायती राज संस्थाएं इस प्रक्रिया में एक सेतु का काम करें।

2.11 निष्कर्ष और भविष्य की राह

भारत में भूमि सुधार और पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण विकास और सामाजिक न्याय के दो महत्वपूर्ण पहलू रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद से, बिचौलियों के उन्मूलन, काश्तकारी सुधारों और भूमि हदबंदी कानूनों के माध्यम से भूमि स्वामित्व में समानता लाने का प्रयास किया गया है। इन प्रयासों ने जमींदारी प्रथा को समाप्त करने और किसानों को कुछ हद तक सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण सफलता हासिल की है, विशेषकर पश्चिम बंगाल और केरल जैसे राज्यों में। वहीं, पंचायती राज व्यवस्था ने 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत किया है, जिससे स्थानीय स्वशासन और सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा मिला है।

हालांकि, इन दोनों क्षेत्रों में चुनौतियां अभी भी बनी हुई हैं। भूमि सुधारों में कानूनी खामियों, प्रशासनिक अक्षमता और राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण भूमि का असमान वितरण और भूमिहीनों की समस्या बनी हुई है। इसी तरह, पंचायती राज संस्थाएं वित्तीय निर्भरता, प्रशासनिक बाधाओं, राजनीतिक हस्तक्षेप और क्षमता निर्माण की कमी से जूझ रही हैं। इन चुनौतियों का मूल कारण अक्सर राज्य सरकारों द्वारा शक्तियों और संसाधनों के अपर्याप्त हस्तांतरण में निहित होता है, जिससे स्थानीय निकायों की स्वायत्तता और प्रभावशीलता सीमित हो जाती है।

भविष्य की राह के लिए, इन दोनों प्रणालियों को मजबूत करने के लिए एक समन्वित और बहुआयामी दृष्टिकोण आवश्यक है:

- **प्रशासनिक पारदर्शिता और डिजिटल रिकॉर्ड प्रबंधन:** भूमि अभिलेखों के डिजिटलीकरण को गति देना और विशिष्ट भूमि खंड पहचान संख्या (ULPIN) जैसी पहलों को सार्वभौमिक बनाना आवश्यक है। पंचायती राज संस्थाओं को इन डिजिटल अभिलेखों के प्रबंधन में अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए, जिससे भूमि विवाद कम हों और पारदर्शिता बढ़े।
- **न्यायिक प्रक्रियाओं में सुधार:** भूमि संबंधी विवादों के त्वरित समाधान के लिए न्यायिक प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करना और भूमि न्यायालयों को मजबूत करना महत्वपूर्ण है। ग्राम पंचायतों को भूमि विवाद समाधान में अधिक अधिकार और सहायता प्रदान की जानी चाहिए।
- **क्षमता निर्माण और प्रशिक्षण:** पंचायती राज प्रतिनिधियों और अधिकारियों के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए, ताकि वे अपनी भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को प्रभावी ढंग से निभा सकें, विशेषकर भूमि प्रशासन और विकास योजनाओं के कार्यान्वयन में।
- **वित्तीय स्वायत्तता:** पंचायती राज संस्थाओं की वित्तीय निर्भरता को कम करने के लिए उन्हें स्थानीय कर राजस्व उत्पन्न करने की अधिक शक्तियाँ दी जानी चाहिए, और केंद्र व राज्य सरकारों से धन का समय पर और पर्याप्त हस्तांतरण सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
- **सामुदायिक भागीदारी:** ग्राम सभाओं को और अधिक सशक्त बनाना चाहिए ताकि वे भूमि संबंधी निर्णयों और विकास योजनाओं में सक्रिय रूप से भाग ले सकें। सामाजिक और लैंगिक पूर्वाग्रहों को दूर करने के लिए विशेष प्रयास किए जाने चाहिए, जिससे महिलाओं और हाशिए पर पड़े वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित हो सके।

भूमि सुधार और पंचायती राज का सफल एकीकरण ही ग्रामीण भारत में "ग्राम स्वराज" के महात्मा गांधी के सपने को साकार कर सकता है, जहाँ आर्थिक न्याय और लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण साथ-साथ चलते हैं, जिससे एक समतावादी और समृद्ध समाज का निर्माण होता है।

2.12 बोध आधारित प्रश्न -

1. भारत में भूमि सुधारों का प्रमुख उद्देश्य क्या था?
2. 73वें संविधान संशोधन (1992) का मुख्य प्रावधान क्या था
3. भूमि सुधारों में "चकबंदी" का क्या महत्व है?
4. पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण विकास में किस प्रकार सहायक है?
5. भूमि सुधार और पंचायती राज व्यवस्था में आपसी संबंध क्यों है?

2.13 सन्दर्भ सूची /उपयोगी पुस्तके

- लाल एवं लाल; भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण और विशलेषण, शुभम पब्लिकेशन
- https:// www.ncert.nic.in
- https://moef.gov.in
- https:// unfccc.int
- htttps://krishasevakendra.in
- https://www.nabard.org
- वी. के. पुरी एवं एस. के. मिश्र ; भारतीय अर्थव्यवस्था, पर्यावरण तथा विकास, हिमालया पब्लिकेशन ISBN: 978-93-5840-147-
- ऋतु शुक्ला (असि, प्रो., राजकीय महाविद्यालय, तिलहर, शाहजहाँपुर(); पर्यावरण संरक्षण-एक दार्शनिक अध्ययन, ISSN: 2395-6011
- रमेश सिंह ; भारतीय अर्थव्यवस्था, धारणीयता एवं जलवायु परिवर्तन, मैग्रा हिल पब्लिकेशन ISBN : 978-93-5316-6308-0

इकाई-3 भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग

इकाई की रुपरेखा

3.1. उद्देश्य

3.2. प्रस्तावना

3.3. लघु एवं कुटीर उद्योग की परिभाषा और अंतर

3.4. आर्थिक विकास में लघु उद्योगों की भूमिका

3.5. सरकारी नीतियाँ

3.6. कुटीर एवं लघु उद्योगों के समक्ष चुनौतियाँ

3.7. लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रमुख श्रेणियाँ:

3.8. निष्कर्ष

3.9. बोध आधारित प्रश्न

3.10. सन्दर्भ सूची/उपयोगी पुस्तके

3.1 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन से विद्यार्थी:

- लघु एवं कुटीर उद्योगों की परिभाषा, विशेषताएँ और वर्गीकरण को समझ सकेंगे
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में इन उद्योगों की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे
- स्वरोजगार, महिला सशक्तिकरण और स्थानीय संसाधनों के उपयोग की समझ विकसित कर सकेंगे
- इन उद्योगों के विकास में आने वाली चुनौतियों और सरकारी प्रयासों को जान सकेंगे
- आर्थिक आत्मनिर्भरता और सतत विकास में इन उद्योगों के योगदान को पहचान सकेंगे
- विभिन्न योजनाओं जैसे PMEGP, MSME, SFURTI आदि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- लघु उद्योगों के लिए विपणन, वित्त और तकनीकी सहायता की आवश्यकता को समझ सकेंगे
- उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक कौशल और नीति-समर्थन को आत्मसात कर सकेंगे

3.2 प्रस्तावना

भारत एक विविधतापूर्ण और पारंपरिक रूप से समृद्ध देश है, जहाँ लघु एवं कुटीर उद्योग (Small and Cottage Industries) प्राचीन काल से ही देश की अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग रहे हैं। इन उद्योगों की विशेषता यह रही है कि ये कम पूँजी, सीमित तकनीक और पारंपरिक कौशल पर आधारित होते हैं, और अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में चलते हैं। ये उद्योग ग्रामीण रोजगार, महिला सशक्तिकरण, स्थानीय संसाधनों के उपयोग और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

3.3 लघु एवं कुटीर उद्योग की परिभाषा

*** लघु उद्योग (Small Scale Industries - SSI):**

वे विनिर्माण या सेवा क्षेत्र के उद्योग जिनका निवेश (Plant & machinery) ₹10 करोड़ से कम हो (संशोधित परिभाषा 2020 के अनुसार), और टर्नओवर ₹50 करोड़ तक हो।

*** कुटीर उद्योग:**

ऐसे उद्योग जो पारिवारिक या सामूहिक स्तर पर, पारंपरिक विधियों और स्थानीय संसाधनों पर आधारित होते हैं। इनमें वस्त्र, हस्तशिल्प, कागज, धातु, लकड़ी, मिट्टी, खाद्य प्रसंस्करण आदि शामिल हैं।

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSME) क्षेत्र देश के सामाजिक-आर्थिक विकास में एक प्रमुख योगदानकर्ता है।

भारत में, इस क्षेत्र ने देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) और निर्यात में अपने योगदान के कारण महत्वपूर्ण महत्व प्राप्त किया है। इस क्षेत्र ने विशेष रूप से भारत के अर्ध-शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता विकास के संबंध में भी बहुत योगदान दिया है।

आत्मनिर्भर भारत अभियान योजना के तहत 13 मई, 2020 को सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSME) की परिभाषा में संशोधन की घोषणा की गई थी। सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय ने 1 जून, 2020 की अपनी राजपत्र अधिसूचना के माध्यम से एमएसएमई की ऊपर की परिभाषा और मानदंडों की घोषणा की है। एमएसएमई के लिए नया वर्गीकरण 1 जुलाई, 2020 से लागू हुआ।

इसलिए, आत्मनिर्भर भारत अभियान योजना के तहत सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSME) के नए वर्गीकरण के अनुसार, उद्यमों को संयंत्र और मशीनरी और टर्नओवर में निवेश मानदंडों के आधार पर परिभाषित किया गया है।

भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों का इतिहास:

- वैदिक काल से ही भारत में कुटीर उद्योग जैसे वस्त्र निर्माण, धातुकारी, काष्ठ शिल्प, मृत्तिका शिल्प आदि का प्रचलन रहा है।
- मध्यकाल में ये उद्योग नगर व्यवस्था का आधार थे।
- औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश नीति ने इन्हें क्षति पहुँचाई, विशेष रूप से हस्तकरघा और वस्त्र उद्योग को।
- स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने इन उद्योगों को पुनर्जीवित करने के लिए अनेक योजनाएँ और संस्थाएँ स्थापित कीं।

4. लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्त्व:

लघु और कुटीर उद्योगों में अंतर: प्राथमिक अंतर उपयोग किए जाने वाले श्रम में है। लघु उद्योग बाहरी श्रम को नियोजित करते हैं और आधुनिक और पारंपरिक दोनों तकनीकों का उपयोग करते हैं। इसके विपरीत, कुटीर उद्योग मुख्य रूप से पारिवारिक श्रम पर निर्भर होते हैं और पारंपरिक उत्पादन तकनीकों पर निर्भर होते हैं।

लघु एवं कुटीर उद्योगों को सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम विकास (एमएसएमईडी) अधिनियम, 2006 के अंतर्गत दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

- **विनिर्माण उद्यम:** ये उद्यम उद्योग विकास और विनियमन अधिनियम, 1951 की पहली अनुसूची में निर्दिष्ट उद्योगों से संबंधित वस्तुओं के उत्पादन पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका वर्गीकरण संयंत्र और मशीनरी में निवेश पर आधारित है।
- **सेवा उद्यम:** ये उद्यम सेवाएं प्रदान करने के लिए समर्पित होते हैं और इन्हें उपकरणों में निवेश के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

तुलना मानदंड	संयंत्र, मशीनरी या उपकरण में निवेश
अति लघु उद्योग	निवेश 1 करोड़ रुपये से अधिक नहीं और वार्षिक कारोबार 5 करोड़ रुपये से अधिक नहीं
लघु उद्यम	संयंत्र और मशीनरी या उपकरण में निवेश 10 करोड़ रुपये से अधिक नहीं और वार्षिक कारोबार 50 करोड़ रुपये से अधिक नहीं
मध्यम उद्यम	संयंत्र और मशीनरी या उपकरण में निवेश 50 करोड़ रुपये से अधिक नहीं और वार्षिक कारोबार 250 करोड़ रुपये से अधिक नहीं

3.4 आर्थिक विकास में लघु उद्योगों की भूमिका

लघु उद्योग किसी देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। यहाँ उनके कुछ प्रमुख योगदान दिए गए हैं:

- राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) के 73वें दौर (2015-16) के अनुसार, भारत में 633.88 लाख असंगठित गैर-कृषि एमएसएमई हैं, जो ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में 11.10 करोड़ से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान कर रहे हैं।
- लघु क्षेत्र ने 2015-16 में 31.95 लाख लोगों को रोजगार प्रदान किया, जो एमएसएमई क्षेत्र में कुल रोजगार का लगभग 2.88 प्रतिशत है।
- लघु उद्योग अपनी श्रम-प्रधान प्रकृति के कारण भारत जैसे विकासशील देशों के आर्थिक विकास के लिए विशेष रूप से लाभकारी हैं, जिससे सीमित पूंजी का कुशल उपयोग संभव हो पाता है।
- वे धन असमानताओं को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि पूंजी और अधिशेष बड़ी संख्या में लोगों के बीच वितरित किया जाता है।
- ये उद्योग क्षेत्रीय औद्योगिक विकास को बढ़ावा देते हैं और क्षेत्रीय असमानताओं को संतुलित करने में मदद करते हैं।
- लघु उद्योग स्थानीय संसाधनों का उपयोग करते हैं, जिनमें पूंजी और उद्यमशीलता कौशल शामिल हैं, जो अन्यथा अप्रयुक्त रह जाते हैं।
- इन उद्योगों ने देश के औद्योगिक विकास और विविधीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।
- इन उद्योगों में नियोक्ताओं और कर्मचारियों के बीच सीधे और सौहार्दपूर्ण संबंध श्रम शोषण और औद्योगिक विवादों को न्यूनतम करते हैं।

उल्लेखनीय तथ्य

- इससे पहले लघु उद्योगों के लिए एक अलग मंत्रालय था। हालाँकि, 9 मई 2007 को इसे कृषि और ग्रामीण उद्योग मंत्रालय के साथ मिलाकर एमएसएमई मंत्रालय बना दिया गया।
- सितंबर 2015 में, उद्योग आधार ज्ञापन (UMA) ने जिला उद्योग केंद्र (DIC) में पंजीकरण के लिए लघु उद्योगों द्वारा उपयोग की जाने वाली पूर्व प्रणाली का स्थान ले लिया।

हाल ही में हुए विकास

MSMEs में हाल ही में हुए प्रमुख विकासों में शामिल हैं:

- MSMEs के निर्यात में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है, जो वर्ष 2021 में 3.95 लाख करोड़ रुपये (US$ 45.5 बिलियन) से बढ़कर वर्ष 2025 में 12.39 लाख करोड़ रुपये हो गया है, जो भारत की अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने और वैश्विक व्यापार को मजबूत करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करता है। वर्ष 2025 में निर्यात करने वाले MSMEs की कुल संख्या भी बढ़कर वर्ष 2025 में 1,73,350 हो गई है।
- अरागेन लाइफ साइंसेज ने हैदराबाद में अपनी सुविधा का विस्तार करने के लिए 2,000 करोड़ रुपये (US$ 239 मिलियन) के निवेश की घोषणा की है, जिसका लक्ष्य 1,500 नए रोजगार सृजित करना और वैश्विक जीवन विज्ञान उद्योग के लिए दवा खोज, विकास और विनिर्माण में अपनी क्षमताओं को बढ़ाना है। यह विस्तार भारत में अनुबंध अनुसंधान संगठनों (CROs) के केंद्र के रूप में हैदराबाद की बढ़ती प्रमुखता को रेखांकित करता है।
- 05 फरवरी, 2024 तक, उद्यम पोर्टल पर पंजीकृत एमएसएमई में महिलाओं के स्वामित्व वाली कंपनियों की हिस्सेदारी 20.5% है, जो रोजगार में 18.73% और कारोबार में 10.22% का योगदान देती हैं। विभिन्न पहलों से इस क्षेत्र में उनके विकास और सशक्तिकरण को समर्थन मिलता है।
- भारतीय रिजर्व बैंक ने 17 अगस्त, 2023 को फ्रिक्शनलेस क्रेडिट (PTPFC) पायलट प्रोजेक्ट के लिए पब्लिक टेक प्लेटफॉर्म शुरू करने की घोषणा की। PTPFC को रिजर्व बैंक इनोवेशन हब (RBIH) द्वारा बनाया गया है, जो केंद्रीय बैंक की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी है। पायलट प्रोजेक्ट का उद्देश्य उधारकर्ताओं और उधारदाताओं को जोड़ना है, जिससे छोटे ऋण की तलाश कर रहे लाखों व्यक्तियों के लिए ऋण अधिक सुलभ हो जाएगा। PTPFC सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) के लिए गैर-संपार्श्विक आधारित ऋण, 1.6 लाख रुपये (US$ 1,924.07) तक के किसान क्रेडिट कार्ड ऋण, डेयरी ऋण, व्यक्तिगत ऋण और गृह ऋण के वितरण को सक्षम करेगा।

लघु उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए सरकारी पहल

सरकार छोटे उद्योगों को ऋण, सब्सिडी और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से सहायता प्रदान करती है। यह आधुनिक तकनीक, बेहतर विपणन और कौशल विकास को बढ़ावा देती है। नीतियों का उद्देश्य उत्पादन को बढ़ावा देना, रोजगार सृजित करना और पूरे भारत में व्यापार वृद्धि में सुधार करना है।

संगठनात्मक पहल

- बोर्डों का गठन
- राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (एनएसआईसी) की स्थापना
- औद्योगिक सम्पदा का विकास
- जिला उद्योग केंद्र (डीआईसी) का निर्माण

वित्तीय पहल

- लघु उद्योग विकास निधि (एसआईडीएफ) - लघु उद्योगों के विकास, विस्तार, आधुनिकीकरण और पुनर्वास के लिए पुनर्वित्त सहायता प्रदान करने के लिए 1986 में स्थापित।
- नेशनल इक्विटी फंड (एनईएफ)
- एकल खिड़की योजना (एसडब्ल्यूएस) की शुरूआत
- अक्टूबर 1989 में लघु उद्योग विकास निधि (एसआईडीएफ) और राष्ट्रीय इक्विटी निधि (एनईएफ) को मिलाकर भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी) की स्थापना की गई।

राजकोषीय पहल

- एक करोड़ रुपये तक के कारोबार वाले लघु उद्योगों को उत्पाद शुल्क से पूर्ण छूट।

- लघु उद्योगों द्वारा उपयोग किए जाने वाले कुछ प्रकार के कच्चे माल और घटकों के आयात पर सीमा शुल्क की रियायती दर।
- सरकारी खरीद कार्यक्रमों में लघु उद्योग क्षेत्र में निर्मित उत्पादों के लिए मूल्य और खरीद वरीयता।

तकनीकी सहायता

- लघु उद्योग विकास संगठन (एसआईडीओ) - 1954 में स्थापित, एसआईडीओ लघु उद्योगों को तकनीकी, प्रबंधकीय, आर्थिक और विपणन सहायता प्रदान करता है।
- ग्रामीण प्रौद्योगिकी उन्नयन परिषद (सीएआरटी) - 1982 में स्थापित, सीएआरटी ग्रामीण उद्योगों को तकनीकी सहायता प्रदान करता है।
- प्रौद्योगिकी विकास एवं आधुनिकीकरण कोष (टीडीएमएफ) - निर्यातोन्मुख इकाइयों के तकनीकी उन्नयन एवं आधुनिकीकरण के लिए स्थापित किया गया।

लघु उद्योगों के लिए वस्तुओं का आरक्षण

- लघु उद्योग क्षेत्र के लिए कुछ वस्तुओं को आरक्षित करने की नीति 1967 में लघु उद्योगों को बड़े पैमाने की इकाइयों के साथ प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए शुरू की गई थी।
- आरक्षण नीति की समीक्षा 1997 में आबिद हुसैन समिति द्वारा की गई, जिसने सिफारिश की कि इस नीति को त्याग दिया जाना चाहिए क्योंकि इससे लघु उद्योगों की प्रतिस्पर्धात्मकता कम हो रही थी।

3.5 सरकारी नीतियाँ

भारत सरकार ने देश में एमएसएमई के विकास के लिए विभिन्न नीतियाँ बनाई हैं

- वित्त वर्ष 2026 के केंद्रीय बजट में एमएसएमई के लिए निवेश सीमा 2.5 गुना बढ़ा दी गई है और टर्नओवर सीमा को दोगुना कर दिया गया है। विशेष रूप से, नई सीमाएँ इस प्रकार हैं:
- सूक्ष्म उद्यमों के लिए, निवेश सीमा अब 2.5 करोड़ रुपये (यूएस $ 0.3 मिलियन) है, जिसमें टर्नओवर सीमा 10 करोड़ रुपये (यूएस $ 1.2 मिलियन) है।
- छोटे उद्यमों के लिए, निवेश सीमा 25 करोड़ रुपये (यूएस $ 2.9 मिलियन) निर्धारित की गई है, और टर्नओवर सीमा 100 करोड़ रुपये (यूएस $ 11.5 मिलियन) है।
- मध्यम उद्यमों के लिए, निवेश सीमा अब 125 करोड़ रुपये (यूएस $ 14.4 मिलियन) है, जबकि टर्नओवर सीमा 500 करोड़ रुपये (यूएस $ 57.6 मिलियन) है।
- केंद्रीय सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय को 2018-19 के लिए 125 करोड़ रुपये का आवंटन प्राप्त हुआ है। वित्त वर्ष 26 के केंद्रीय बजट में 23,168 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया, जो वित्त वर्ष 25 के बजट की तुलना में 4.6% की वृद्धि दर्शाता है।
- दिसंबर 2024 में, 5.70 करोड़ एमएसएमई, 24.14 करोड़ रोजगार के साथ उद्यम पंजीकरण पोर्टल और उद्यम सहायता मंच (यूएपी) पर पंजीकृत हैं।
- प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (पीएमएमवाई) के तहत, वित्त वर्ष 25 में (21 फरवरी 2025 तक), गैर-कॉर्पोरेट और गैर-कृषि एमएसई को 4.2 करोड़ मुद्रा ऋण के तहत 4.14 लाख करोड़ रुपये (47.6 बिलियन अमेरिकी डॉलर) मंजूर किए गए।
- प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के तीसरे कार्यकाल के पहले 100 दिनों में, प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (पीएमईजीपी) के तहत 3,148 करोड़ रुपये (377 मिलियन अमेरिकी डॉलर) से अधिक ऋण वितरित किए गए हैं। इस पहल से 26,000 से अधिक सूक्ष्म उद्यमों की स्थापना हुई है और लगभग 210,000 नौकरियों का सृजन हुआ है।
- एमएसएमई मंत्रालय ने महिला स्वामित्व वाले सूक्ष्म और लघु उद्यमों के लिए सीजीटीएमएसई ऋण गारंटी कवरेज को बढ़ाकर 90%

कर दिया है, जिससे लगभग 27 लाख महिला-नेतृत्व वाले एमएसई को लाभ होगा और अगले दो वर्षों में 5 लाख करोड़ रुपये (59.94 बिलियन अमेरिकी डॉलर) की ऋण गारंटी प्रदान करने के सरकार के लक्ष्य को समर्थन मिलेगा।

- सूक्ष्म एवं लघु उद्यमों के लिए ऋण गारंटी कोष (सीजीटीएमएसई) ने वित्त वर्ष 24 में 2 लाख करोड़ रुपये (23.98 बिलियन अमेरिकी डॉलर) की गारंटी को मंजूरी दी, जो किसी एक वित्त वर्ष में अब तक का सबसे अधिक है, जो पिछले वर्ष के आंकड़े से दोगुना है, जिसका उद्देश्य पात्र एमएसएमई को संपार्श्विक-मुक्त ऋण की सुविधा प्रदान करना है।

- केंद्र सरकार ने एमएसएमई प्रदर्शन को बढ़ाने और तेज करने (आरएएमपी) कार्यक्रम के तहत राजस्थान के लिए 114.80 करोड़ रुपये (13.67 मिलियन अमेरिकी डॉलर) मंजूर किए, जिसका उद्देश्य राज्य में एमएसएमई उद्यमों को बढ़ावा देना और विकसित भारत-विकसित राजस्थान के लक्ष्यों में योगदान करने के लिए उनकी क्षमता को बढ़ाना है।

- केंद्र ने एमएसएमई प्रदर्शन को बढ़ाने और तेज करने (आरएएमपी) योजना के तहत राजस्थान, पश्चिम बंगाल और गुजरात सहित नौ राज्यों के लिए रणनीतिक निवेश योजनाओं (एसआईपी) को मंजूरी दी, जिसमें कुल 713 करोड़ रुपये (85.49 मिलियन अमेरिकी डॉलर) का वित्त पोषण है, जिसका उद्देश्य अनुपालन लागत को कम करना और सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों के लिए ऋण पहुंच में सुधार करना है। आत्मनिर्भर भारत (एसआरआई) फंड, जिसमें 50,000 करोड़ रुपये (6 बिलियन अमेरिकी डॉलर) का कोष है, ने आत्मनिर्भर भारत पैकेज के तहत कृषि, फार्मा, ऑटो और रसायन जैसे क्षेत्रों का समर्थन करते हुए 425 एमएसएमई में 7,593 करोड़ रुपये (910 मिलियन अमेरिकी डॉलर) का निवेश किया है। अंतरिम बजट 2024-2025 में, 50 साल के ब्याज मुक्त ऋण की पेशकश करते हुए कुल 1 लाख करोड़ रुपये (~ 12 बिलियन अमेरिकी डॉलर) के कोष की स्थापना की घोषणा की गई थी। इस पहल का उद्देश्य उभरते हुए क्षेत्रों में अनुसंधान और नवाचार को बढ़ाने के लिए निजी क्षेत्र, विशेष रूप से एमएसएमई को प्रोत्साहित करना है।

3.6 कुटीर एवं लघु उद्योगों के समक्ष चुनौतियाँ

कुटीर और लघु उद्योगों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनके पास अपर्याप्त धन, कड़ी प्रतिस्पर्धा और आधुनिक तकनीक की कमी है। खराब मार्केटिंग, कच्चे माल की कमी और सरकारी नियम भी ऐसी समस्याएं पैदा करते हैं जो विकास को धीमा कर देती हैं।

धन की कमी

कुटीर और लघु उद्योग कम धन के साथ संघर्ष करते हैं। बैंक ऋण देने में हिचकिचाते हैं। उच्च ब्याज दरें उधार लेना मुश्किल बनाती हैं। मालिक व्यक्तिगत बचत या स्थानीय उधारदाताओं पर निर्भर रहते हैं। सीमित धन उत्पादन को प्रभावित करता है। वे अपने व्यवसाय का विस्तार नहीं कर सकते। उचित धन के बिना, कच्चा माल और नई तकनीक खरीदना बहुत कठिन हो जाता है।

कठिन प्रतिस्पर्धा

इन उद्योगों को बड़ी कंपनियों से कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। बड़े पैमाने के उद्योग कम दरों पर थोक में सामान बनाते हैं। उनके पास बेहतरीन मार्केटिंग होती है और उनके उत्पाद ज़्यादा ग्राहकों तक पहुँचते हैं। छोटे पैमाने के व्यवसायों के लिए अपने उत्पादों को बेचना मुश्किल होता है। अगर किसी छोटे व्यवसाय ने अच्छी ब्रांड प्रतिष्ठा नहीं बनाई है, तो वह ग्राहकों को खो देता है। बाजार में बने रहना उनके लिए बड़ी बाधा बन जाता है।

सीमित कच्चा माल

छोटे उद्योगों को कच्चा माल पाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। वे स्थानीय आपूर्तिकर्ताओं पर निर्भर रहते हैं। सामग्री की कीमतें बदलती रहती हैं। कभी-कभी, वे अच्छी गुणवत्ता वाली सामग्री नहीं खरीद पाते हैं। इसका असर अंतिम उत्पाद पर पड़ता है। अगर उन्हें समय पर कच्चा माल नहीं मिलता है, तो उत्पादन धीमा हो जाता है। देरी से उत्पादन से ग्राहक खो जाते हैं।

आधुनिक प्रौद्योगिकी का अभाव

कई कुटीर उद्योग अभी भी पुरानी मशीनों का उपयोग करते हैं। उनके पास नई तकनीक तक पहुंच नहीं है। पुराने तरीके उत्पादन को धीमा कर देते हैं। आधुनिक उपकरणों के बिना, वे बेहतर उत्पाद नहीं बना सकते। बड़े उद्योग उन्नत मशीनों का उपयोग करते हैं। इससे छोटे उद्योग कम प्रतिस्पर्धी हो जाते हैं। तकनीक को अपग्रेड करने के लिए पैसे की जरूरत होती है, जो छोटे व्यवसायों के पास नहीं है।

विपणन मुद्दे

छोटे व्यवसायों को अपने उत्पादों को बेचने में समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनके पास विज्ञापन के लिए पर्याप्त पैसा नहीं होता। बड़ी कंपनियों के पास बेहतर मार्केटिंग रणनीति होती है। कई छोटे उद्योग मौखिक बिक्री पर निर्भर करते हैं। उचित मार्केटिंग के बिना, वे अधिक ग्राहकों तक नहीं पहुँच सकते। इससे उनके व्यवसाय की वृद्धि प्रभावित होती है और उनकी कमाई कम हो जाती है।

सरकारी नियम और विनियम

छोटे उद्योग जटिल सरकारी नियमों से जूझते हैं। उन्हें अपना व्यवसाय चलाने के लिए कई लाइसेंस और मंज़ूरी की ज़रूरत होती है। इन नियमों का पालन करने में समय और पैसा लगता है। कुछ व्यवसाय सभी कानूनी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते हैं। अगर वे नियमों का पालन नहीं करते हैं, तो उन्हें जुर्माना या बंद होने का सामना करना पड़ता है। कई मालिकों को ये प्रक्रियाएँ बहुत मुश्किल लगती हैं।

कुशल श्रमिकों की कमी

कई छोटे उद्योगों में प्रशिक्षित कर्मचारी नहीं होते। कुशल कर्मचारी बड़े उद्योगों को प्राथमिकता देते हैं जो अधिक भुगतान करते हैं। उचित प्रशिक्षण के बिना, कर्मचारी उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद नहीं बना सकते। मालिकों के पास उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए पैसे नहीं होते। इससे उत्पादन और बिक्री प्रभावित होती है। कुशल श्रमिकों की कमी से छोटे व्यवसायों की वृद्धि कम हो जाती है।

परिवहन एवं भंडारण समस्याएं

छोटे उद्योगों को परिवहन संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनके पास अपने वाहन नहीं होते। वे स्थानीय परिवहन पर निर्भर रहते हैं, जो महंगा होता है। कई उद्योगों के पास कच्चे माल और तैयार माल के लिए उचित भंडारण की व्यवस्था नहीं होती। खराब परिवहन और भंडारण लागत में वृद्धि करता है। देरी से डिलीवरी से ग्राहकों का भरोसा प्रभावित होता है और बिक्री कम होती है|

उत्पादों की कम मांग

कुछ कुटीर उद्योग पारंपरिक उत्पाद बनाते हैं। इन उत्पादों की हमेशा मांग नहीं होती। ग्राहक आधुनिक और सस्ते विकल्प पसंद करते हैं। उच्च मांग के बिना, बिक्री कम रहती है। व्यवसाय जीवित रहने के लिए संघर्ष करते हैं। यदि उत्पाद नहीं बिकते हैं, तो मालिकों को नुकसान उठाना पड़ता है। छोटे पैमाने के उद्योगों के लिए नए बाजार खोजना मुश्किल है।

बिजली आपूर्ति संबंधी समस्याएं

कई छोटे उद्योग बिजली कटौती से पीड़ित हैं। बिजली के बिना, मशीनें काम करना बंद कर देती हैं। उत्पादन धीमा हो जाता है। कुछ व्यवसाय जनरेटर का उपयोग करते हैं, लेकिन ईंधन की लागत अधिक होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में, बिजली स्थिर नहीं है। ये मुद्दे लागत बढ़ाते हैं। सुचारू उत्पादन और व्यवसाय विकास के लिए नियमित बिजली आपूर्ति आवश्यक है।

3.7 लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रमुख श्रेणियाँ:

1. हस्तशिल्प और हथकरघा
2. लकड़ी एवं बांस आधारित उद्योग
3. कृषि आधारित उद्योग – जैम, अचार, तेल, डेयरी
4. खादी और ग्रामोद्योग
5. धातु, मिट्टी, कागज, पत्थर आधारित शिल्प
6. सेवा आधारित – ब्यूटी पार्लर, मरम्मत कार्य, सिलाई केंद्र

6. भारत सरकार की पहलें:

*** MSME अधिनियम (2006):**

MSME को परिभाषित कर उनके लिए अलग वित्तीय, तकनीकी और विपणन सहायता की व्यवस्था की गई।

*** प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP):**

KVIC के माध्यम से ₹25 लाख तक के उद्योग को सब्सिडी के साथ ऋण प्रदान किया जाता है।

*** SFURTI योजना:**

हस्तशिल्प और ग्राम उद्योगों के लिए क्लस्टर आधारित विकास योजना।

*** खादी ग्रामोद्योग आयोग (KVIC):**

खादी वस्त्र, ग्रामोद्योग और ग्रामीण रोजगार सृजन का प्रमुख निकाय।

*** डिजिटल MSME योजना:**

सूचना प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के लिए ई-कॉमर्स, क्लाउड कंप्यूटिंग, डिजिटलीकरण को बढ़ावा।

चुनौतियाँ:

*** वित्तीय संकट:**

छोटे उद्यमियों को बैंकों से ऋण प्राप्त करने में कठिनाई होती है। गैर-संस्थागत स्रोतों पर निर्भरता अधिक है।

*** विपणन की समस्या:**

गुणवत्तापूर्ण उत्पादों के बावजूद उचित बाजार नहीं मिल पाता। बिचौलियों द्वारा शोषण होता है।

*** तकनीकी पिछड़ापन:**

अधिकांश कुटीर उद्योग पारंपरिक तरीके से चलते हैं, जिससे उत्पादकता कम होती है।

*** प्रशिक्षण और कौशल की कमी:**

उद्यमियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण, डिज़ाइन, गुणवत्ता नियंत्रण की जानकारी नहीं होती।

*** प्रतिस्पर्धा:**

चीन, बांग्लादेश जैसे देशों से सस्ते उत्पादों की भरमार से भारतीय उद्योग दबाव में रहते हैं।

समाधानात्मक सुझाव:

1. माइक्रो फाइनेंस और SHGs के माध्यम से ऋण सुविधा को सुलभ बनाना
2. डिज़ाइन, पैकेजिंग और ब्रांडिंग में सहायता
3. "वन डिस्ट्रिक्ट वन प्रोडक्ट (ODOP)" जैसी योजनाओं को मजबूत करना
4. हस्तशिल्प मेलों, ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म (GeM, Amazon, Flipkart) के माध्यम से विपणन बढ़ाना
5. स्किल इंडिया और डिजिटल इंडिया के साथ MSME को जोड़ना

3.8 निष्कर्ष:

भारत के लघु एवं कुटीर उद्योग न केवल आर्थिक विकास के वाहक हैं, बल्कि सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण, सांस्कृतिक संरक्षण और रोजगार सृजन के साधन भी हैं। इन्हें 21वीं सदी की चुनौतियों के अनुसार तकनीकी, वित्तीय और विपणन सहायता प्रदान कर आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में और अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

3.9 बोध आधारित प्रश्न

1. लघु एवं कुटीर उद्योग में क्या अंतर है?
2. लघु उद्योगों की प्रमुख विशेषता क्या है?
3. PMEGP योजना का उद्देश्य क्या है?
4. KVIC किस क्षेत्र में कार्य करता है?
5. SFURTI योजना का मुख्य उद्देश्य क्या है?
6. लघु उद्योगों में महिलाओं की क्या भूमिका है?
7. लघु उद्योगों को कौन-सी प्रमुख चुनौतियाँ प्रभावित करती हैं?
8. लघु एवं कुटीर उद्योग आत्मनिर्भर भारत में कैसे योगदान देते हैं?

3.10 संदर्भ (References): /उपयोगी पुस्तके

1. MSME मंत्रालय रिपोर्ट, 2022-23
2. खादी और ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) – www.kvic.gov.in
3. योजना आयोग: लघु उद्योग विकास रिपोर्ट, 2011
4. वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार – Export Statistics, 2023
5. NITI Aayog Policy Papers on Rural Industries, 2021
6. Dr. T.N. Chaturvedi, "Cottage Industries in India", Publication Division
7. SFURTI Guidelines, MSME Ministry

इकाई-4 भारत की कृषि मूल्य नीति

इकाई की रुपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 भूमिका
4.3 कृषि मूल्य नीति की परिभाषा और उद्देश्य
4.4 न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP)
4.5 MSP की घोषणा का समय
4.6 मूल्य नीति के उद्देश्य
4.7 मूल्य नीति का कार्यान्वयन तंत्र
4.8 सुधारात्मक सुझाव:
4.9 हाल के सरकारी प्रयास
4.10 निष्कर्ष
4.11 बोध आधारित प्रश्न
4.12 सन्दर्भ सूची /उपयोगी पुस्तके

4.1 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन से विद्यार्थी:

- कृषि मूल्य नीति की अवधारणा, उद्देश्य और कार्यप्रणाली को समझ सकेंगे
- न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) की भूमिका और निर्धारण प्रक्रिया को जान सकेंगे
- मूल्य स्थिरता, किसान हित और उपभोक्ता संरक्षण के बीच संतुलन की आवश्यकता को समझ सकेंगे
- मूल्य नीति से जुड़े प्रमुख संस्थानों जैसे CACP, FCI आदि की भूमिका को पहचान सकेंगे
- मूल्य नीति के प्रभावों—सकारात्मक और नकारात्मक—का विश्लेषण कर सकेंगे
- कृषि उत्पादों के मूल्य निर्धारण में सरकार की भूमिका और चुनौतियों को समझ सकेंगे
- मूल्य नीति के सुधारात्मक सुझावों और वैकल्पिक दृष्टिकोणों पर विचार कर सकेंगे
- कृषि क्षेत्र में समावेशी और टिकाऊ विकास की दिशा में मूल्य नीति की भूमिका को आत्मसात कर सकेंगे

4.2 भूमिका

भारत में कृषि मूल्य नीति (Agricultural Price Policy) का मुख्य उद्देश्य किसानों को उनकी उपज का न्यायोचित मूल्य दिलाना, उपभोक्ताओं को किफायती दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना और देश में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना रहा है। यह नीति भारत सरकार द्वारा घोषित "न्यूनतम समर्थन मूल्य" (MSP) के माध्यम से लागू होती है, जिसका निर्धारण प्रमुख रूप से कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (CACP) करता है।

कृषि मूल्य नीति की समीक्षा करना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि यह न केवल किसानों की आय पर प्रभाव डालती है, बल्कि कृषि उत्पादन, निवेश, उपभोक्ता मूल्य और खाद्य सब्सिडी जैसी अनेक नीतियों को प्रभावित करती है।

4.3 कृषि मूल्य नीति की अवधारणा:

कृषि मूल्य नीति वह नीति है जिसके अंतर्गत सरकार कृषि उत्पादों के लिए मूल्य निर्धारित करती है और खरीद की गारंटी देती है। इसका मूल उद्देश्य किसानों को न्यूनतम लाभ सुनिश्चित करना है, ताकि वे कृषि में निवेश और उत्पादन जारी रखें। यह नीति विशेष रूप से न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP), अधिसूचित खरीद, बफर स्टॉक निर्माण और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) से जुड़ी होती है।

4.4 न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP):

MSP वह न्यूनतम मूल्य है जिस पर सरकार किसानों से फसल खरीदने की गारंटी देती है। इसे CACP की सिफारिशों के आधार पर घोषित किया जाता है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) भारत में किसानों को मूल्य अस्थिरता (Price Volatility) और शोषण (Exploitation) से बचाने हेतु एक **महत्वपूर्ण कृषि मूल्य निर्धारण तंत्र (Agricultural Pricing Mechanism) है।**

MSP यह सुनिश्चित करता है कि किसानों को उनकी उपज के लिए **न्यूनतम मूल्य की गारंटी (Guaranteed Minimum Price)** मिले, जिससे **कष्टपूर्ण बिक्री (Distress Selling)** से बचा जा सके और **मूलभूत आय (Basic Income)** सुनिश्चित हो।

*** शुरुआत:**

MSP की शुरुआत 1966-67 में की गई थी। प्रारंभ में केवल गेहूँ और धान पर यह लागू था, परंतु आज 23 फसलों के लिए MSP घोषित किया जाता है।

MSP की आवश्यकता:

- 2014 और 2015 के दोहरे सूखे ने किसानों को 2014 से कमोडिटी की कीमतों में गिरावट से पीड़ित होने के लिए मजबूर किया।
- नोटबंदी और जी एस टी लागू होने के दोहरे झटकों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था, मुख्य रूप से गैर-कृषि क्षेत्र, बल्कि कृषि को भी बहुत प्रभाबित किया ।
- 2016-17 के बाद अर्थव्यवस्था में मंदी के बाद महामारी ने यह सुनिश्चित किया कि अधिकांश किसानों के लिए स्थिति अनिश्चित बनी हुई है।
- डीजल, बिजली और उर्वरकों की ऊंची इनपुट कीमतों ने केवल दुख में योगदान दिया है।
- यह सुनिश्चित करता है कि किसानों को उनकी फसलों के लिए उचित मूल्य मिले, जो कृषि संकट और गरीबी को कम करने में मदद करता है। यह उन राज्यों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जहां कृषि आजीविका का एक प्रमुख स्रोत है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) के अंतर्गत कवर की गई फसलें

- **(कुल: 22 फसलें + 2 अतिरिक्त)**

खरीफ फसलें (Kharif Crops - 14):

- **अनाज (Cereals):** धान (Paddy), ज्वार (Jowar), बाजरा (Bajra), मक्का (Maize), रागी (Ragi)
- **दलहन (Pulses):** अरहर (Tur/Arhar), मूंग (Moong), उड़द (Urad)
- **तिलहन (Oilseeds):** मूंगफली (Groundnut), सोयाबीन (Soyabean), सूरजमुखी (Sunflower), तिल (Sesamum), नीगेर बीज (Niger seed)
- **अन्य:** कपास (Cotton)

रबी फसलें (Rabi Crops - 6):

- **अनाज:** गेहूं (Wheat), जौ (Barley)
- **दलहन:** चना (Gram), मसूर (Lentil)
- **तिलहन:** सरसों/रेपसीड (Rapeseed/Mustard), केसर (Safflower)

व्यावसायिक फसलें (Commercial Crops - 2):

- जूट (Jute), कोप्रा (Copra)

अतिरिक्त फसलें (Additional Crops - 2):

- **तोरिया (Toria) –** सरसों के आधार पर MSP निर्धारित
- **नारियल गिरी (De-husked Coconut) –** कोप्रा के आधार पर MSP

MSP निर्धारण की प्रक्रिया (MSP Fixation Mechanism)

सिफारिश – कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (CACP) द्वारा

- MSP के निर्धारण के लिए Commission for Agricultural Costs and Prices (CACP) मुख्य निकाय है। यह **कृषि मंत्रालय (Ministry of Agriculture)** के अधीन कार्य करता है।
- CACP निम्नलिखित कारकों (Factors) को ध्यान में रखकर सिफारिश करता है:

कारक (Factor)	विवरण (Explanation)
▪ उत्पादन लागत (Cost of Production)	▪ A2, A2+FL, C2 लागत को ध्यान में रखा जाता है: ▪ A2: नकद व प्रकार्य खर्च (Cash & Kind) ▪ A2+FL: पारिवारिक श्रम सहित ▪ C2: भूमि किराया व पूंजीगत लागत सहित
▪ मांग-आपूर्ति स्थिति (Demand-Supply Situation)	▪ किस फसल की कितनी आवश्यकता है और उपलब्धता कितनी है।
▪ बाजार मूल्य प्रवृत्तियाँ (Market Price Trends)	▪ पिछली फसलों के बाजार भाव की प्रवृत्ति।
▪ अंतर-फसल मूल्य समानता (Inter-Crop Price Parity)	▪ एक फसल की कीमत दूसरी से बहुत अधिक या कम न हो।
▪ उपभोक्ताओं पर प्रभाव (Impact on Consumers)	▪ MSP में बढ़ोतरी से उपभोक्ता कीमतों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।
▪ समग्र अर्थव्यवस्था पर प्रभाव (Overall Economy Impact)	▪ महंगाई, सब्सिडी और राजकोषीय भार पर प्रभाव।

4.5 MSP की घोषणा का समय (Timing of MSP Announcement):

MSP साल में दो बार घोषित की जाती है:

मौसम (Season)	समय (Timing)
खरीफ (Kharif)	आमतौर पर जून माह में
रबी (Rabi)	आमतौर पर अक्टूबर माह में

MSP लागत गणना (Cost Calculations used by CACP)

CACP (Commission for Agricultural Costs and Prices) तीन प्रकार की लागत के आधार पर MSP की सिफारिश करता है:

लागत अवधारणा (Cost Concept)	विवरण (Description)
A2	वह वास्तविक व्यय (Actual Paid-out Cost) जो किसान ने किया हो जैसे: बीज, उर्वरक (Fertilizers), डीज़ल/ईंधन, सिंचाई, बाहरी मज़दूरी आदि।
A2 + FL	A2 + अवैतनिक पारिवारिक श्रम (Imputed Cost of Unpaid Family Labour) की लागत।
C2	A2 + FL + स्वामित्व भूमि का किराया (Rental Value of Owned Land) + पूंजीगत परिसंपत्तियों पर ब्याज (Interest on Owned Capital Assets)

सामान्यतः किसानों की मांग होती है कि MSP को C2 लागत पर आधारित किया जाए, जिससे उन्हें लाभकारी मूल्य मिले।

सरकारी खरीद तंत्र (Procurement Mechani sm)

एजेंसी (Agency)	कार्य (Function)
FCI (Food Corporation of India)	गेहूं (Wheat) और धान (Paddy) की प्रमुख खरीद एजेंसी
NAFED (National Agricultural Cooperative Marketing Federation)	दलहन (Pulses) और तिलहन (Oilseeds) की खरीद
Cotton Corporation of India (CCI)	कपास की खरीद
राज्य एजेंसियां (State Agencies)	राज्य-स्तरीय फसलों की खरीद

प्रमुख खरीदी राज्य (Key Procurement States):- पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि।
अन्य राज्यों में खरीदी सीमित है, जिससे MSP का लाभ समान रूप से नहीं मिल पाता।

4.6 मूल्य नीति के उद्देश्य:

भारत की कृषि मूल्य नीति के कुछ आवश्यक उद्देश्य इस प्रकार हैं:

1. उच्च उपज देने वाली किस्म के बीज (HYV), उर्वरक, कीटनाशक और सिंचाई परियोजनाओं जैसे इनपुट की उत्पादकता बढ़ाना।
2. सामान्य रूप से कृषि उत्पादकता और विशेष रूप से छोटे और सीमांत जोतों की उत्पादकता में सुधार करके प्रति हेक्टेयर मूल्य-वर्धित वृद्धि करना।

3. भूमि सुधारों के माध्यम से बिचौलियों को समाप्त करके और गरीब किसानों को संस्थागत ऋण सहायता का विस्तार करके गरीब और सीमांत किसानों के हितों की रक्षा करना।
4. कृषि क्षेत्र के आधुनिकीकरण में कृषि कार्यों में आधुनिक तकनीक को शामिल करना और HYV बीज और उर्वरक जैसे उन्नत कृषि इनपुट को लागू करना शामिल है।
5. भारतीय कृषि के प्राकृतिक आधार के पर्यावरणीय क्षरण की जाँच करना।
6. कृषि अनुसंधान और प्रशिक्षण सुविधाओं को बढ़ावा देना और अनुसंधान संस्थानों और किसानों के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित करके किसानों के बीच ऐसे अनुसंधान के लाभों का प्रसार करना।
7. किसान सहकारी समितियों और स्वयं सहायता संस्थानों को स्वतंत्र रूप से काम करने में सक्षम बनाने के लिए नौकरशाही बाधाओं को दूर करना।
8. किसानों को उपज का उचित मूल्य प्रदान करना
9. कृषि में निवेश और उत्पादन को प्रोत्साहन देना
10. खाद्य पदार्थों की आपूर्ति में स्थिरता लाना
11. उपभोक्ताओं के लिए मूल्य स्थिरता सुनिश्चित करना
12. खाद्यान्न के बफर स्टॉक और PDS के लिए आवश्यक भंडारण करना

4. 7 मूल्य नीति का कार्यान्वयन तंत्र:

(क) खरीद एजेंसियाँ:

FCI, NAFED, राज्य सरकारों की एजेंसियाँ जैसे विपणन संघ MSP पर खरीद करती हैं।

(ख) स्टॉकिंग और वितरण:

खरीदी गई फसल को गोदामों में रखकर उसे PDS के माध्यम से उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जाता है।

(ग) बफर स्टॉक नीति:

MSP के तहत खरीदी गई फसल का एक हिस्सा राष्ट्रीय आपातकालीन स्थिति हेतु बफर स्टॉक में रखा जाता है।

5. मूल्य नीति की उपलब्धियाँ:

- **हरित क्रांति को बल:**

MSP और सुनिश्चित खरीद प्रणाली ने गेहूँ और धान की खेती को प्रोत्साहित किया, जिससे हरित क्रांति संभव हुई।

- **कृषि उत्पादन में वृद्धि:**

FAO के अनुसार भारत में खाद्यान्न उत्पादन 1965 के 80 मिलियन टन से बढ़कर 2023 में लगभग 330 मिलियन टन हो चुका है। यह मूल्य नीति की भूमिका को सिद्ध करता है।

- **किसान आय में सुरक्षा:**

MSP ने विशेषकर पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में किसानों को स्थिर आय दी।

- **सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) को समर्थन:**

सरकार ने MSP पर खरीदकर गरीबों को सस्ती दरों पर अन्न उपलब्ध कराया। इससे खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हुई।

MSP प्रणाली से जुड़ी प्रमुख समस्याएँ (Key Issues with MSP System)

समस्या (Issue)	**विवरण (Description)**
सीमित कवरेज (Limited Coverage)	MSP केवल कुछ फसलों और राज्यों तक ही सीमित है।
मूल्य विकृति (Price Distortion)	गेहूं और धान की अधिकता होने से जल संसाधन और पर्यावरण पर दबाव।
असमानता (Inequity)	बड़े किसानों को अधिक लाभ मिलता है; छोटे व सीमांत किसान पीछे रह जाते हैं।
एकफसली खेती (Monoculture)	विविध फसलें (Diverse Crops) अपनाने से हतोत्साहन, विशेषकर जल-संकट क्षेत्रों में।
WTO की आपत्ति (WTO Concerns)	MSP आधारित सरकारी हस्तक्षेप WTO के Agreement on Agriculture (AoA) का उल्लंघन कर सकता है।

4.8 . सुधारात्मक सुझाव:

- फसल विविधीकरण को प्रोत्साहित करने और चावल और गेहूं के प्रभुत्व को कम करने के लिए, सरकार **धीरे-धीरे एमएसपी समर्थन के लिए पात्र फसलों की सूची का विस्तार** कर सकती है। यह किसानों को अधिक विकल्प प्रदान करेगा और बाजार की मांग के अनुरूप फसलों की खेती को बढ़ावा देगा।
- सभी क्षेत्रों में सभी फसलों के लिए एमएसपी प्रदान करने के बजाय, सरकार **उन फसलों के लिए एमएसपी निर्धारित करने पर ध्यान केंद्रित कर सकती है जो खाद्य सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं** और जिनका किसान आजीविका पर प्रदर्शित प्रभाव पड़ता है। यह लक्षित दृष्टिकोण संसाधन आवंटन को अनुकूलित करने में मदद कर सकता है।
- **यह सुनिश्चित करने के लिए खरीद तंत्र में सुधार और आधुनिकीकरण करना कि किसानों की एमएसपी तक पहुंच हो।** इसमें अधिक कुशल खरीद प्रणाली बनाना, बिचौलियों को कम करना और खरीद एजेंसियों की पहुंच का विस्तार करना शामिल हो सकता है।
- MSP को कानूनी गारंटी दी जाए, जिससे निजी खरीदार भी उससे कम मूल्य पर न खरीद सकें।
- सभी राज्यों में FCI और खरीद एजेंसियों की पहुँच सुनिश्चित की जाए।
- फसल विविधता को बढ़ावा देने के लिए दलहन, तिलहन और मोटे अनाज की प्रभावी खरीद की जाए।
- डिजिटल प्लेटफॉर्म (e-NAM) को MSP और खरीद व्यवस्था से जोड़ा जाए।
- किसानों को MSP संबंधी जानकारी SMS, मोबाइल ऐप, पंचायत बोर्ड आदि के माध्यम से दी जाए।

4.9 हाल के सरकारी प्रयास

1. पीएम-आशा योजना (PM-AASHA Scheme)

किसानों को लाभ दिलाने हेतु यह तीन घटकों पर आधारित है:

घटक	विवरण
PSS (Price Support Scheme)	राज्य/केन्द्र MSP पर फसल खरीद करते हैं।
PDPS (Price Deficiency Payment Scheme)	MSP और बाजार मूल्य में अंतर को सीधे किसान के खाते में भुगतान किया जाता है।
Private Procurement Model	निजी एजेंसियों को MSP पर खरीद की अनुमति।

2. डिजिटल खरीदी (Digital Procurement)

- e-NAM (National Agriculture Market) का प्रयोग मूल्य खोज (Price Discovery) और राष्ट्रीय कृषि बाजार की पहुंच के लिए किया जा रहा है।

3. 'One Nation, One MSP' (प्रस्तावित)

- पूरे भारत में एक समान MSP लागू करने की योजना ताकि सभी किसानों को समान लाभ मिले।

भविष्य की संभावना (Way Forward)

समाधान (Solution)	कार्यवाही (Action)
विविधिकरण (Diversification)	दालें, तिलहन, पोषण अनाज (Millets) जैसे बाजरा आदि को MSP में प्राथमिकता।
डिजिटल जागरूकता (Digital Awareness)	मोबाइल अलर्ट्स से MSP और खरीदी केंद्रों की जानकारी।
बुनियादी ढांचा (Infrastructure)	गैर-एमएसपी राज्यों में खरीदी केंद्र और भंडारण सुविधाएं विकसित करना।
प्रत्यक्ष आय समर्थन (Direct Income Support)	PM-KISAN जैसी योजनाओं को और व्यापक बनाना।
सततता से जोड़ना (Sustainability Link)	MSP को जलवायु अनुकूल (Climate-Resilient) और पोषणकारी फसलों से जोड़ना।

4.10 निष्कर्ष

कृषि मूल्य नीति उत्पादन में वृद्धि प्राप्त करने के लिए सुनिश्चित फसल मूल्यों के रूप में मूल्य प्रोत्साहनों पर अत्यधिक निर्भर रही है। कुशल प्रौद्योगिकी, वित्तीय इनपुट, भूमि सुधार और उन्नत मानव संसाधन जैसे गैर-मूल्य कारक समग्र उत्पादन और उत्पादकता की मात्रा बढ़ाने में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। राज्य के सीमित आर्थिक संसाधनों का उपयोग ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक और आर्थिक बुनियादी ढाँचे को बेहतर बनाने में किया जाना चाहिए, न कि व्यापक जनता को सब्सिडीयुक्त कृषि उत्पादन प्रदान करने में। यदि कृषि बुनियादी ढाँचा कमज़ोर है, तो मूल्य नीति कृषि उत्पादकता में सुधार के वांछनीय प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकती। यह वांछनीय है कि कुछ वस्तुओं के लिए कृषि मूल्यों की घोषणा की जाए क्योंकि सरकार के लिए उच्च मूल्य पर खाद्यान्न खरीदना और सब्सिडीयुक्त मूल्य पर उठाव की अनुमति देना व्यावसायिक रूप से अव्यवहारिक है। इसके अलावा, बुनियादी ढाँचे के विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए।

भारत की कृषि मूल्य नीति ने देश को खाद्य आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर किया है और किसानों की कुछ हद तक आय सुरक्षा की है। परंतु इस नीति की प्रभावशीलता सीमित रही है, विशेषकर लघु और सीमांत किसानों के लिए। अब आवश्यकता है कि नीति को अधिक समावेशी, पारदर्शी और टिकाऊ बनाया जाए, जिससे यह सभी किसानों के लिए वास्तविक सुरक्षा और प्रोत्साहन का साधन बन सके।

4.11 बोध आधारित प्रश्न -

1. कृषि मूल्य नीति का मुख्य उद्देश्य क्या है?

2. MSP किस संस्था द्वारा निर्धारित किया जाता है?
3. MSP किन आधारों पर तय किया जाता है?
4. FCI का कार्य क्या है?
5. मूल्य नीति का एक प्रमुख लाभ क्या है?
6. मूल्य नीति की एक प्रमुख समस्या क्या है?
7. मूल्य नीति में सुधार के लिए कौन-से उपाय सुझाए गए हैं?
8. कृषि मूल्य नीति का उपभोक्ताओं पर क्या प्रभाव पड़ता है?

4.12 संदर्भ (References) /उपयोगी पुस्तके

- कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (CACP) रिपोर्ट, 2023
- कृषि मंत्रालय, भारत सरकार - https://agricoop.gov.in
- FAO: India Food Grain Production Statistics, 2023
- NITI Aayog Working Paper on MSP Reforms, 2022
- NSSO Survey Report on Agricultural Households, 2019
- Swaminathan Commission Report, Vol. 1 & 2
- PIB MSP Press Releases, 2021-2024
- Economic Survey of India, 2023-24
- वी. के. पुरी एवं एस. के. मिश्र ; भारतीय अर्थव्यवस्था, पर्यावरण तथा विकास, हिमालया पब्लिकेशन ISBN: 978-93-5840-147-
- लाल एवं लाल ; भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण और विशलेषण, शुभम पब्लिकेशन
- रमेश सिंह ; भारतीय अर्थव्यवस्था, धारणीयता एवं जलवायु परिवर्तन, मैग्रा हिल पब्लिकेशन ISBN : 978-93-5316-6308-0
- Dutt Ruddar and K.P.M Sundharam, (2007), Indian economy, S.Chand Publishers, New Delhi.
- https:// www.ncert.nic.in
- https:// unfccc.int
- https://krishasevakendra.in